Impact Factor : 7.834

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा पटियाला, श्रीगंगानगर व नेपाल से प्रसारित
साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध का अंतर्राष्ट्रीय मासिक

ISSN : 2321-8037
July-August 2025
Volume 13, Issue 7-8

Gina Shodh SANGAM

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Editor :
Dr. Rekha Soni

Chief-Editor :
Dr. Naresh Sihag Adv.

संस्थापक सम्पादिका :
स्मृति शेष
डॉ. विश्वकीर्ति

संगम SANGAM

बहुभाषिक बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

www.ginajournal.com

संस्थापक संरक्षक :
स्मृति शेष
श्री हरविन्द्र कमल चौधरी

वर्ष : 13 | अंक : 7–8 (1) | जुलाई – अगस्त : 2025 | आई एसएसएन : 2321–8037

सम्पादक :

डॉ. रेखा सोनी
शिक्षा विभाग, टांटिया वि.वि.,
श्रीगंगानगर – 3 3 5001 (राज.)

प्रधान सम्पादक :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
सचिव, गीना देवी शोध संस्थान,
भिवानी (हरियाणा)

मार्गदर्शन :
डॉ. राजेन्द्र गोदारा
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. लक्ष्मी जोशी
त्रिभुवन वि.वि. काठमाण्डू।

डॉ. सृष्टि चौधरी
लेक्चरर, इलेक्ट्रानिक्स
एंड कम्युनिकेशन,
सरकारी पॉलिटेक्निक कॉलेज फॉर
गर्ल्स, पटियाला, पंजाब।

श्री श्रेष्ठ चौधरी,
सीनियर मैनेजर,
स्टेट बैंक ऑफ इंडिया,
साहिबजादा अजित सिंह नगर,
मोहाली, पंजाब।

कानूनी सलाहकार :
डॉ. रामफल दलाल एडवोकेट,
श्रीमती रूपिन्द्र कौर, एडवोकेट

सलाहाकार समिति (Advisory Committee)

डॉ. सुलक्षणा अहलावत
अंग्रेजी प्रवक्ता, शिक्षा विभाग
नूंह (हरियाणा)

डॉ. अरूणा अंचल
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय,
रोहतक (हरियाणा)

डॉ. सुशीला
चौधरी बंसीलाल विश्वविद्यालय, भिवानी।

डॉ. अल्पना शर्मा
आईएएसई विश्वविद्यालय सरदारशहर

डॉ. विजय महादेव गाडे
बाबा साहेब चितले महाविद्यालय
भिलवडी (महाराष्ट्र)

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कॉलेज
धारवाड़ (कर्नाटक)

डॉ. रीना कुमारी
दशमेश गर्ल्स कॉलेज,
अल्ला बक्श, मुकेरिया, पंजाब।

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

श्री हेमराज न्यौपाने
नेपाल।

डॉ. ममता तनेजा
अबोहर, पंजाब।

डॉ. प्रियंका खंडेलवाल
बराण, राजस्थान।

डॉ. संदीप
ओम विश्वविद्यालय, हिसार।

प्रो. मधुबाला
राजकीय महिला महाविद्यालय, हिसार।

डॉ. पीयूष कुमार द्विवेदी
जगद्गुरू रामभद्राचार्य दिव्यांग
विश्वविद्यालय, चित्रकूट, उत्तरप्रदेश

डॉ. हवासिंह ढाका
राजकीय महाविद्यालय, हिन्दुमलकोट,
श्रीगंगानगर (राजस्थान)

डॉ. मानसिंह दहिया
संस्कृत प्रवक्ता, शिक्षा विभाग हरियाणा

डॉ. राजेश शर्मा
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर (राजस्थान)

डॉ. मोहिनी दहिया
माती जीतोजी कन्या महाविद्यालय,
सूरतगढ़ (राजस्थान)

डॉ. मुद्दस्सिर अहमद भट्ट
हिन्दी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय श्रीनगर, कश्मीर

डॉ. सीहेच वी. महालक्ष्मी
सीहेच एसडीएसटी थेरेसा महिला
महाविद्यालय, एलुरू, आंध्र प्रदेश

डॉ. मोरवे रोशन के.
यूनाईटिड किंगडम।

डॉ. अनुपमा, पूर्व प्रोफेसर,
अंकारा विश्वविधालय, अंकारा, टर्की

डॉ. आर.के विश्वास
अध्यक्ष होम्योपैथिक, टांटिया, वि.वि.

प्रकाशक, स्वामी एवं मुद्रक **डॉ. नरेश सिहाग,** एडवोकेट ने **मनभावन प्रिन्टर्ज,** पुराना बस स्टैण्ड रोड़, नया बाजार, भिवानी से छपवाकर 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी–127021 (हरियाणा) से जारी किया।

संगम SANGAM

बहुभाषिक बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

(Journal of Literature, Arts, Science, Commerece, Culture, Humanities and Social Sciences)

सचिव :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,

भिवानी-127021 (हरियाणा)

Email : grngobwn@gmail.com

मो. 09466532152

संगम मासिक पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं/लेखों की मौलिकता का दायित्त्व स्वयं रचनाकारों/लेखकों का है। उससे सम्पादक व प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं। किसी भी प्रकार का विवाद होने पर न्यायक्षेत्र केवल भिवानी (हरियाणा) होगा।
सम्पादन और प्रबंधन के सभी पद पूर्ण रूप से अवैतनिक हैं।

Published by :

Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

202, Old Housing Board,

Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA

Email : grsbohal@gmail.com

Facebook.com/bohalshodhmanjusha

Website : www.bohalsm.blogspot.com

WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1300/-

Disclaimer :

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

Impact Factor : 7.834

ISSN : 2321-8037

Gina Shodh SANGAM

Peer Reviewed & Refereed Research Journal

International Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

तालिका– 2

शैक्षणिक / शोध अंक की गणना हेतु विश्वविद्यालय और महाविद्यालय के शिक्षकों के लिए कार्यप्रणाली

(आकलन शिक्षकों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों पर आधारित होना चाहिए, जैसेः प्रकाशनों की प्रति, परियोजना स्वीकृति पत्र, विश्वविद्यालय द्वारा जारी उपयोग तथा पूर्णता प्रमाण पत्र, पेटेंट दर्ज कराने संबंधी अभिस्वीकृति और स्वीकृति पत्र, विद्यार्थियों को पीएचडी उपाधि प्रदान किए जाने संबंधी पत्र इत्यादि।)

क्रम सं.	शैक्षणिक / शोध क्रियाकलाप	विज्ञान / अभियांत्रिकी / कृषि / चिकित्सा / पशु–चिकित्सा विज्ञान संकाय	भाषा / मानविकी / कला / सामाजिक विज्ञान / पुस्तकालय / शिक्षा / शारीरिक शिक्षा / वाणिज्य / प्रबंधन तथा अन्य संबंधित विधाएं
1	समकक्ष व्यक्ति समीक्षित अथवा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सूचीबद्ध पत्रों में शोध पत्र	08 प्रति पत्र	10 प्रति पत्र
2	प्रकाशन (शोध पत्रों के अतिरिक्त)		
	(क) लिखी गई पुस्तकें, जिन्हें निम्नवत के द्वारा प्रकाशित किया गया :		
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक	12	12
	राष्ट्रीय प्रकाशक	10	10
	संपादित पुस्तक में अध्याय	05	05
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	10	10
	राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	08	08
	(ख) योग्य संकाय द्वारा भारतीय और विदेशी भाषाओं में अनुवाद कार्य		
	अध्याय अथवा शोध पत्र	03	03
	पुस्तक	08	08
3	आईसीटी के माध्यम से शिक्षण ज्ञान– अर्जन, शिक्षण शास्त्र और विषयवस्तु का सृजन तथा नए और नवोन्मेषी पाठ्यक्रमों और पाठ्यचर्या का विकास		
	(क) नवोन्मेषी अध्यापन का विकास	05	05
	(ख) नई पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रमों को तैयार करना	02 प्रति पाठ्यचर्या / पाठ्यक्रम	02 प्रति पाठ्यचर्या / पाठ्यक्रम

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

www.bohalsm.blogspot.com grsbohal@gmail.com 8708822674 9466532152

अनुक्रमाणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. रेखा सोनी	07–08
2.	ब्रिटिश भारत में प्रतिबंधित हिंदी नाट्य-साहित्य और 'कुली प्रथा' नाटक	ललित कुमार	09–17
3.	पूर्व प्राथमिक विद्यालय जाने वाले बच्चों के भाषाई विकास पर शिक्षक तथा विद्यालयी प्रभाव की भूमिका का अध्ययन	रजनी शर्मा, डॉ. अनुमति कुमारी	18–22
4.	राजस्थान में उच्च शिक्षक (कॉलेज) बेरोजगारों का बदतर दयनीय स्थिति (The pathetic condition of unemployed Colleges teachers in Rajasthan is very bad)	Sunita Nehra	23-28
5.	महिलाओं के सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन लाने में स्टार्ट-अप योजनाओं की भूमिका	चुनमुन कुमारी	29–35
6.	One Nation, One Election: A Comprehensive Analysis of Simultaneous Polls in India	Dr. Madhu Thawani	36-44
7.	महात्मा गाँधी के दर्शन के विविध आयाम	कोमल गर्ग	45–52
8.	From Fabric to Frame : Decoding the Costume Craft in Sanjay Leela Bhansali's Cinema	Devanshi Mehta, K. Ravi Kumar	53-59
9.	'कस्बाई सिमोन' : विवाह के बंधनों से मुक्ति की राह तलाशती नारी का संघर्ष	प्रो. अंजना मेहता	60–68
10.	దేవులపల్లి కృష్ణ శాస్త్రి కృతులలో సాహిత్య, సామాజిక, సాంస్కృతిక దృక్పథం	డా. పి. శర్వాణి	69–74
11.	भारत के राजकोषीय नीति की व्यावहार्यता Feasibility of Fiscal Policy of India	डॉ. एस. पी. भारद्वाज	75–82
12.	भारत में मानवाधिकार एवं पुलिस संगठन	डॉ. विभा शर्मा	83–88
13.	शास्त्रीय संगीत का इतिहास एवं विकास	डॉ. श्रुति मिश्रा	89–91
14.	Comparative Study of Light Intensity Distribution from CFL, LED, and Mobile Flashlight Using a Lux Meter	P. Satya Phani Kumar*, S. Suresh, D. Naresh, T. Aravind	92-98
15.	मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में शिक्षित महिला पात्रों का चित्रण और उनका सामाजिक संघर्ष	डॉ. सोनिया गुप्ता	99–103

16.	स्त्री अस्मिता का संघर्ष : छिन्नमस्ता के विशेष संदर्भ में	शंषादबी. टी	104–106
17.	गीता दर्शन में निहित शैक्षिक मनोविज्ञान	मलखान मीना	107–109
18.	**The Feminine Divine in Khajuraho : A Study of Apsarases and Their Association with Fecundity, Beauty, and Love**	**Dr. Sudhakar Deo**	**110-115**
19.	**From Fortune to Freedom : The Transformation in Anton Chekhov's 'The Bet'**	**Dr. Chitralekha**	**116-123**
20.	**Dastangoi : Oral Storytelling in Contemporary Theatre**	**Rakesh Ojha**	**124-127**
21.	हिन्दी कहानी में स्त्री सरोकार : इक्कीसवीं सदी के परिप्रेक्ष्य में	डॉ रम्या एल.	128–131
22.	**"తిక్కన మహా భారత రచన -తెలుగుదనం"**	**Dr. PSUPULETI NAGA MALLIKA**	**132-137**
23.	हिंदी का वैज्ञानिक एवं तकनीकी पक्ष	डॉ. राजकुमार शर्मा	138–144
24.	एस आर हरनोट की कहानी आभी में पर्यावरण चेतना	सीमा देवी, डॉ. अरविंदर कौर चुम्बर	145–148
25.	शैलेश मटियानी के कथेतर साहित्य की भाषा	दीपमाला, डॉ. संजय सुनाल	149–160
26.	भवभूतेः मतानुसारं 'रामचरितम्' ("Bhavabhūteḥ matānusāraṁ Rāmacaritam")	कल्पना, डॉ.बी. कामाक्षम्मा	161–168
27.	हिन्दी आदिवासी काव्य में विस्थापन का दर्द	मनीषा देवी	169–172
28.	ग्रामीण महिलाओं पर परिवार कल्याण कार्यक्रम का प्रभाव	डॉ. विजेता सिंह	173–179
29.	विशेष साक्षात्कार– साहित्य, समाज और सच्चाई की प्रतिनिधि लेखिका : नासिरा शर्मा से बातचीत	पिंकी राठी, डॉ. तृप्ता	180–186
30.	नाम में ही कथा है : 'गोदान' का बहुआयामी विश्लेषण	डॉ. सतीश चन्द अग्रवाल	187–194
31.	तुलसी का रामराज्य : भक्ति में राजनीतिक विमर्श	पीयूष कुमार दुबे	195–202

सम्पादक की कलम से.....

साहित्य और समाज : समय के संग संवाद

वर्तमान दौर में जब समाज बहुआयामी संकटों और संभावनाओं के द्वंद्व में फंसा हुआ है, साहित्य की भूमिका और भी अधिक प्रासंगिक हो जाती है। साहित्य केवल कल्पनाओं का ताना–बाना नहीं है, यह समाज की आत्मा का आईना है। 'गीना शोध संगम' के जुलाई–अगस्त अंक में हम इसी आत्मा की पड़ताल करने का विनम्र प्रयास कर रहे हैं – एक ऐसे विमर्श की ओर जो न केवल ज्ञानवर्धक हो, बल्कि संवेदनाओं को भी स्पर्श करे।

यह अंक साहित्य, समाज और संस्कृति की त्रिवेणी में डुबकी लगाने का आमंत्रण है, जहां विचार, संवेदना और विवेक के साथ विभिन्न लेखकों ने समसामयिक विषयों की पड़ताल की है। आज जब तकनीक ने सूचनाओं को तेजी से फैलाना शुरू कर दिया है, तब यह जरूरी हो गया है कि हम इस प्रवाह में मूल्य, मर्यादा और मौलिकता को बनाए रखें। गीना शोध संगम का यह विशेषांक उसी प्रयोजन की एक कड़ी है – जहाँ शोध, समीक्षा और सृजन के तीनों स्तरों को संतुलित दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है।

साहित्य : समय की चेतना :–

साहित्य महज अक्षरों का संकलन नहीं, बल्कि एक कालबद्ध चेतना है जो युगों को पार कर संवेदना की मशाल थामे चलती है। कबीर, तुलसी, मीरा से लेकर प्रेमचंद, अज्ञेय, नागार्जुन और समकालीन कवियों तक हर युग में साहित्य ने न केवल सामाजिक विसंगतियों को रेखांकित किया, बल्कि वैकल्पिक सोच को जन्म भी दिया। इस अंक में प्रकाशित शोध आलेखों और समीक्षाओं में यह स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है कि साहित्य आज भी मनुष्य को मनुष्यता की ओर लौटने का आमंत्रण देता है।

शोध की दृष्टि से सृजन की गहराई :–

पत्रिका के इस अंक में शामिल शोधार्थियों और लेखकों ने भारतीय साहित्य के विविध पक्षों – जैसे दलित विमर्श, नारी चेतना, ग्रामीण यथार्थ, शिक्षण में साहित्य की भूमिका, और वैश्विक साहित्य में भारतीयता पर अत्यंत गंभीर और संतुलित विवेचन किया है। उनकी यह विशेषता रही कि उन्होंने न केवल सैद्धांतिक विमर्श किया, बल्कि व्यावहारिक पहलुओं को भी सामने रखा। यह शोध न केवल विद्वानों के लिए उपयोगी हैं, बल्कि विद्यार्थियों और सामान्य पाठकों को भी दिशा देने में सक्षम हैं।

समाज और साहित्य : एक अविभाज्य रिश्ता :–

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि साहित्य समाज से कटकर जीवित नहीं रह सकता और न ही समाज साहित्य से विमुख होकर अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ा रह सकता है। इस पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ इस तथ्य की पुष्टि करती हैं। चाहे वह ग्रामीण परिवेश की समस्याओं पर आधारित लघु कथाएँ हों या स्त्री–विमर्श पर केंद्रित आलोचनात्मक लेख, सभी में यह अनुभव किया जा सकता है कि साहित्यकार अपने समय की नब्ज को पहचान रहा है।

युवा कलम और नवोन्मेष :–

हमें यह कहते हुए गर्व हो रहा है कि इस अंक में अनेक नवोदित लेखकों और शोधकर्ताओं की रचनाएँ भी शामिल की गई हैं। युवा पीढ़ी की यह कलम नई दृष्टि, नई संवेदना और नवीन सोच के साथ उभर रही

है। इनकी रचनाओं में आधुनिक जीवन की उलझनें, तकनीकी युग की जटिलताएँ और सामाजिक संरचनाओं की टूटन साफ दिखाई देती है। यह इस बात का संकेत है कि आने वाला समय साहित्यिक दृष्टि से और भी समृद्ध और सजग होगा।

शोध, सृजन और संवाद : तीन ध्रुवों की एकता :-

'गीना शोध संगम' का यह अंक केवल एक साहित्यिक संकलन नहीं, बल्कि एक संवाद है – शोध और सृजन के मध्य। यह संवाद न केवल पाठक और लेखक के बीच होता है, बल्कि समाज और विचार के मध्य भी एक सेतु का कार्य करता है। इस अंक की विशेषता यह भी है कि इसमें रचनात्मक साहित्य के साथ–साथ विश्लेषणात्मक और आलोचनात्मक दृष्टिकोण को भी समान महत्व दिया गया है।

सतत् यात्रा की एक और कड़ी :-

हर अंक हमारे लिए एक नए पड़ाव की तरह होता है। नयी चिंताओं, नए विमर्शों और नए उत्तरदायित्वों से भरपूर। यह अंक भी इसी क्रम की एक कड़ी है। हम यह स्वीकारते हैं कि साहित्यिक और शोध क्षेत्र की यह यात्रा कभी पूर्ण नहीं होती। यह एक सतत प्रयास है – समाज, शिक्षा, संस्कृति और चिंतन के बीच संतुलन स्थापित करने का।

अंत में, हम गीना शोध संगम के सभी लेखकों, शोधार्थियों, संपादन सहयोगियों और पाठकों का आभार प्रकट करते हैं, जिनकी सहभागिता इस अंक को समृद्ध बनाती है। हम आशा करते हैं कि यह अंक आपको न केवल विचारों में नवीनता देगा, बल्कि आपको आपके सामाजिक सरोकारों के प्रति भी और अधिक सजग करेगा।

साहित्य–संधान–संवाद की यह परंपरा यों ही चलती रहे। – इसी मंगलकामना के साथ...

संपादक

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 09–17

ब्रिटिश भारत में प्रतिबंधित हिंदी नाट्य–साहित्य और 'कुली प्रथा' नाटक

ललित कुमार
सहायक आचार्य हिंदी, राजकीय महाविद्यालय, कुम्भलगढ़।

Abstract :

हिंदी नाट्य–साहित्य के इतिहास में प्रतिबंधित नाटकों का विशिष्ट स्थान है, जो साहित्यिक सौंदर्य से अधिक सामाजिक–सांस्कृतिक हस्तक्षेप के लिए स्मरणीय हैं। ठाकुर लक्ष्मण सिंह द्वारा रचित 'कुली प्रथा अर्थात् बीसवीं सदी की गुलामी' एक ऐसा ही उल्लेखनीय नाटक है, जिसे ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्ता द्वारा प्रतिबंधित किया गया। यह नाटक भारत के उन श्रमिकों की वेदना और शोषण को केंद्र में रखता है, जिन्हें अंग्रेजी उपनिवेशों में 'गिरमिट प्रथा' के अंतर्गत धोखे से ले जाकर अमानवीय परिस्थितियों में कार्य करने हेतु विवश किया गया। नाटक का कथानक न केवल ब्रिटिश शोषण तंत्र की क्रूरता को उद्घाटित करता है, बल्कि भारतीय जनमानस में राष्ट्रीयता, आत्मबल, प्रतिरोध और स्वाधीनता की चेतना को भी सघन रूप में व्यक्त करता है। पारसी रंगमंच की शैली में रचित यह नाटक लोकप्रियता के माध्यम से जनता तक गहन राष्ट्रबोध पहुँचाने का कार्य करता है। इसमें चित्रित शंकर, कुंती, अब्बास तथा निप्पो जैसे पात्र, न केवल चरित्रात्मक रूप से सशक्त हैं, अपितु औपनिवेशिक दमन के विरुद्ध जनप्रतिरोध की भावनात्मक और वैचारिक अभिव्यक्ति भी हैं। यह नाटक इस बात का प्रमाण है कि प्रतिबंधित साहित्य, भले ही अकादमिक मुख्यधारा से उपेक्षित रहा हो, राष्ट्रनिर्माण की प्रक्रिया में उसकी भूमिका अत्यंत सशक्त और प्रभावकारी रही है।

Keywords : राष्ट्रीय चेतना, गिरमिट प्रथा, कुली प्रथा, औपनिवेशिक दमन, प्रतिबंधित हिंदी साहित्य, पारसी नाट्य शैली, स्वतंत्रता आंदोलन, जनप्रतिरोध, ठाकुर लक्ष्मण सिंह, फिजी, भारतीय श्रमिक, रंगमंच, सामाजिक अन्याय, भारत–भूमि, औपनिवेशिक जाँच आयोग, सत्याग्रह, साहित्यिक प्रतिरोध।

प्रतिबंधित हिंदी साहित्य में नाट्य–साहित्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। काव्य और कहानियों के बाद, नाटक ही वह विधा है जिस पर ब्रिटिश सरकार ने सर्वाधिक प्रतिबंध लगाए। न केवल हिंदी में, बल्कि सभी भारतीय भाषाओं में भी यही स्थिति रही। नाटक एक ऐसी विधा है, जिसमें सबसे बड़े लक्षित जनसमूह तक पहुँचने की क्षमता होती है। नाटक में दिए गए संदेश को केवल पाठन के माध्यम से ही नहीं, बल्कि प्रदर्शन के द्वारा भी एक साथ एक बड़े जनसमूह तक आसानी से पहुँचाया जा सकता है। यही कारण है कि नाटक को नवजागरण की दृष्टि से सबसे प्रभावशाली विधा के रूप में स्वीकार किया जाता रहा है।

हिंदी के प्रतिबंधित नाटक मुख्यधारा के हिंदी नाटकों से बहुत अलग हैं। मुख्यधारा के हिंदी नाटकों में कलात्मक नाटकों को, जो साहित्यिकता के प्रतिमानों पर खरे उतरते हैं, शामिल किया जाता रहा है, जबकि प्रतिबंधित हिंदी नाटक बहुधा 'लोकप्रिय' किस्म के नाटक हैं। प्रायः हिंदी साहित्य के इतिहास में पारसी शैली के नाटकों को कलात्मक दृष्टि से हीन बताकर उनकी उपेक्षा की जाती रही है, लेकिन प्रतिबंधित हिंदी नाटकों में अधिकांशतः पारसी नाट्य–शैली से संबंध रखने वाले नाटक ही अधिक हैं। इसका कारण ऐसे नाटकों की व्यापक माँग, प्रसिद्धि और बहुत बड़े दर्शक–वर्ग वाली पारसी नाटक कंपनियों का अस्तित्व था। हिंदी साहित्य के इतिहास के लिए यह एक विडंबना ही कही जाएगी कि जिस साहित्य ने सही अर्थों में जनजागरण का कार्य किया और व्यापक पहुँच बनाई, हिंदी साहित्य के इतिहासकारों ने उन्हीं को 'लोकप्रिय' की श्रेणी में डालते हुए हेय दृष्टि से देखा।

हिंदी नाटकों में अब तक आठ ऐसे नाटक ज्ञात हैं, जो पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित होकर प्रतिबंधित हुए – कुली प्रथा अर्थात् बीसवीं सदी की गुलामी (1916, लक्ष्मण सिंह), जख्मी पंजाब (1922, किशनचंद 'जेबा'), शासन की पोल (1922, देवदत्त), जलियाँवाला बाग (1922, बिहारीलाल अग्रवाल), बरबादिए–हिन्द (1929, गोविन्दराम सेठी 'शाद'), स्वर्ण विहान (1930, हरिकृष्ण 'प्रेमी'), लवण लीला वा नमक सत्याग्रह (1931, बुद्धिनाथ झा 'कैरव') और रक्तध्वज (1931, अज्ञात)।

इनके अलावा, कुछ ऐसे नाटक भी हैं, जो किसी पत्रिका में प्रकाशित हुए और उस पत्रिका पर प्रतिबंध लगा दिया गया। ऐसे नाटकों में 'लाल क्रांति के पंजे में' (1924, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र') प्रमुख है, जो स्वदेश पत्रिका के 'विजयांक' में संकलित था। 'चाँद' पत्रिका के 'फाँसी अंक' में भी दो नाटक संकलित थे – 'कानूनीमल की बहस' (जी.पी. श्रीवास्तव) और 'पिता अब्राहम लिंकन का वध' (आचार्य चतुरसेन शास्त्री)। 'हलधर' पत्रिका के 'जुलाई, 1939' अंक को भी प्रतिबंधित कर दिया गया था, जिसमें चंद्रशेखर आजाद के जीवन पर आधारित लघु नाटक 'वीर चंद्रशेखर आजाद' (गिरजाशंकर सिंह 'अभय') संकलित था। इसी क्रम में, 'युवक' पत्रिका के दूसरे वर्ष के 'अंक–4' और बुंदेलखंड केसरी पत्रिका के 'अंक–53' भी प्रतिबंध का शिकार हुए, जिनमें नाटक संकलित थे।

प्रतिबंधित नाटकों के प्रकाशन–वर्ष पर दृष्टिपात करने पर पता चलता है कि इनमें से अधिकांश नाटक उस काल में रचे गए थे, जो मुख्यधारा के हिंदी साहित्य में नाट्य–साहित्य की दृष्टि से 'प्रसाद युग' के नाम से जाना जाता है। इस काल के नाट्य–साहित्य पर जयशंकर प्रसाद का बहुत अधिक प्रभाव था। जैसा कि सर्वविदित है, जयशंकर प्रसाद के नाटकों में संस्कृतनिष्ठ हिंदी का प्रयोग उनकी मुख्य विशेषता थी, लेकिन इन प्रतिबंधित नाटकों की रचना इस काल में होते हुए भी इन पर प्रसाद का प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता, बल्कि पारसी शैली के नाटकों का प्रभाव अधिक है। इनमें से अधिकांश की भाषा में उर्दू के शब्दों की प्रधानता है।

गीतों की दृष्टि से दोनों धाराओं में समानता देखी जा सकती है, लेकिन यहाँ भी मुख्य अंतर का बिंदु भाषा एवं कलात्मकता ही है। प्रसाद के नाटकों में भी गीतों की अधिकता देखी जा सकती है, लेकिन उनके गीत संस्कृतनिष्ठ शब्दावली वाले कलात्मक गीत अधिक हैं, जबकि प्रतिबंधित नाटकों के गीतों की भाषा उर्दू के समीप जाती है। साथ ही, कलात्मक दृष्टि से भी ये 'लोकप्रिय' ही कहे जाएँगे। इन अंतरों से स्पष्ट है कि प्रतिबंधित नाटक बहुधा वे ही नाटक हैं, जो पारसी कंपनियों द्वारा खेले जाने वाले नाटकों की श्रेणी में आते थे।

ऐसा होने के पीछे प्रमुख कारण यही था कि ऐसे नाटकों की जनता तक व्यापक पहुँच थी। उस समय ग्रामीण क्षेत्रों में पारसी नाटक कंपनियों का मनोरंजन के क्षेत्र में लगभग एकाधिकार था, अतः नाटककारों ने इनकी पहुँच को माध्यम की तरह इस्तेमाल किया ताकि अधिक–से–अधिक जनों तक संदेश को पहुँचाया जा सके। अंग्रेजी सरकार भी इनके प्रभाव से परिचित थी, अतः ऐसे नाटकों पर ही अधिक प्रतिबंध आरोपित किए, न कि कलात्मक नाटकों पर। राष्ट्रीयता की भावना को उभारने की दृष्टि से प्रसाद के नाटकों को भी कम नहीं कहा जा सकता, लेकिन उनके किसी भी नाटक पर प्रतिबंध नहीं लगा क्योंकि उनकी पहुँच एक सीमित वर्ग तक ही थी।

इन नाटकों पर प्रतिबंध लगने का दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण इनकी समसामयिक विषयों पर आधारित कथावस्तु का होना था। हरिकृष्ण 'प्रेमी' कृत काव्यनाटक 'स्वर्ण विहान' ही एकमात्र ऐसा नाटक है, जिसमें अंग्रेजी सरकार की भर्त्सना अप्रत्यक्ष रूप से की गई है, अन्यथा सभी प्रतिबंधित नाटकों में प्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजी सरकार की नीतियों एवं अत्याचारों का मुखर रूप से विरोध किया गया है। जलियाँवाला बाग, नमक सत्याग्रह, कुली–प्रथा, असहयोग, क्रांति आदि इन नाटकों के मुख्य विषय हैं।

प्रतिबंधित हिंदी नाटकों के विषयों एवं इनके प्रभाव को देखते हुए सहज ही इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है कि साम्राज्यवादी अंग्रेजी सरकार ने इन पर क्यों प्रतिबंध आरोपित किए होंगे। इन नाटकों का तत्कालीन समय के जनमानस पर बहुत अधिक प्रभाव था। इनके इस महत्त्व को दृष्टिगत रखते हुए इनकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए और इन्हें हिंदी साहित्य के इतिहास में वह स्थान मिलना चाहिए, जिसके ये अधिकारी हैं।

कुली प्रथा अर्थात् बीसवीं सदी की गुलामी (1916)/लक्ष्मण सिंह :–

'कुली प्रथा अर्थात् बीसवीं सदी की गुलामी' ठाकुर लक्ष्मण सिंह द्वारा रचित नाटक है, जिसे ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रतिबंधित कर दिया गया था। इस नाटक का उपजीव्य विषय ब्रिटेन के उपनिवेशों– जैसे फिजी, नेटाल, ट्रांसवाल, त्रिनिदाद, जमैका, गायना, जंजीबार आदि में भारत के मजदूरों की दयनीय स्थिति और उनके साथ होने वाला शोषण है। यह नाटक 1916 ई. में प्रकाशित हुआ और 1917 ई. में साम्राज्यवादी ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रतिबंधित कर दिया गया।[1]

नाटक तीन अंकों में विभक्त है। पहले अंक में 'रंगमंच दृश्य' के अलावा नौ दृश्य, दूसरे अंक में छह दृश्य और तीसरे अंक में नौ दृश्य हैं। नाटक में भारतीय रंग–पद्धति का पूरी तरह से निर्वहन किया गया है। कई स्थानों पर पारसी थिएटर के प्रतिमानों को भी प्रयोग में लाया गया है। नाटक में कुल छोटे–बड़े 25 गीत हैं। आकार की दृष्टि से देखा जाए तो नाटक मध्यम से थोड़ा बड़ा कहा जाएगा। हालाँकि यह नाटक रंगमंच पर अभिनीत किए जाने योग्य है, लेकिन कई स्थानों पर ऐसे दृश्य शामिल कर लिए गए हैं, जो मुश्किल पैदा करते हैं, जैसे नाव के दृश्य आदि। कुछ संवाद भी अधिक लंबे हो गए हैं, जो अभिनय की दृष्टि से आदर्श स्थिति नहीं हैं।

'रंगमंच दृश्य' में सूत्रधार और नटी के माध्यम से विषय–प्रवेश करवाया गया है। नटी के माध्यम से नाटकों में चले आ रहे रूढ़िवादी विषयोंकृजैसे वीरता, पराक्रम, प्रेम आदि की वर्तमान भारत में अप्रासंगिकता को दिखाते हुए भारत की समस्याओं की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है – 'राजाओं और प्रासादों का समय गया, अब गरीबों और झोंपड़ियों का समय आया है।'[2]

प्रथम अंक का 'प्रथम दृश्य' भगवान् जगन्नाथ जी के मंदिर का है, जिसमें सभी स्त्री, पुरुष और यात्रीगण

भगवान् की आरती उतारते हैं। दूसरा दृश्य एक कमरे का है, जिसमें सेठ बृजलाल और उसके चार आदमियों के संवाद हैं। सेठ बृजलाल आरकाटी है, अर्थात् वह अंग्रेजों के लिए उनके उपनिवेशों जैसे फिजी, त्रिनिदाद आदि के खेतों में काम करने हेतु भारतीय मजदूरों की व्यवस्था करता है।

इस दृश्य में चित्रित किया गया है कि किस प्रकार सेठ ने अपना जाल–तंत्र फैला रखा है, जिसके सहारे वह भारतीयों को बहला–फुसलाकर 'दास–प्रथा' में ढकेलने का कार्य करता है। वह अपने आदमियों से कहता है कि आज उसके पास दस कुलियों (काले मजदूरों) की आवश्यकता का पत्र आया है और इसके लिए प्रति व्यक्ति उसे दो सौ दस रुपये मिलेंगे। सेठ का एक आदमी भारतीय मजदूरों को फँसाने के लिए बनाई गई अपनी योजना सामने रखता है– "....देखो, यह ऊतनाथ–यात्री जगन्नाथ जी का दर्शन करके लौटे जा रहे हैं। अब हममें से कुछ तो बनें यात्री, और इनमें जा मिलें। फिर, आप सेठ जी बनकर आइए और फिजी में नए प्रकट हुए भगवान गौरांग के विशाल मंदिर के लिए धर्मात्मा कुलियों की आवश्यकता दिखलाइए। जब हम सब लोग फिजी जाने को तैयार होंगे तो देखादेखी कुछ दूसरे भी साथ हो लेंगे।"[3]

इस प्रकार पूरा जाल–तंत्र बनाकर भोले भारतीय मजदूरों को फँसा लिया जाता था। उन्हें निस्सहाय करने के लिए पहले उनका सामान भी चुरा लिया जाता था, ताकि उनके पास हामी भरने के सिवा कोई विकल्प ही न बचे।

'तीसरे दृश्य' में शहर के बाहर वृक्षों से घिरे एक स्थान पर भोलाराम और उसकी पत्नी कुंती के संवाद दर्शाए गए हैं। इनका सामान उन्हीं जालसाजियों द्वारा चोरी कर लिया गया था, अतः यह भोला दंपति अब भगवान के आसरे असहाय खड़ा है। इतने में सेठ बृजलाल और उसके दो साथी–एक यात्री और एक साधु का भेष बनाकर आते हैं। सेठ बृजलाल उन्हें अपने घर ठहरने का आमंत्रण देता है और फिजी के किसी गोरांग प्रभु की महिमा का बखान करता है, जो अभी–अभी प्रकट हुए हैं। साधु और यात्री बने उसके सहयोगी योजनानुसार सेठ के साथ फिजी जाने की हामी भर देते हैं। भोलाराम, जिसका पुत्र शंकर कई वर्षों से लापता है, उससे मिलने की उम्मीद में हामी भर देता है। इस प्रकार इस भोले और असहाय दंपति को फँसाने की योजना सफल हो जाती है।

'चौथे दृश्य' में एक वाचनालय का दृश्य है, जहाँ लगी गोलमेज पर छह–सात युवक समाचार–पत्र पढ़ रहे हैं। उनमें से एक युवक 'विदेशों में भारतवासियों की स्थिति' शीर्षक लेख पर चर्चा छेड़ता है। उस लेख में अंग्रेजों की विदेशी कॉलोनियों में भारतीय मजदूरों की दुर्दशा का चित्रण किया गया है, जहाँ काम की परिस्थितियाँ अत्यधिक कठिन हैं। 'प्रतिज्ञाबद्ध कुली प्रथा' (Indenture Labour System) के अंतर्गत भोले–भाले गरीब भारतीय मजदूरों की दयनीय दशा का वर्णन इस प्रकार किया गया है– "....जो भारतवासी वहाँ जाकर रहेगा उस पर कर लगेगा। अंग्रेजी उपनिवेशों में ही नहीं किन्तु विदेशीय उपनिवेशों में भी भारतवासी कुली भेजे जाते हैं। 1912 के दिसम्बर में डच गायना में 4669 भारतीय कुली थे। वहाँ पर भी वे अत्याचारों से नहीं बचते। अपने देश भारतवर्ष में भी हमारी दशा शोचनीय है। कहीं निलहे कोठीवाले दुहरा लगान वसूल करते हैं, कहीं चाय बगानवाले नादिरशाही मचाते हैं, कहीं बेगारवाले औरंगजेबी करते और कहीं बात–बात पर ठोकरें पड़ती हैं। और हाँ! ये सब दुःख और अपमान हमें मूकभाव से सह लेने पड़ते हैं!"[4]

इसी क्रम में आगे गांधी के सत्याग्रह संग्राम पर विचार होता है। दक्षिण अफ्रीका में उनकी अभूतपूर्व

सफलता पर बोलते हुए एक युवक कहता है– "जब मैं उनके 'सत्याग्रह संग्राम' पर विचार करता हूँ तो मुझे वे साहस और वीरता के पर्वत मालूम होते हैं। उस वीर ने सार्वदेशिक संघ कराया उन मनुष्यों में जिनमें कि अधिकतर अशिक्षित हैं और अंत में, सफल हुआ। दक्षिण अफ्रीका की सरकार को उसकी बात माननी पड़ीय माननीय गोखले ने सत्य कहा था कि गांधीजी मिट्टी के पुतलों को भी योद्धा बना सकते हैं!"[5]

'पाँचवे दृश्य' में सेठ भोला और उसकी पत्नी को समझाता है कि कलकत्ता से जहाज में चढ़ते समय अंग्रेज बहादुर के सवालों के क्या उत्तर देने हैं। वह उन्हें बहला–फुसलाकर यह विश्वास दिलाता है कि जब चाहें, वापस आ सकते हैं, लेकिन अंग्रेज के सामने उन्हें पाँच साल तक वहीं रहने का वादा करना पड़ेगा। भोला की पत्नी के मन में संदेह उत्पन्न होता है, लेकिन भोला इसे गोरांग प्रभु की दया मानकर चलने को तैयार हो जाता है। साधु और यात्री के भेष में उनके साथ जाने को तत्पर ठग कल आने का कहकर रुक जाते हैं।

'छठवें दृश्य' में सेठ बनवारीलाल और उसके भतीजे सुखबासी के संवाद दर्शाए गए हैं। बनवारीलाल अंग्रेजों का परम भक्त है और इम्पीरियल लेजिस्लेटिव काउंसिल का सदस्य बनने के लिए अंग्रेजों की चापलूसी में जुटा है। उसे लाट साहब का पत्र प्राप्त होता है, जिसमें उसे उपनिवेशों में भारतीयों की दशा की जाँच के लिए गठित कमीशन में शामिल होने का निमंत्रण मिलता है। परंतु, वह अपने भतीजे सुखबासी को इस कार्य के लिए भेजने का निर्णय लेता है, क्योंकि उसका मुख्य उद्देश्य काउंसिल का सदस्य बनना है। इस संवाद के माध्यम से सेठ बनवारीलाल की अंग्रेज–भक्ति और स्वार्थी प्रवृत्ति को उजागर किया गया है।

'सातवें दृश्य' में कचहरी का दृश्य प्रस्तुत किया गया है, जहाँ इंस्पेक्टर फिजी भेजे जाने वाले लोगों को संबोधित करता है। वह उन्हें सूचित करता है कि वहाँ पाँच वर्षों तक रहना आवश्यक होगा और उन्हें बारह आना प्रतिदिन मजदूरी मिलेगी। इसके पश्चात मुंशी सबके नाम दर्ज करता है।

'आठवें दृश्य' में लाट साहब और बनवारीदास के बीच संवाद प्रस्तुत किया गया है। लाट साहब बनवारीदास को जाँच आयोग में इसलिए शामिल करना चाहते हैं क्योंकि वह अंग्रेजों की इच्छानुसार रिपोर्ट तैयार करने के लिए तैयार रहता है। आयोग में बनवारीदास को रखने से अंग्रेजों के आलोचकों को यह दिखाया जा सकता है कि एक भारतीय को भी इसमें शामिल किया गया है, जिससे उनकी आलोचना को शांत किया जा सके।

इस संवाद में बनवारीदास की चाटुकारिता का विस्तृत चित्रण किया गया है। वह स्वयं को 'अंग्रेजों का कुत्ता' कहता है, जिससे लाट साहब प्रसन्न होते हैं और उसे ळ.ऽ६ उपाधि देने का आश्वासन देते हैं। साथ ही, इनाम स्वरूप उसके भतीजे सुखबासी को आयोग का सदस्य बनाते हुए, उसे डिप्टी कलेक्टर की नौकरी देने का वचन देते हैं।

इस दृश्य के माध्यम से नाटककार ने यह दर्शाया है कि किस प्रकार अंग्रेज अपने चापलूस भारतीयों को जाँच आयोग में स्थान देकर यह दिखाने का प्रयास करते थे कि वे भारतीयों की समस्याओं के प्रति गंभीर हैं, जबकि वास्तव में वे अपनी नीतियों के समर्थन में पहले से तय निष्कर्ष वाली रिपोर्ट तैयार करवाते थे– "भारतवासी चिल्लाते हैं कि उपनिवेश में उनके भाइयों पर जो कष्ट होते हैं उनकी जाँच की जाए। करेंगे। किन्तु हम जो करना चाहेंगे वही होगा, ह्युम साहब तो अपने हैं ही, और खूब सोच–विचार कर मैंने रायबहादुर लाला बनवारीलाल जी को ढूँढा है। अंग्रेजी नहीं जानते। इसलिए उन्हें लिख दिया है कि आप न जा सकें तो अन्य किसी को भेज

दीजिए। लालाजी अपने आपको कृतार्थ समझ रहे होंगे। ऐसे ही लोगों की सहायता से हमारा काम चलता है।"[6]

'नौवें दृश्य' में भोला और उसकी पत्नी कुंती के संवाद हैं। डीपू घर (Immigration Office) की जेल के समान बनी कोठरी में, भोला कुंती को बताता है कि उन्हें अलग–अलग जहाज में चढ़ाकर भेजा जाएगा। कुंती डर जाती है। एक सिपाही कुंती को डॉक्टरी परीक्षा के लिए ले जाने आता है। कुंती के मना कर देने पर, वह उसे जबरदस्ती ले जाता है।

दूसरे अंक के 'प्रथम दृश्य' में ब्रजलाल और दो अन्य आरकटियों का संवाद है। भोला और कुंती का पुत्र शंकर मेधावी विद्यार्थी था और अमेरिका जाकर पढ़ना चाहता था। ब्रजलाल ने उसे धोखे से फिजी भेज दिया। संवाद में चित्रित किया गया है कि शंकर ब्रजलाल को पत्र भेजकर धिक्कार रहा है। अन्य दो आरकटिये उसे ब्रजलाल को उकसाते हैं कि वह शंकर को सजा दे। ब्रजलाल, फिजी में शंकर के कोठीवाले को पत्र लिखकर उसे सबक सिखाने का निश्चय करता है। इस दृश्य में पता चलता है कि किस प्रकार आरकटियों का जालतंत्र, देश के लिए अमेरिका जाकर पढ़ने की भावना रखने वाले एक होनहार विद्यार्थी के जीवन को धोखा देकर नष्ट कर देता है।

'द्वितीय दृश्य' में, कुली का वेश पहने हुए, हाथ में फावड़ा लिए शंकर अपनी मातृभूमि का स्मरण करता है। वह प्यारी भारत–भूमि को याद करते हुए उसकी वर्तमान दशा पर आँसू बहाता है :–

"पास किया एंट्रेंस अमेरिका जाना ठाना, भाग्य चक्र से पड़ा मुझे फिजी में आना।
ले आया है खेंच यहाँ पर मुझको बल से, वणिकों का व्यापार स्वार्थ चतुराई छल से।
ये सेंटर पाश्चात्य सभ्यता बाना धारी, राक्षस से भी कहीं अधिक है अत्याचारी।
है गुलाम व्यापार यह कुली प्रथा के वेश में, जो अब तक देखा न था, देखा भारत देश में।'[7]

निप्पो फिजी का मूल निवासी है और शंकर का मित्र है, जो उसकी सहायता करता है। शंकर उससे कहता है कि वह गिरमिट का पैसा चुकाकर उसे मुक्त कर दे, तो वह उसके लिए काम करेगा। निप्पो उसके मालिक से बात करने का वचन देता है। शंकर, निप्पो की प्रशंसा करते हुए तथाकथित सभ्य अंग्रेजों को धिक्कारता है :–

'यह निप्पो कितना दयालु है। सभ्य कहलाने वाले लोग इसको जंगली भले ही कहें किन्तु इसके हृदय में सच्ची सभ्यता का वास है। यह स्वभाव से ही भारतीयों का, भारतीयों का क्या सभी दीनों का मित्र है।...इसने यहाँ के कई मनुष्यों को इस प्रकार कष्ट से मुक्त किया है।"[8]

'तृतीय दृश्य' में एक गोरे पुरुष और मेम के संवाद का चित्रण है। गोरी मेम शिकायत करती हुई कहती है कि उद्यान में काले लोगों की वजह से फूलों की खुशबू समाप्त हो जाती है। गोरा पुरुष मेम को एक खेल दिखाने के लिए कहता है, जिसमें बूढ़े कुली भोला और रीछ की कुश्ती करवाई जानी थी, लेकिन तभी एक नौकर आकर सूचना देता है कि इंस्पेक्टर की मार से भोला की मृत्यु हो गई है। इस संवाद के माध्यम से नाटककार ने उपनिवेशों में कुलियों पर होने वाले अत्याचारों का चित्रण किया है।

'चौथे दृश्य' में अब्बास नाम का एक अन्य भारतीय कुली कुंती तक यह संदेश पहुँचाता है कि उसके पति भोला को इंस्पेक्टर ने मार दिया। कुंती यह सुनकर बेहोश हो जाती है। अंग्रेज साहब अब्बास को ही भोला का कातिल बताकर जेल में डाल देता है और प्रसव पीड़ा से कराह रही कुंती को काम करने के लिए बाध्य करता

है। इसमें नाटककार ने अंग्रेजों की अमानवीयता की पराकाष्ठा का चित्रण किया है। इंस्पेक्टर कुंती का शोषण करना चाहता था और इसमें भोला बाधक था, अतः उसने उसे मार डाला।

'पाँचवे दृश्य' में भारत से उपनिवेशों में भारतीयों की स्थिति की जाँच हेतु आए कमीशन के सदस्य सुखवासीलाल और एक भारतीय कुली का संवाद है। सुखवासीलाल फिजी में भारतीय कुलियों की दयनीय स्थिति से परिचित है, लेकिन वह अंग्रेजों के विरुद्ध कुछ भी बोलना नहीं चाहता क्योंकि उसे नौकरी मिलने वाली है। इससे अंग्रेजों द्वारा गठित नाममात्र के आयोगों की कार्यप्रणाली के बारे में भी पता चलता है। कुलियों के बयान उनके कोठी मालिकों के सामने ही लिए जाते थे, अतः भयवश कोई भी कुली अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों के बारे में नहीं बताता था, क्योंकि गिरमिट की अवधि तक उसे वहीं काम करना होता था। एक भारतीय कुली द्वारा शिकायत कर दिए जाने पर उसके दाँत तोड़ दिए गए, जिसकी शिकायत वह सुखवासीलाल से करता है, लेकिन वह किसी भी प्रकार की कार्यवाही करने से डरता है।

'छठवें दृश्य' में इंस्पेक्टर द्वारा कुंती के साथ जबरदस्ती किए जाने को चित्रित किया गया है। जब बहुत डराने–धमकाने पर भी कुंती नहीं मानती, तब इंस्पेक्टर उस पर छुरे से वार करता है। वह नदी में कूद जाती है। वहाँ एक नाववाला उसे बचा लेता है। शंकर और निप्पो आकर इंस्पेक्टर को पकड़ लेते हैं।

तृतीय अंक के 'प्रथम दृश्य' में दिखाया गया है कि निप्पो और शंकर इंस्पेक्टर को पकड़कर थाने ले जाते हैं। शंकर को पता चलता है कि कुंती उसकी माँ है। कुंती शंकर को अपनी व्यथा–कथा सुनाती है।

'दूसरे दृश्य' में इंस्पेक्टर का नौकर टेमू बताता है कि कुंती के बच्चे को बड़े साहब का कुत्ता हाउंड खा गया। नाटककार ने इस प्रसंग के माध्यम से अंग्रेजों की अमानवीयता का चित्रण किया है– "मेम साहब अपने बच्चे को बरांडे में खाना खिला रही थीं। कुंती का बच्चा 'कहाँ–कहाँ' रोता था। कुत्ता भी बड़ा खिलाडी, कभी उसे झिंझोड़ के दूर फेंक देता और खड़े–खड़े टेढ़ा मुँह करके ताकता, फिर एकाएकी झुककर कूदता हुआ उसके पास जाता और कुछ देर बाद फिर एकदम मुँह में दबाकर ले भागता, फिर धीरे से नीचे रखकर बड़े ध्यान से उसकी ओर घूरता। इस प्रकार बच्चे का अंत हो गया। मेम साहब बड़ी खुश थीं। बार–बार कहती थीं, वेलडन हाउंडी, वेलडन हाउंडी।"[9]

आगे टेमू बताता है कि इस प्रकार, कुत्ते को बच्चा ले जाते हुए देखकर अब्बास उसे डंडा मार देता है, जिससे वह लंगड़ा हो जाता है। इंस्पेक्टर इसे अवसर समझकर अब्बास के माध्यम से निप्पो और शंकर की हत्या करने की योजना बनाता है। बदले में, वह उसे बड़े साहब से बचाने का वादा करता है।

'तीसरे दृश्य' में शंकर और निप्पो के संवाद हैं। शंकर निश्चय करता है कि वह इंस्पेक्टर को मारकर अपने पिता और भाई की हत्या का बदला लेगा। निप्पो उसे सरकार के पास अपील करने की सलाह देता है। शंकर के माध्यम से अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध लड़ने की प्रेरणा दी गई है। शंकर जानता है कि इंस्पेक्टर को मार देने पर उसे फांसी पर चढ़ा दिया जाएगा, लेकिन अन्याय और अत्याचार का विरोध करना वह अपना कर्तव्य समझता है – "जो मरता धर्म करने में वह मर के भी नहीं मरता, अमरता उसको मिलती है, जो मारने से नहीं डरता।"[10]

'चौथे दृश्य' में अब्बास का एकालाप है, जिसमें वह चिंतित है कि भोला की हत्या के अपराध में बड़े साहब उसे फांसी चढ़वा देंगे। अगर वह पाँच साल का गिरमिट बढ़ाने के लिए राजी हो जाता है, तो फांसी से बच

सकता है, लेकिन पाँच और साल इस नरक में रहने से अच्छा, वह फांसी पर चढ़ जाना समझता है।

'पाँचवे दृश्य' में इंस्पेक्टर, अब्बास को निप्पो और शंकर की हत्या करने के बदले, उसे भोला की हत्या के दोष से छुड़वाने का लालच देता है, लेकिन अब्बास उसकी चाल समझ जाता है। पागल हो चुकी कुंती नदी में कूदकर आत्महत्या कर लेती है। अब्बास इंस्पेक्टर से भिड़ जाता है और उसके पेट में छुरा घोंपकर उसकी हत्या कर देता है। इंस्पेक्टर के प्रति उसकी घृणा इन शब्दों में व्यक्त हुई है :–

"या खुदा, पाक परवरदिगार, तू ने ठीक ही किया जो ऐसे पापी को मेरे हाथों से मरवाया। ओफ! इसने एक दिन दस बारह स्त्रियों को एक कतार में खड़ी करके उन्हें उनके बिलखते हुए बच्चों के ही सामने गेंडे की खाल के कोड़े से मारा था, और इतना निर्दयता से कि उनके मोटे कपड़ों के ऊपर होकर खून बहने लगा था। इसने क्या–क्या नहीं किया? एक दिन एक स्त्री अपने पाँच दिन के बच्चे को लेकर काम करने खेत पर आई थी। दोपहर को जब उसे प्यास लगी तो पानी पीने के लिए नदी पर गई। वहाँ छाया में बैठकर अपने बच्चे को दूध पिला रही थी। दुर्भाग्य से यह पापी वहाँ आ निकला। इसने उस दूध पीते बच्चे को खींच के नदी में फेंक दिया।"[11]

'छठवें दृश्य' में शंकर को कुंती की मृत्यु से आहत दिखाया गया है। वह मर जाना चाहता है, लेकिन निप्पो उसे सलाह देता है कि वह अपना जीवन हिंदुस्तान जाकर जनता को यहाँ के कुलियों की स्थिति से अवगत कराने के कार्य में लगाए। इतने में अब्बास का आगमन होता है। वह बताता है कि उसने इंस्पेक्टर की हत्या कर दी, अतः निप्पो से बचाने की गुहार करता है। निप्पो उसे गिरमिट की समाप्ति का पत्र लाने की सलाह देता है ताकि उसे हिंदुस्तान भगाया जा सके।

'सातवें दृश्य' में फिजी के गवर्नर और सुखवासी के बीच संवाद को चित्रित किया गया है। गवर्नर सुखवासी से फिजी में भारतीयों की स्थिति के विषय में पूछता है। सब कुछ पता होने के बावजूद सुखवासी उनकी स्थिति बहुत बेहतर बताता है ताकि गवर्नर हिंदुस्तान में उसके लिए सिफारिश कर सके। इस संवाद के माध्यम से नैतिक रूप से अधःपतन के शिकार हिंदुस्तानी चापलूस वर्ग के चरित्र को उजागर किया गया है।

'आठवें दृश्य' में समुद्र तट पर निप्पो, शंकर को विदा करने आया है। शंकर भारत जाकर अपनी मातृभूमि के लिए स्वयं को समर्पित कर देने का प्रण लेता है। निप्पो बलिदान के महत्त्व को इन शब्दों में बताता है :

"कितना बड़ा कार्य वह करता जो अवसर पर है मरता।
ऐसा मरना इतिहासों में चिर जीवन कहलाता है।"[12]

'अंतिम दृश्य' में निप्पो, शंकर और अब्बास को भारत के लिए नाव में बैठाकर विदा लेता है।

इस नाटक में राष्ट्रीयता की भावना के कई पक्ष उद्घाटित हुए हैं। शंकर अपने राष्ट्र के कल्याण के लिए ही अमेरिका जाकर पढ़ना चाहता था, लेकिन ब्रजलाल जैसे लोभी और सत्ता के चापलूस हिंदुस्तानी द्वारा ही वह धोखे का शिकार हुआ और फिजी भेज दिया गया। निप्पो के माध्यम से नाटककार ने जंगली कही जाने वाली जाति में सभ्यता और मानवता को दिखाया है, जबकि इंस्पेक्टर और मेम के माध्यम से तथाकथित सभ्यता का दंभ भरने वाले अंग्रेजों की अमानवीयता को उजागर किया गया है।

नाटक में कुलियों पर होने वाले अत्याचारों के साथ–साथ लोभी और अंग्रेजों के चापलूसों की निकृष्टता का चित्रण सेठ बनवारीलाल और उसके भतीजे सुखवासी के माध्यम से किया गया है, जो स्वयं को अंग्रेजों का

कुत्ता कहलाने में गौरव महसूस करते हैं।

नाटक के अंत में शंकर द्वारा अपनी मातृभूमि के कल्याण हेतु की गई यह प्रतिज्ञा परतंत्रता के पाश में बंधे तत्कालीन भारतीय जनों के लिए अवश्य प्रेरक साबित हुई होगी :–

"निबाहूँगा प्रतिज्ञा मैं यह अपने प्राण के पण से।

करूँगा देश–सेवा मैं मरूँगा देश–सेवा में, उठेंगी देश–सेवा की उमंगें देह से मन से। निवाहूँगा....।"[13]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 'कुली प्रथा' नाटक में राष्ट्रीय चेतना व्यापक स्तर पर प्रतिफलित हुई है। शंकर के राष्ट्रसेवा के प्रण और बार–बार भारत भूमि में ही जन्म लेने की चाह, अब्बास का अपने भारतीय भाइयों के प्रति प्रेम और साहस की भावना, दुष्ट इंस्पेक्टर की हत्या करना तथा निप्पो जैसे बाहरी व्यक्ति की मानवताकृइन सभी के माध्यम से नाटककार ने यह दर्शाना चाहा है कि भारतीय लोगों में प्रतिरोध की भावना का अंत नहीं हुआ है।

फिजी में भारतीय कुलियों पर होने वाले अत्याचारों के चित्रण के माध्यम से नाटककार का उद्देश्य भारतीय जनता में अंग्रेजों के प्रति घृणा की भावना विकसित करना था, और यह कार्य इस नाटक के माध्यम से भली–भाँति संपन्न हुआ। इस नाटक पर प्रतिबंध लगाया जाना ही इसका प्रमाण है।

संदर्भ :–

1. कुली प्रथा अर्थात् बीसवीं सदी की गुलामी. लक्ष्मण प्रसाद. कानपुर : प्रताप कार्यालय प्रेस, 1916. बी.एल. आर.डी. कैटलॉग–733.
2. 'कुली प्रथा – लक्ष्मण सिंह', सितम की इंतिहा क्या है, द्वितीय संस्करण. सत्येन्द्र कुमार तनेजा (सं). नई दिल्ली : राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, 2023. पृ. 154.
3. वही, पृ. 159.
4. 'कुली प्रथा : लक्ष्मण सिंह', सितम की इंतिहा क्या है, द्वितीय सं. सत्येन्द्र कुमार तनेजा (सं). नई दिल्ली : रा.ना.वि., 2023. पृ. 167.
5. वही, पृ. 169.
6. 'कुली प्रथा : लक्ष्मण सिंह', सितम की इंतिहा क्या है, द्वितीय सं. सत्येन्द्र कुमार तनेजा (सं). नई दिल्ली : रा.ना.वि., 2023. पृ. 177.
7. 'कुली प्रथा : लक्ष्मण सिंह', सितम की इंतिहा क्या है, द्वितीय सं. सत्येन्द्र कुमार तनेजा (सं). नई दिल्ली : रा.ना.वि., 2023. पृ. 185.
8. वही, पृ. 187.
9. 'कुली प्रथा : लक्ष्मण सिंह', सितम की इंतिहा क्या है, द्वितीय सं. सत्येन्द्र कुमार तनेजा (सं). नई दिल्ली : रा.ना.वि., 2023. पृ. 204.
10. 'कुली प्रथा : लक्ष्मण सिंह', सितम की इंतिहा क्या है, द्वितीय सं. सत्येन्द्र कुमार तनेजा (सं). नई दिल्ली : रा.ना.वि., 2023. पृ. 208.
11. वही, पृ. 215.
12. 'कुली प्रथा : लक्ष्मण सिंह', सितम की इंतिहा क्या है, द्वितीय सं. सत्येन्द्र कुमार तनेजा (सं). नई दिल्ली : रा.ना.वि., 2023. पृ. 220.
13. वही, पृ. 220.

मो. नं. 8696304720

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 18–22

पूर्व प्राथमिक विद्यालय जाने वाले बच्चों के भाषाई विकास पर शिक्षक तथा विद्यालयी प्रभाव की भूमिका का अध्ययन

रजनी शर्मा, शोधार्थी,
गृह विज्ञान विभाग, रांची विश्वविद्यालय, रांची, झारखंड।
डॉ. अनुमति कुमारी, शोध निर्देशिका
असिस्टेंट प्रोफेसर, वूमेन्स कॉलेज, रांची, झारखंड।

सारांश :–

कहा जाता है कि शब्द 'ब्रह्म' होता है। किसी भी व्यक्ति के संपूर्ण विकास में भाषा का विकास अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। बच्चों में भाषा विकास एक ऐसी प्रक्रिया है, जो जन्म से ही शुरू हो जाती है। जैसे–जैसे बच्चा बड़ा होता है, उम्र के साथ यह विकसित होती जाती है। भाषाई विकास में सुनना, बोलना, पढ़ना तथा समझना सम्मिलित होता है। बालकों के तार्किक, संज्ञानात्मक, सामाजिक तथा संवेगात्मक विकास में भाषा का महत्वपूर्ण योगदान होता है। जब बच्चा पूर्व प्राथमिक विद्यालय जाने लगता है तब वहां उसके भाषा के विकास पर शिक्षक तथा विद्यालय के वातावरण का अत्यंत प्रभाव पड़ता है। विद्यालयी वातावरण में शिक्षक के देखरेख में बालक भाषा को स्पष्ट रूप से बोलना, लिखना, पढ़ना तथा सही तरीके से प्रयोग करना सीखता है। इससे उसकी संपूर्ण बौद्धिक शक्ति विकसित होती है। प्रस्तुत लघु शोध में बालकों में भाषा विकास हेतु विद्यालय का वातावरण किस प्रकार से विकसित किया जा सकता है, प्रशिक्षित शिक्षकों की मदद से किस प्रकार बालकों में भाषा का विकास उचित माध्यम से किया जा सकता है इस पर शिक्षकों द्वारा खेल क्रियाएं उपकरण एवं सामग्री के माध्यम से भाषा विकास की उद्देश्य क्रियाएं एवं मध्य पर शिक्षकों के प्रभाव का अध्ययन करेंगे।

कुंजी शब्द – भाषा विकास, विद्यालय का वातावरण, शिक्षकों का प्रभाव।

प्रस्तावना :–

मानव विकास में अभिव्यक्ति का अत्यंत महत्वपूर्ण माध्यम भाषा होता है यह वैसी प्रक्रिया है जो जन्म से शुरू होती है तथा उम्र के साथ विकसित होती है भाषा के विभिन्न चरण होते हैं जिसमें शैशव अवस्था (0 से 12 महीने) में बच्चों में रोने बड़बड़ाने, कुनकुनाने, बलबलाने जैसी आवाजें निकलते हैं। शैशवावस्था में बच्चे मां की और अपने आसपास उपस्थित अन्य लोगों की आवाजों और हाव भाव को पहचानते हैं और प्रतिक्रिया देते हैं। धीरे–धीरे वे उनकी आवाज की नकल करना शुरू करते हैं। 12 से 18 महीने में बच्चे एक–एक शब्द बोलना शुरू करते हैं जैसे मां पापा मामा नाना दादा इत्यादि। उनकी समझ विकसित होते–होते 18 से 24 महीने में बच्चे

छोटे–छोटे शब्दों को जोड़कर बोलना शुरू करते हैं जैसे मां खाना दो, पानी दो, घूमने चलो आदि। विकास के क्रम में धीरे–धीरे बच्चे बात करना प्रश्न पूछना प्रारंभ कर देते हैं सरल वाक्य से जटिल वाक्य बनाने की ओर अपनी समझ अनुसार तेजी से वृद्धि करते हैं। तीन से चार वर्ष में बच्चे सभी बातों को समझने लगते हैं और इस आयु के पश्चात बच्चें पूर्व प्राथमिक विद्यालय जाने लगते हैं। वे सरल से जटिल वाक्य कहते हैं। पाठ्यक्रम अनुसार कहानी सुनाना, कविता सुनाना भी प्रारंभ कर देते हैं। अपने मन से मनगढ़ंत कहानियां भी बच्चे इस उम्र में सुनाने लगते हैं। 5 से 8 साल की आयु में बच्चे भाषा के नियमों को समझने लगते हैं। भाषा का व्याकरणिक पक्ष एवं उनके प्रयोग से संबंधित समझ का विकास उनमें होने लगता है। बच्चों के भाषा के विकास पर पढ़ने वाले प्रभावित करने वाले कारकों में अनुवांशिक कारक, पर्यावरणीय कारक, सामाजिक कारक, विद्यालय का वातावरण तथा शिक्षकों की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

पूर्व अध्ययनों की समीक्षा :–

कुमार कृष्ण, (1972) बच्चों के संपूर्ण विकास पर परिवार के बाद सबसे अधिक प्रभाव विद्यालय तथा शिक्षक का पड़ता है। विद्यालय अभिक्षमता बालकों के शैक्षिक उपलब्धि के साथ–साथ उसके सर्वांगीण विकास पर प्रभावी रहता है। यदि विद्यालय में शिक्षक बच्चों की ओर अधिक ध्यान देते हैं, तो बच्चों की क्षमता का संपूर्ण विकास होता है। जिन बच्चों का भाषाई, मौखिक, तार्किक, शाब्दिक विकास उचित प्रकार से नहीं हो पाता उन विद्यालय के शिक्षकों को चाहिए कि उनके उचित विकास के लिए कई विधियां बताएं तथा छात्रों को समस्या समाधान के लिए निर्देशित करें ताकि उनका विकास समुचित रूप से हो सके।

कुप्पुस्वामी (P 386) के शब्दों में 'अच्छा विद्यालय ऐसा पाठ्यक्रम प्रस्तुत करता है जो छात्रों के रुचि और आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विभिन्न क्रियाओं से परिपूर्ण रहता है, ऐसा विद्यालय स्वस्थ मानसिक विकास का वास्तविक कारण है।'

सोरेनसन (P 45) 'शैक्षिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से अध्यापक मानसिक विकास के क्रम के ज्ञान को अपने हित में प्रयोग कर सकता है वह पाठ्यक्रम और शिक्षण को छात्र की सीखने की योग्यता या मानसिक क्षमता की अनुकूल बना सकता है।'

जर्मन के विद्वान मैक्समूलर का कहना है कि 'भाषा और कुछ नहीं केवल मानव के मन की चतुर बुद्धि द्वारा अविष्कृत एक ऐसा उपाय है, जिसकी मदद से हम अपने विचार सरलता और तत्परता से दूसरों पर प्रकट कर सकते हैं और यह चाहते हैं कि इसकी व्याख्या प्रकृति की उपज के रूप में नहीं बल्कि मानव कृत पदार्थ के रूप में करना उचित है।'

अध्ययन की प्रमाणिकता :–

प्रस्तुत लघु शोध के आधार पर बच्चों के भाषाई विकास की जांच करते हुए प्रश्नावली और शाब्दिक, मौखिक जांच के माध्यम से उनके भाषाई क्षमता की जांच की जाएगी तथा उन पर प्रभाव डालने वाले कारकों में से विद्यालयी वातावरण तथा शिक्षकों के प्रभाव का आकलन एवं विश्लेषण किया जाएगा।

विषय की घोषणा –

पूर्व प्राथमिक विद्यालय जाने वाले बच्चों के भाषाई विकास पर शिक्षक तथा विद्यालयी प्रभाव की भूमिका

का अध्ययन।

अध्ययन का उद्देश्य :–

प्रस्तुत शोध का अध्यक्ष के अध्ययन का उद्देश्य यह है कि बच्चों के भाषाई विकास में विद्यालय तथा शिक्षकों की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विद्यालय में बच्चों के लिए उद्देश्य पूर्ण पाठ्यक्रम, खेल सामग्री, उपकरण एवं भाषाई विकास के लिए समुचित वातावरण की उपलब्धता सुनिश्चित हो प्रशिक्षित शिक्षकों के द्वारा प्रत्येक बच्चे पर ध्यान दिया जाए उनके शारीरिक मानसिक विकास के साथ–साथ भाषा के विकास पर गीत, संगीत, कहानी, वाचन, लेखन के द्वारा उनके कौशलों का विकास किया जाए।

अध्ययन की परिकल्पना :–

बच्चों के भाषा के विकास पर विद्यालयी वातावरण तथा शिक्षकों का प्रभाव पड़ता है। विभिन्न उद्देश्य पूर्ण क्रियाओं के द्वारा बच्चों में भाषा का समुचित विकास किया जा सकता है।

अध्ययन की योजना एवं शोध प्रक्रिया :–

इस लघु शोध को पूर्ण करने के लिए विश्वसनीय तथा वैध परीक्षण करने के लिए अवलोकन, प्रश्नावली, साक्षात्कार तथा समाजमित्तीय तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा विश्वसनीयता पूर्वक परीक्षण किया गया है।

शोध में प्रयुक्त उपकरण एवं शोध विधि :–

प्रस्तुत लघु शोध में प्रश्नावली एवं अवलोकन विधि का उपयोग किया गया है। बालकों एवं शिक्षकों से प्रश्नों के माध्यम से बालकों के भाषा विकास की जांच की गई है एवं उनके भाषा विकास पर पड़ने वाले अलग–अलग प्रभावों का अध्ययन किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र लघु शोध अध्ययन के लिए झारखंड राज्य में स्थित रांची जिला के चार पूर्व प्राथमिक विद्यालय का चयन किया गया है। जो टीपूदाना, हटिया, धुर्वा तथा हिनू में है। प्रत्येक विद्यालय से 20–20 बच्चों का चयन किया गया है जिसमें 3 से 5 वर्ष के 10–10 बालक एवं बालिकाएं शामिल हैं।

स्वतंत्र चर पूर्व प्राथमिक विद्यालय, शिक्षक, शिक्षण सामग्री

आश्रित चर भाषा अभिक्षमता

सांख्यिकीय विश्लेषण लघु शोध में सांख्यिकीय विश्लेषण प्रस्तुत किया गया :–

परिणाम एवं निष्कर्ष भाषा अभिक्षमता की जांच हेतु कक्षा कक्ष में बच्चों से भाषा विकास संबंधित प्रश्न पूछे गए। साथ ही अवलोकन विधि से उन पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया गया। पूर्व प्राथमिक विद्यालय में विद्यालय के वातावरण में भाषा को समृद्ध करने हेतु प्रशिक्षित शिक्षक,पर्याप्त शिक्षण सामग्री, रुचिकर पाठ्यक्रम, खेल–खेल में भाषा विकास के क्रिया उपकरणों एवं वाद्ययंत्रो की उपलब्धता को देखा गया। 60 प्रतिशत विद्यालय में पर्याप्त शिक्षण सामग्री उपलब्ध थी। 80ः विद्यालय में प्रशिक्षित शिक्षक उपलब्ध थे।

1.1 शुद्ध उच्चारण, शब्द भंडार, वाक्य की पूर्ण अभिव्यक्ति की क्षमता जांच की गई जिसमें यह पाया गया कि 35% बच्चे शब्दों का शुद्ध उच्चारण करते हैं। 38% बच्चों के शब्द भंडार की क्षमता है तथा 27% बच्चों में वाक्य की पूर्ण अभिव्यक्ति की क्षमता पाई गई।

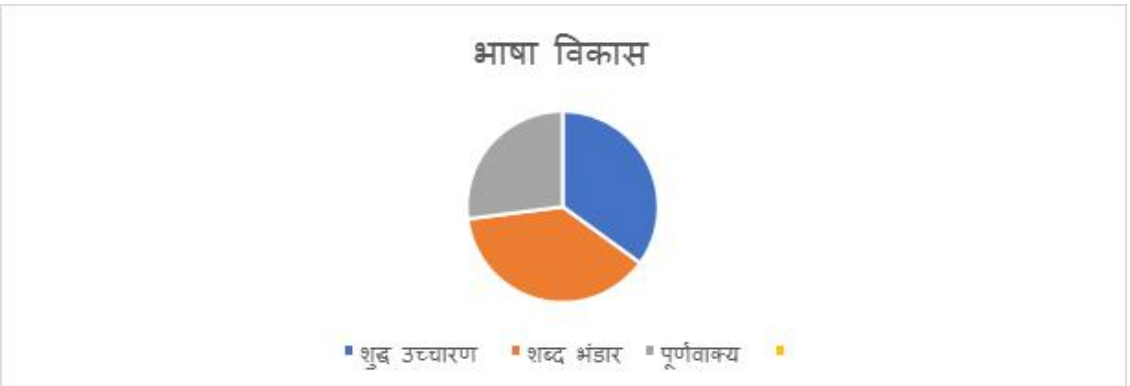

1.2 दैनिक जीवन में पूर्वशाला जाने वाले बच्चे शिक्षकों के साथ विविध क्रियाकलापों में भाग लेते हैं। शिक्षकों के साथ मुख्य वार्तालाप में 40% बच्चों ने सहभागिता किया, वस्तु या चित्र दिखाकर वार्तालाप करने में 35% बच्चों ने रुचि लेकर बात किया वहीं 25% बच्चें किसी विशेष परिस्थिति में वार्तालाप करते है।

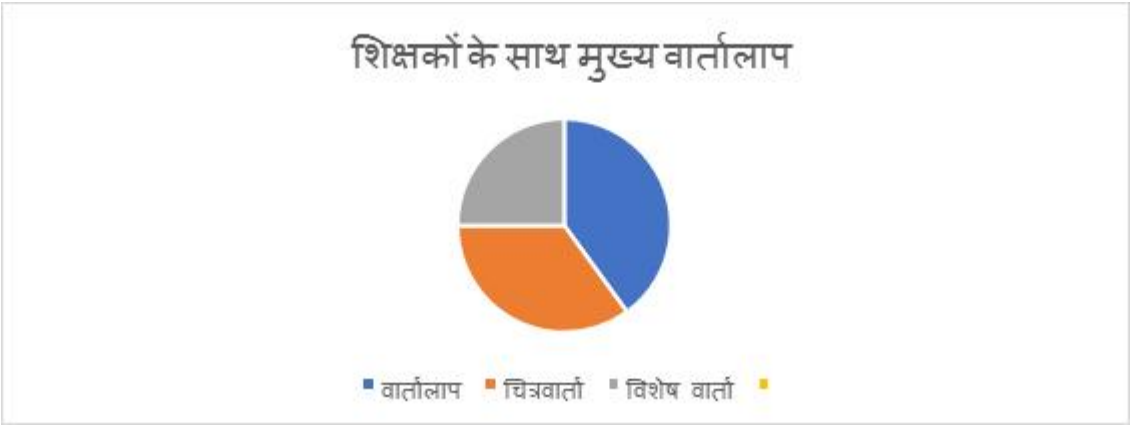

1.3 बच्चों के भाषा विकास में विद्यालय के वातावरण और शिक्षकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। प्रशिक्षित शिक्षकों द्वारा बालगीत, कविता, कहानी, चित्र वर्णन, नाटक आदि को भाषा अभिक्षमता को जांचा गया। इसमें पाया गया प्रशिक्षित शिक्षकों के द्वारा बालगीत व कविता से 45% बच्चों का, कहानी से 38% बच्चों का, चित्र वर्णन तथा नाटक से 17% बच्चों का भाषा विकास हुआ है।

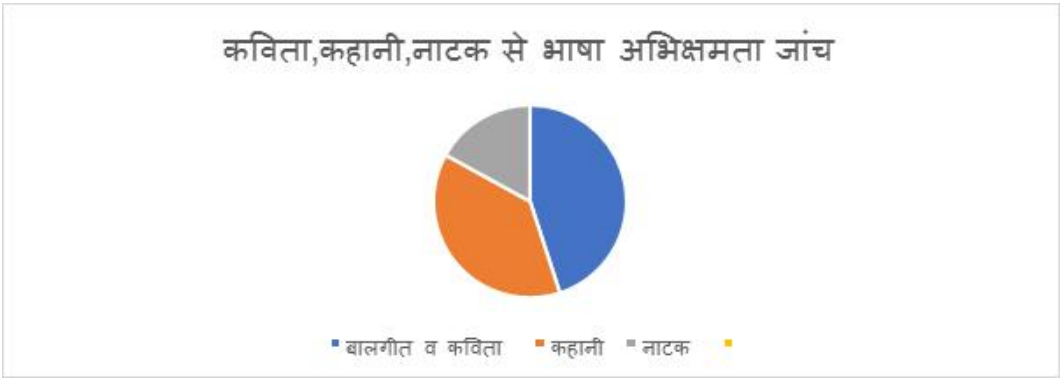

सुझाव एवं शैक्षिक उपादेयता :-

प्रस्तुत लघु शोध के परिणाम के आधार पर यह सुझाव दिया जा सकता है कि भाषा के विकास हेतु पूर्वशाला में माता–पिता एवं शिक्षकों के द्वारा बच्चों को लगातार प्रेरणा एवं प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है। बच्चे

जब अपनी बात कहें तो उन्हें बोलने का अवसर देना चाहिए। उन्हें विभिन्न घटनाओं, क्रियाओं , अनुभवों के वर्णन का अवसर देना चाहिए। उन्हें ध्यान पूर्वक सुनना चाहिए। जब वह वार्तालाप के दौरान अशुद्ध भाषा का उपयोग करें तब उन्हें व्याकरणिक ज्ञान दें तथा स्पष्ट उच्चारण का अभ्यास कराना चाहिए। बच्चों के व्यवहार को समझते हुए उन्हें छोटे–छोटे समूह में मिलजुल कर खेलने और छोटे–छोटे समस्या सामाधान करने का अवसर देना चाहिए। समस्या समाधान के क्रम में उन्हें अपनी अभिव्यक्ति लिखित एवं मौखिक रूप से करने का अवसर देना चाहिए। बच्चों को विद्यालयी पाठ्यक्रम में गीत, संगीत, नाटक, चित्रकथा, कहानी रुचि पूर्ण एवं अर्थपूर्ण माध्यम से भाषा का ज्ञान प्रदान करना चाहिए।

भाषा की शैक्षिक उपादेयता तभी संभव है जब बच्चों में पढ़ने और लिखने के कौशल की नींव पड़ती है। जब बच्चे विद्यालय जाते हैं, तब वह अपने सहपाठी बच्चों, शिक्षकों आदि के साथ संवाद करते हैं। शैक्षणिक गतिविधियों में भागीदारी लेते हैं, प्रश्न पूछते हैं तथा चर्चाओं में शामिल होते हैं। इससे उनकी समझ और ज्ञान का विकास होता है। बच्चों में भाषा के विकास होने से वह दूसरे बच्चों के साथ तथा अपने आसपास के अन्य लोगों से भली–भांति जुड़ पाते हैं। अपनी भावनाओं को सरल तरीके से अभिव्यक्त कर पाते हैं बच्चों के सामने किसी प्रकार की समस्या आने पर वह तार्किक रूप से उन्हें समझते हैं, उनका विश्लेषण करते हैं तथा समाधान खोजने में अपनी समझ का बेहतर इस्तेमाल करते हैं। बच्चों को अपनी भावनाओं, विचारों, अनुभवों की अभिव्यक्ति के अवसर देते रहने से उनका आत्मविश्वास बढ़ता है। भाषा का विकास संपूर्ण रूप से होने से बच्चों में विभिन्न कौशलों का विकास निश्चित रूप से होता है। कला, साहित्यिक, सांस्कृतिक गतिविधियों में उनकी सहभागिता बढ़ती है, जिससे वे न केवल शैक्षणिक क्षेत्र में सफल होते हैं बल्कि वह पारिवारिक, सामाजिक, भावनात्मक, सांस्कृतिक विकास के लिए भी सभी से जुड़कर बेहतर कार्य कर सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. कुमार कृष्ण, (1972) शिक्षा मनोविज्ञान, विद्यालयी अभिक्षमता, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, पृष्ठ संख्या 181–203
2. श्रीवास्तव ने डी एवं प्रीति वर्मा (2011), बाल मनोविज्ञान, बाल विकास, आगरा पब्लिकेशन, आगरा, पृष्ठ संख्या 237 से 262
3. कुप्पु स्वामी (2018), बाल व्यवहार एवं विकास, कोणार्क पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, पृष्ठ संख्या 113 से 155
4. अग्रवाल नीति एवं त्रिपाठी आकांक्षा (2016), मानव विकास, आगरा पब्लिकेशन, आगरा, पृष्ठ संख्या 135 से 147

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 23–28

राजस्थान में उच्च शिक्षक (कॉलेज) बेरोजगारों का बदतर दयनीय स्थिति

(The pathetic condition of unemployed Colleges teachers in Rajasthan is very bad)

Sunita Nehra

Assistant Professor, Education, Indira Gandhi Balika Niketan Girls College,
Ardawata, Jhunjhunu, Rajasthan.

Abstract :-

राजस्थान में उच्च शिक्षा प्राप्त युवाओं की बढ़ती बेरोजगारी एक गंभीर सामाजिक और आर्थिक संकट का रूप ले चुकी है। विशेषकर उच्च शिक्षक पात्रता परीक्षा (जैसे NET, SET, Ph.D.) उत्तीर्ण करने वाले शिक्षित युवाओं की हालत अत्यंत चिंताजनक है। राज्य में शिक्षकों की भारी कमी होने के बावजूद नियमित भर्तियों का लंबे समय तक नहीं होना, नीति–निर्माताओं की उदासीनता और शिक्षा व्यवस्था की उपेक्षा को दर्शाता है। बेरोजगार शिक्षकों को वर्ष दर वर्ष प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी में समय, धन और मानसिक ऊर्जा खर्च करनी पड़ रही है, लेकिन सरकारी स्तर पर स्थायी समाधान नहीं दिखता। इन शिक्षित बेरोजगारों को न तो निजी क्षेत्र में उपयुक्त रोजगार मिलता है और न ही उन्हें राज्य सरकार द्वारा वैकल्पिक रोजगार योजनाओं से जोड़ा जाता है। इससे उनमें हताशा, मानसिक तनाव और सामाजिक अलगाव की भावना गहराती जा रही है। इसके अतिरिक्त, शिक्षा के क्षेत्र में योग्य शिक्षकों की कमी के कारण राज्य की शिक्षा गुणवत्ता पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। यह स्थिति न केवल शिक्षित वर्ग के भविष्य को अंधकारमय बना रही है, बल्कि राज्य के समग्र विकास में भी बाधा उत्पन्न कर रही है। आवश्यक है कि सरकार शीघ्र ही नियमित शिक्षक भर्तियों की प्रक्रिया शुरू करे, नीति में पारदर्शिता लाए, और बेरोजगार शिक्षकों के लिए वैकल्पिक योजनाएं व मान–सम्मानजनक अवसर सुनिश्चित करे, ताकि इस संकट को दूर किया जा सके।

Keywords :– राजस्थान, उच्च शिक्षक, बेरोजगारी, शिक्षित युवा, NET, SET, Ph.D., नियमित भर्तियां, शिक्षा नीति, सरकारी उपेक्षा, मानसिक तनाव, सामाजिक अलगाव, शिक्षा गुणवत्ता, रोजगार संकट, नीति पारदर्शिता, वैकल्पिक योजनाएं, स्थायी समाधान, शिक्षक पात्रता, सरकारी नौकरी, प्रतियोगी परीक्षा, शिक्षा व्यवस्था, शिक्षक कमी, राज्य विकास, बेरोजगार आंदोलन, युवा हताशा, मान–सम्मान, रोजगार अवसर।

Article :

राजस्थान में उच्च शिक्षित बेरोजगारों, विशेष रूप से NET, SET, Ph.D. जैसी योग्यताएं प्राप्त करने वाले युवाओं की स्थिति अत्यंत चिंताजनक होती जा रही है। शिक्षकों की भारी मांग और रिक्त पदों के बावजूद लंबे समय से नियमित भर्तियां नहीं हो रही हैं, जिससे ये योग्य अभ्यर्थी बेरोजगारी का शिकार हो रहे हैं। राज्य की शिक्षा व्यवस्था में सुधार की आवश्यकता के बावजूद सरकार की उदासीनता और नीति–निर्धारण में विलंब ने इन शिक्षित युवाओं को मानसिक तनाव, आर्थिक अस्थिरता और सामाजिक उपेक्षा की स्थिति में ला खड़ा किया है। यह समस्या अब एक बड़े संकट का रूप ले चुकी है।

शैक्षणिक योग्यता और बेरोजगारी के बीच का विरोधाभास :-

राजस्थान में उच्च शिक्षित बेरोजगारों की बढ़ती संख्या एक गंभीर चिंता का विषय बन गई है, विशेष रूप से उन युवाओं के लिए जिन्होंने शिक्षक बनने की दिशा में वर्षों तक मेहनत करके NET, SET, Ph.D. जैसी उच्चस्तरीय शैक्षणिक योग्यताएं प्राप्त की हैं। विडंबना यह है कि इतनी कठिन परीक्षाएं पास करने और विषय में गहराई से ज्ञान प्राप्त करने के बावजूद भी ये अभ्यर्थी स्थायी रोजगार से वंचित हैं। यह विरोधाभास न केवल राज्य की शिक्षा व्यवस्था की कमजोरियों को उजागर करता है, बल्कि यह भी दर्शाता है कि शैक्षणिक उपलब्धियां अब रोजगार की गारंटी नहीं रहीं। शिक्षा का उद्देश्य समाज के निर्माण में सक्षम, योग्य और जिम्मेदार नागरिकों का निर्माण करना है। शिक्षक इस प्रक्रिया के केंद्र में होता है, और जब शिक्षक ही बेरोजगार हो, तो यह पूरे शैक्षिक ढांचे की विफलता को दर्शाता है।

राजस्थान में हर वर्ष हजारों की संख्या में अभ्यर्थी UGC NET, राजस्थान SET और विभिन्न विश्वविद्यालयों से पीएच.डी. की डिग्रियां प्राप्त करते हैं। ये सभी योग्यताएं विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में अध्यापन कार्य हेतु आवश्यक मानी जाती हैं। इसके बावजूद, स्थायी पदों की संख्या अत्यंत सीमित है और भर्तियों की प्रक्रिया वर्षों तक अटकी रहती है। इस विरोधाभास का एक बड़ा कारण है सरकार द्वारा उच्च शिक्षा के क्षेत्र में निवेश की कमी और भर्ती प्रक्रिया में पारदर्शिता व नियमितता का अभाव। कई वर्षों तक कॉलेज व्याख्याताओं की भर्तियां नहीं होतीं, और जब होती भी हैं, तो पदों की संख्या आवश्यकता से कहीं कम होती है। इसके परिणामस्वरूप, योग्य अभ्यर्थी अस्थायी या अतिथि फैकल्टी के रूप में कार्य करने को मजबूर होते हैं, जहां वे न तो स्थायित्व पाते हैं और न ही समुचित वेतन या सम्मान।

इसके अतिरिक्त, निजी क्षेत्र में भी उच्च शिक्षित शिक्षकों के लिए अवसर बहुत सीमित हैं। निजी महाविद्यालयों में वेतन बहुत कम होता है और कार्यस्थलों की परिस्थितियाँ भी शोषणकारी होती हैं। इससे योग्य अभ्यर्थियों का मनोबल टूटता है और उनमें निराशा घर कर जाती है। यह स्थिति धीरे–धीरे एक सामाजिक समस्या का रूप ले रही है, क्योंकि बेरोजगारी से उत्पन्न तनाव, आत्मसम्मान की हानि और भविष्य को लेकर अनिश्चितता, मानसिक स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रही है। सबसे अधिक चिंताजनक पहलू यह है कि योग्य शिक्षक उपलब्ध होने के बावजूद, राज्य की शिक्षा संस्थान गुणवत्तापूर्ण शिक्षा से वंचित हैं। ग्रामीण और अर्ध–शहरी क्षेत्रों में कॉलेजों में फैकल्टी की भारी कमी है, जिससे छात्रों की शिक्षा प्रभावित हो रही है। यह शिक्षा के अधिकार और गुणवत्ता, दोनों के साथ अन्याय है।

इस विरोधाभास को दूर करने के लिए आवश्यक है कि सरकार उच्च शिक्षा में निवेश बढ़ाए, रिक्त पदों

को भरने के लिए नियमित और पारदर्शी प्रक्रिया सुनिश्चित करे, और योग्य शिक्षकों को स्थायी, सम्मानजनक रोजगार प्रदान करे। साथ ही, आवश्यकता इस बात की भी है कि नीति–निर्माण में इन बेरोजगार शिक्षकों की वास्तविक स्थिति को ध्यान में रखा जाए। केवल प्रमाण–पत्र देना पर्याप्त नहीं, जब तक उस योग्यता का समुचित उपयोग और सम्मान नहीं होता। अतः यह स्पष्ट है कि शैक्षणिक योग्यता और रोजगार के बीच का यह गहरा विरोधाभास केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि सामाजिक और संरचनात्मक समस्या है। इसे नज़रअंदाज़ करना एक पूरी पीढ़ी के सपनों को कुचलने जैसा होगा। अब समय आ गया है कि इस मुद्दे को प्राथमिकता दी जाए और ऐसे उपाय किए जाएं जो न केवल शिक्षित बेरोजगारों को अवसर दें, बल्कि राज्य की शिक्षा व्यवस्था को भी सशक्त बनाएं।

सरकारी नीतियों और भर्ती प्रक्रियाओं में विलंब :-

राजस्थान में उच्च शिक्षित बेरोजगारों की समस्या का एक प्रमुख कारण है सरकारी नीतियों में अस्पष्टता और भर्ती प्रक्रियाओं में अत्यधिक विलंब। विशेषकर उच्च शिक्षकों की नियुक्तियों को लेकर सरकार की निष्क्रियता और असमंजसपूर्ण रवैया वर्षों से बेरोजगार शिक्षकों के भविष्य के साथ खिलवाड़ कर रहा है। योग्यताएं प्राप्त कर चुके NET, SET, Ph.D. धारक अभ्यर्थी हर वर्ष यह उम्मीद लेकर बैठते हैं कि सरकार कॉलेज व्याख्याता या स्कूल व्याख्याता के पदों पर भर्तियां करेगी, लेकिन अधिकांश समय ये घोषणाएं केवल कागजों पर ही रह जाती हैं, या फिर प्रक्रिया आरंभ होने के बाद वर्षों तक अधर में लटकी रहती है।

राजस्थान लोक सेवा आयोग द्वारा समय–समय पर भर्तियों की घोषणाएं तो की जाती हैं, लेकिन प्रक्रिया की धीमी गति, तकनीकी खामियां, कानूनी अड़चनें और प्रशासनिक असमर्थता के कारण इनका निष्पादन समय पर नहीं हो पाता। उदाहरण के तौर पर, एक भर्ती प्रक्रिया को पूरा होने में 2 से 3 वर्षों का समय लग जाना अब आम बात हो चुकी है। इस विलंब से न केवल बेरोजगारों का समय और धैर्य नष्ट होता है, बल्कि उनके शैक्षणिक व मानसिक संतुलन पर भी गहरा प्रभाव पड़ता है। इन प्रक्रियाओं में पारदर्शिता की कमी, चयन के मानकों को बार–बार बदलना, और कभी–कभी आरक्षण नीति या कोर्ट केस के चलते पूरी प्रक्रिया रद्द कर देना जैसी समस्याएं आम हो गई हैं। इससे अभ्यर्थियों में सरकार के प्रति विश्वास की कमी देखी जा रही है। कई बार तो ऐसा भी हुआ है कि जिन अभ्यर्थियों ने वर्षों पहले आवेदन किया था, वे अब आयु सीमा पार कर चुके हैं और दोबारा मौका नहीं मिल पाता। यह स्थिति अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण और अन्यायपूर्ण है।

सरकारी नीतियों में यह भी देखने को मिलता है कि शिक्षकों की भारी कमी होने के बावजूद नई भर्तियों की स्वीकृति या बजट आवंटन नहीं होता। राज्य के कई सरकारी कॉलेज और विश्वविद्यालय वर्षों से स्थायी फैकल्टी की कमी से जूझ रहे हैं, लेकिन सरकार अतिथि या कॉन्ट्रैक्ट आधारित शिक्षकों से काम चलाने की नीति पर अधिक भरोसा करती है। इससे न केवल शिक्षा की गुणवत्ता प्रभावित होती है, बल्कि योग्य अभ्यर्थियों को स्थायी रोजगार से भी वंचित रहना पड़ता है। यह नीति शिक्षा को सेवा के रूप में नहीं, बल्कि लागत के रूप में देखती है, जो एक दीर्घकालिक दृष्टिकोण से घातक है। जब सरकारें शिक्षा क्षेत्र में निवेश करने से पीछे हटती हैं, तो समाज में ज्ञान, नैतिकता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का ह्रास होता है। इसके विपरीत, यदि सरकार शिक्षा और शिक्षकों को प्राथमिकता दे, तो समाज का हर वर्ग उससे लाभान्वित होता है। सरकार की नीतियों में समन्वय का अभाव भी एक बड़ी समस्या है। एक ओर नई शिक्षा नीति में गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा पर जोर दिया जा रहा

है, वहीं दूसरी ओर योग्य शिक्षकों की भर्ती में लापरवाही दर्शाई जा रही है। यह विरोधाभास नीतियों की जमीनी सच्चाई को उजागर करता है। इस सबका परिणाम यह है कि योग्य युवा या तो हताश होकर दूसरी नौकरियों की ओर रुख कर रहे हैं, या फिर निराशा में प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी छोड़ रहे हैं। कुछ मानसिक अवसाद के शिकार हो जाते हैं, और कुछ राज्य या देश तक छोड़ने को मजबूर होते हैं। इसलिए आवश्यक है कि राजस्थान सरकार उच्च शिक्षकों की भर्ती प्रक्रिया को समयबद्ध, पारदर्शी और न्यायपूर्ण बनाए। साथ ही, शिक्षा विभाग में रिक्त पदों की गणना करके हर वर्ष नियमित रूप से नियुक्तियों की योजना बनाई जाए। यदि योग्य शिक्षकों को उनका उचित स्थान नहीं मिला, तो राज्य की शिक्षा प्रणाली और भविष्य दोनों ही संकट में पड़ सकते हैं।

मानसिक, आर्थिक और सामाजिक प्रभाव :–

राजस्थान में उच्च शिक्षित बेरोजगारों की संख्या में लगातार हो रही वृद्धि न केवल एक शैक्षिक या प्रशासनिक समस्या है, बल्कि यह एक गहरी सामाजिक और मानवीय चुनौती बन चुकी है। NET, SET, Ph.D. जैसी कठिनतम परीक्षाएं उत्तीर्ण करने के बावजूद जब योग्य युवाओं को नौकरी नहीं मिलती, तो इसका सीधा असर उनके मानसिक, आर्थिक और सामाजिक जीवन पर पड़ता है। यह स्थिति धीरे–धीरे एक ऐसे संकट का रूप ले रही है जो एक व्यक्ति या वर्ग विशेष तक सीमित न रहकर पूरे समाज के स्वास्थ्य और संतुलन को प्रभावित कर रहा है। सबसे पहले बात करें मानसिक प्रभावों की, तो लंबे समय तक बेरोजगार रहने से इन योग्य युवाओं में गहरी निराशा और हताशा घर कर जाती है। उन्हें बार–बार यह महसूस होता है कि उनकी योग्यता, परिश्रम और तपस्या व्यर्थ चली गई। निरंतर परीक्षा की तैयारी, बार–बार बदलती सरकारी नीतियां, अधूरी या लंबित भर्ती प्रक्रियाएं, और अवसरों की कमी उन्हें मानसिक रूप से थका देती हैं। धीरे–धीरे उनमें आत्मविश्वास की कमी, आत्म–संदेह और चिंता जैसे लक्षण उभरने लगते हैं। कई मामलों में यह तनाव डिप्रेशन और अन्य मानसिक बीमारियों में भी बदल जाता है, जिससे न केवल व्यक्ति बल्कि उसके परिवार और आसपास के सामाजिक वातावरण पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। आर्थिक प्रभाव भी अत्यंत गंभीर हैं। वर्षों तक पढ़ाई करने, कोचिंग, पुस्तकें और परीक्षा शुल्क पर भारी खर्च करने के बाद जब रोजगार नहीं मिलता, तो अभ्यर्थी और उसके परिवार को आर्थिक बोझ झेलना पड़ता है। जो अभ्यर्थी मध्यमवर्गीय या निम्नवर्गीय पृष्ठभूमि से आते हैं, उनके लिए यह स्थिति और भी कठिन होती है। कुछ मामलों में परिवार कर्ज लेकर शिक्षा दिलाता है, लेकिन जब उसके बदले नौकरी नहीं मिलती तो पूरे परिवार की आर्थिक स्थिति डगमगा जाती है। बेरोजगार शिक्षक, अस्थायी नौकरियों या ट्यूशन के माध्यम से गुजारा करने को मजबूर होते हैं, जो न तो स्थायित्व देती हैं और न ही सम्मानजनक जीवन। यह आर्थिक अस्थिरता उन्हें समाज में पीछे धकेलती जाती है।

सामाजिक प्रभाव भी उतने ही गंभीर हैं। जब समाज में किसी योग्य व्यक्ति को उसकी योग्यता के अनुरूप सम्मान या स्थान नहीं मिलता, तो वह सामाजिक रूप से अलग–थलग महसूस करता है। उसके आत्मसम्मान को गहरी ठेस पहुँचती है। रिश्तेदार, पड़ोसी और समाज के अन्य लोग अक्सर तुलना करते हैं, तंज कसते हैं, जिससे युवा भीतर से टूटने लगता है। खासकर विवाह, सामाजिक समारोह या पारिवारिक निर्णयों में बेरोजगार युवक–युवतियों को उपेक्षित किया जाता है। इसके अतिरिक्त, कई शिक्षित युवा उम्र की सीमा पार कर लेने के कारण भर्तियों के अयोग्य हो जाते हैं, जिससे वे हमेशा के लिए सिस्टम से बाहर हो जाते हैं और सामाजिक तौर

पर हाशिये पर चले जाते हैं। इस स्थिति का सबसे दुखद पहलू यह है कि इन योग्य बेरोजगारों को समाज में "असफल" के रूप में देखा जाने लगता है, जबकि असल असफलता उस व्यवस्था की होती है जिसने उन्हें अवसर देने में विफलता दिखाई है। यह सामाजिक अस्वीकार्यता एक शिक्षित वर्ग को हताशा, असुरक्षा और सामाजिक विद्रोह की ओर भी धकेल सकती है। कुछ युवा सामाजिक आंदोलनों, धरनों और विरोध प्रदर्शनों में भाग लेते हैं, जबकि कुछ गहरे अवसाद में चले जाते हैं।

समाधान के संभावित उपाय और नीति-निर्माण की दिशा :-

राजस्थान में उच्च शिक्षित बेरोजगारों की दयनीय स्थिति को सुधारने के लिए केवल सहानुभूति पर्याप्त नहीं है, बल्कि ठोस और दीर्घकालिक समाधान की आवश्यकता है। NET, SET, Ph.D. जैसे कठिन मानकों को पार करने के बावजूद रोजगार से वंचित शिक्षकों का संघर्ष यह दर्शाता है कि नीति–निर्माण में बड़ी खामी है। राज्य सरकार यदि इस संकट को दूर करना चाहती है, तो उसे बहुआयामी दृष्टिकोण अपनाकर समग्र रणनीति तैयार करनी होगी, जिसमें शिक्षा व्यवस्था, भर्ती प्रक्रिया और रोजगार नीति तीनों को समावेशी रूप से शामिल किया जाए। सबसे पहले, भर्ती प्रक्रिया में नियमितता और पारदर्शिता लाना अनिवार्य है। राज्य में उच्च शिक्षा विभाग के अंतर्गत आने वाले कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में वर्षों से व्याख्याता पद खाली पड़े हैं, लेकिन भर्तियों की प्रक्रिया अनियमित और अत्यधिक विलंबित रहती है। सरकार को चाहिए कि प्रत्येक वर्ष रिक्त पदों का मूल्यांकन कर समयबद्ध योजना के तहत अधिसूचना जारी करे। राजस्थान लोक सेवा आयोग जैसी संस्थाओं को भर्ती प्रक्रिया के लिए समयसीमा निर्धारित कर कार्य करना चाहिए, ताकि अभ्यर्थियों को लंबे समय तक मानसिक व आर्थिक अस्थिरता का सामना न करना पड़े। दूसरा, शिक्षा बजट में वृद्धि और उच्च शिक्षा में निवेश बढ़ाना अत्यंत आवश्यक है। राजस्थान में शिक्षा पर खर्च सकल घरेलू उत्पाद के अनुपात में बहुत कम है। जब तक शिक्षा को एक प्राथमिक क्षेत्र के रूप में नहीं देखा जाएगा, तब तक योग्य शिक्षकों को उचित अवसर नहीं मिल सकते। उच्च शिक्षा संस्थानों के विस्तार, नए महाविद्यालयों की स्थापना, और विभागों में नए पाठ्यक्रमों की शुरुआत से रोजगार के नए अवसर उत्पन्न किए जा सकते हैं। तीसरा, गेस्ट फैकल्टी और अनुबंध आधारित शिक्षकों की प्रणाली को धीरे–धीरे समाप्त कर स्थायी नियुक्तियों को बढ़ावा देना चाहिए। यह नीति न केवल रोजगार को स्थायित्व देगी, बल्कि शिक्षा की गुणवत्ता में भी सुधार लाएगी।

वर्तमान में कई योग्य शिक्षक वर्षों से अतिथि व्याख्याता के रूप में कार्य कर रहे हैं, जिन्हें न्यूनतम वेतन और कोई सामाजिक सुरक्षा नहीं मिलती। यह न केवल शोषण है, बल्कि संसाधनों की बर्बादी भी है। चौथा, नीति निर्माण में बेरोजगार शिक्षकों की भागीदारी और सुझावों को शामिल किया जाना चाहिए। निर्णय प्रक्रिया में केवल अधिकारी और शैक्षणिक संस्थानों के प्रमुखों तक सीमित रहना एकतरफा सोच को बढ़ावा देता है। योग्य अभ्यर्थियों की वास्तविक समस्याएं, सुझाव और अनुभव नीति को अधिक व्यावहारिक और उपयोगी बना सकते हैं। इसके लिए बेरोजगार शिक्षकों के प्रतिनिधियों को शिक्षा आयोग, सलाहकार समितियों और संवाद प्रक्रियाओं में स्थान देना एक सकारात्मक कदम हो सकता है। पाँचवाँ, वैकल्पिक रोजगार और कौशल विकास योजनाएं भी विकसित की जानी चाहिए, ताकि उच्च शिक्षित युवाओं को केवल एक ही मार्ग पर निर्भर न रहना पड़े। ऑनलाइन शिक्षा, ई–लर्निंग प्लेटफ़ॉर्म, शोध कार्य, शैक्षिक सामग्री निर्माण, निजी शैक्षणिक उद्यमों के लिए स्टार्टअप सहायता जैसी योजनाएं इन्हें स्वावलंबी बना सकती हैं। सरकार चाहे तो सार्वजनिक–निजी भागीदारी मॉडल के

तहत इन योजनाओं को गति दे सकती है। अंततः, मानसिक स्वास्थ्य सहायता और काउंसलिंग सेवाओं का विस्तार भी आवश्यक है।

निष्कर्ष :-

राजस्थान में उच्च शिक्षित बेरोजगार शिक्षकों की स्थिति अत्यंत गंभीर और दयनीय हो चुकी है। NET, SET, Ph.D., जैसी परीक्षाएं उत्तीर्ण करने के बावजूद योग्य उम्मीदवारों को रोजगार नहीं मिल पा रहा है, जिससे वे मानसिक, आर्थिक और सामाजिक रूप से परेशान हैं। राज्य में शिक्षकों की भारी कमी के बावजूद समय पर भर्तियों का न होना सरकार की लापरवाही और शिक्षा के प्रति उदासीनता को दर्शाता है। यदि जल्द ही इस दिशा में ठोस कदम नहीं उठाए गए, तो न केवल इन शिक्षित युवाओं का भविष्य अंधकारमय होगा, बल्कि राज्य की शिक्षा प्रणाली और सामाजिक ताना–बाना भी प्रभावित होगा। अतः आवश्यक है कि सरकार पारदर्शी व नियमित भर्तियों की प्रक्रिया अपनाए, वैकल्पिक रोजगार योजनाएं लागू करे और इन शिक्षित बेरोजगारों को उनका उचित स्थान व सम्मान प्रदान करे।

References :

1. राजस्थान बेरोजगारी रिपोर्ट 2023, राजस्थान श्रम एवं रोजगार विभाग, जयपुर।
2. 'शिक्षा में गिरती गुणवत्ता और बेरोजगारी का संकट', डॉ. अरुण कुमार शर्मा, शोध विमर्श मासिक पत्रिका, मार्च 2023 अंक, भारतीय शिक्षाशास्त्र परिषद, नई दिल्ली।
3. 'NET और Ph/D/ धारकों की व्यर्थ होती योग्यता' लेखक : प्रो. सविता मीणा, राजस्थान पत्रिका (हिंदी दैनिक समाचार पत्र), 12 जनवरी 2024, उच्च शिक्षित युवाओं की बेरोजगारी और सरकारी उदासीनता पर लेख।
4. 'राजस्थान में व्याख्याता पदों की रिक्तता और भर्ती प्रक्रिया का विश्लेषण', लेखक : डॉ. दीपक जोशी, शिक्षा संवाद, शोध पत्रिका, अंक 45, 2022, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।
5. 'बेरोजगारी और युवा : एक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण', डॉ. मनीषा गुप्ता, समकालीन भारत, हिंदी सामाजिक विज्ञान शोध जर्नल, वर्ष : 2021, अंक : 3, पृष्ठ : 45–52

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 29–35

महिलाओं के सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन लाने में स्टार्ट–अप योजनाओं की भूमिका

चुनमुन कुमारी
शोधार्थी, स्नातकोतर समाजशास्त्र विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

शोध सारांश :–

21वीं सदी का भारत एक अभूतपूर्व बदलाव के दौर से गुजर रहा है, और इस परिवर्तन की अगुवाई कर देश कि महिलाएं व युवा रहे हैं। बिहार, जिसे कभी पलायन, बेरोजगारी और संसाधनों की कमी के लिए जाना जाता था, अब युवाओं की नई सोच और स्टार्टअप की खोज के कारण एक नई दिशा में अग्रसर हो रहा है। यह सिर्फ आर्थिक नहीं, बल्कि सामाजिक विकास की भी कहानी है, जहाँ नवाचार, आत्मनिर्भरता और स्थानीय समाधान के जरिए समाज की दशा–दिशा बदली जा रही है। बिहार के युवा एवं महिलाओं ने यह साबित किया है कि अगर उन्हें अवसर, संसाधन और मार्गदर्शन मिले, तो वे पारंपरिक सीमाओं को तोड़कर नए विचारों और उद्यमों के माध्यम से अपने राज्य और समाज को सशक्त बना सकते हैं। यह अध्ययन इस बात पर केंद्रित है कि कैसे बिहार के युवा स्टार्टअप की शक्ति को अपनाकर समाज के हर स्तर पर सकारात्मक बदलाव ला रहे हैं। यह शोध न केवल आर्थिक पहलुओं को, बल्कि उस सोच, दृष्टिकोण और सामाजिक प्रतिबद्धता को भी उजागर करेगा जो इस परिवर्तन का आधार है।

शब्द कुंजी – स्टार्ट–अप योजना, सामाजिक– आर्थिक, महिला सशक्तिकरण।

भूमिका :–

भारत एक युवा प्रधान देश है, जहाँ की जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा 18 से 35 वर्ष के आयु वर्ग में है। यह युवा वर्ग किसी भी देश की सबसे बड़ी ताकत होता है, क्योंकि उसमें ऊर्जा, नवाचार, जोश और जोखिम उठाने की क्षमता होती है। परंतु केवल जनसंख्या से कोई देश शक्तिशाली नहीं बनता, जब तक कि उस जनशक्ति को सही दिशा और अवसर न मिले। आज की तेजी से बदलती हुई दुनिया में स्टार्टअप्स एक ऐसा माध्यम बनकर उभरे हैं, जो महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने, उनके विचारों को आकार देने, और आर्थिक–सामाजिक बदलाव लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

स्टार्टअप का आशय एक ऐसी नवाचार–आधारित उद्यमिता से है, जिसमें युवा नई सोच, तकनीकी समाधान और रचनात्मक विचारों के साथ किसी उत्पाद या सेवा को बाजार में प्रस्तुत करते हैं। यह सिर्फ व्यावसायिक लाभ तक सीमित नहीं रहता, बल्कि इससे समाज में सकारात्मक परिवर्तन भी आते हैं। उदाहरण

के लिए, कोई स्टार्टअप ग्रामीण महिलाओं को रोजगार देता है, कोई स्वच्छता पर काम करता है, तो कोई शिक्षा को सुलभ बनाता है। इस प्रकार, स्टार्टअप्स समाज के अलग–अलग वर्गों को जोड़कर एक समावेशी विकास का वातावरण तैयार करते हैं। युवाओं के लिए स्टार्टअप एक ऐसा मंच है जो उन्हें पारंपरिक नौकरियों की अपेक्षा अधिक स्वतंत्रता, नवाचार और नेतृत्व प्रदान करता है। जहां पहले युवा सरकारी या निजी नौकरियों के पीछे भागते थे, आज वे खुद की कंपनियाँ खोलने की सोच रखते हैं। इससे न केवल उनकी आर्थिक स्थिति मजबूत होती है, बल्कि समाज में उनकी एक प्रेरणादायक छवि भी बनती है।

आज स्टार्टअप केवल व्यापार नहीं, बल्कि एक सामाजिक आंदोलन बन चुका है, जो रोजगार निर्माण, ग्रामीण विकास, शिक्षा सुधार, महिला सशक्तिकरण, स्वास्थ्य सेवाओं और डिजिटलीकरण जैसे क्षेत्रों में गहरी छाप छोड़ रहा है। जहाँ पहले जुआ, सट्टा और पलायन जैसी सोच युवाओं को भटका रही थी, वहीं अब वे खुद की पहचान बनाने, दूसरों को रोजगार देने और समाज में सकारात्मक बदलाव लाने की दिशा में कार्य कर रहे हैं। इस परिवर्तन के पीछे केवल आर्थिक लाभ नहीं, बल्कि एक गहरी सामाजिक चेतना और जिम्मेदारी की भावना काम कर रही है। सरकार द्वारा चलाई जा रही योजनाएं जैसे– स्टार्टअप इंडिया, मेक इन इंडिया, प्रधानमंत्री मुद्रा योजना, और बिहार सरकार की दीदी योजना, इन प्रयासों को न केवल प्रोत्साहन दे रही हैं, बल्कि सामाजिक दृष्टिकोण से स्थायी विकास की राह भी खोल रही हैं। यह अध्ययन इस बात पर केंद्रित है कि कैसे बिहार के युवा स्टार्टअप की शक्ति को अपनाकर समाज के हर स्तर पर सकारात्मक बदलाव ला रहे हैं। यह शोध न केवल आर्थिक पहलुओं को, बल्कि उस सोच, दृष्टिकोण और सामाजिक प्रतिबद्धता को भी उजागर करेगा जो इस परिवर्तन का आधार है।

साहित्य की समीक्षा :–

बिहार में स्टार्टअप संस्कृति अभी प्रारंभिक चरण में है, लेकिन इसके माध्यम से सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन लाने के कई प्रयास सामने आए हैं। विभिन्न शोध, रिपोर्ट्स और केस स्टडीज से यह स्पष्ट होता है कि राज्य में नवाचार की गति धीमी अवश्य है, परंतु संभावनाएं अत्यधिक हैं।

- डॉ के. बालाजी (2023) ने अपने अध्ययन "startup india: opportunities" में लिखा है कि स्टार्टअप की शुरुआत में युवाओं को अनेक चुनौतियों एवं सम्भावनाओं का समाना करना पड़ता है।
- दता और सुंदरराजन (2018) का अध्ययन "भारत में प्रौद्योगिकी" मे स्टार्टअप के उदय ई : कॉमर्स, फिनटेक, जैसी क्षेत्रो के उद्‌भव पर प्रकाश डालता हैं।
- सिंह, ए अल. (2011) ने अपने अनुसंधान में भारत में स्टार्टअप्स द्वारा सामना की जाने वाली चुनौतियों के निदान के लिए सीमित के गठन का सलाह दिया है, जिससे युवाओं को फंडिंग, नियामक जटिलताओं और प्रतिभा अधिग्रहण के पहुंच से दूर ना हो।
- चक्रवर्ती और रे (2020) अध्ययन सरकारी नीतियों के प्रभाव पर केंद्रित है, जैसे कि स्टार्टअप भारत की पहल, स्टार्टअप के विकास पर नीति के सकारात्मक प्रभावों पर प्रकाश डालता है, फंडिंग के अवसरों, सरलीकृत नियमों और समर्थन के संदर्भ में हस्तक्षेप स्टार्टअप के लिए सेवाएं उपलब्ध कराई जा रही है।
- गुप्ता और धर्मेंद्र (2017) ने अपने अनुसंधान विकास में उद्यम पूंजी वित्त पोषण की भूमिका की जांच करता है।
- Sinha & Verma (2021), ने अपने अध्ययन "Women Entrepreneurship in Bihar through Startups"

में इस बात की आवश्यकता पर जोर दिया है कि युवाओं से सम्बन्धित सरकारी योजनाएं, समर्थन, ऊष्मायन केंद्र और कौशल विकास कार्यक्रम आदि उनके आर्थिक उथान में महत्वपूर्ण निभाया है।

अध्ययन का उद्देश्य :-

महिलाओं के सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन लाने में स्टार्ट–अप योजनाओं की भूमिका का अध्ययन करना।

अध्ययन पद्धति :-

वर्तमान अध्ययन वर्णात्मक एवं अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप पर आधारित है। प्रस्तुत अध्ययन बिहार के भोजपुर जिला के अंतर्गत आरा नगर में रहने वाली 100 महिलाओं पर आधारित है। उतरदात्रियों के रूप में चयन उद्देश्यपूर्ण निदर्शन पद्धति के आधार पर किया जाएगा। प्रस्तुत अध्ययन में तथ्य संकलन दो स्तरों पर किया जाएगा, प्राथमिक एवं द्वितीयक तथ्य। प्राथमिक तथ्यों का संकलन शोधकर्ता द्वारा साक्षात्कार– अनुसूची की सहायता से अवलोकन एवम व्यक्तिगत साक्षात्कार विधियों द्वारा किया जाएगा। द्वितीयक तथ्यों का संकलन अध्ययन से सम्बंधित विभिन्न पुस्तकों, शोध–पत्रों, सन्दर्भ ग्रन्थों, पत्र–पत्रिकाओं, समाचार पत्रों, प्रकाशित व अप्रकाशित विविध सरकारों एवं गैर सरकारी प्रतिवेदनों, इंटरनेट, पुस्तकालयों तथा वाचनालयों से किया जाएगा। प्राप्त दतों के विश्लेषण के लिए मैन्युअल के द्वारा तथ्यों का विश्लेषण किया जाएगा।

तथ्यों का वर्गीकरण एवं सारणीयण

तालिका संख्या–1

आयु के आधार पर वर्गीकरण

आयु	संख्या	प्रति ात
21–30	10	60
31–40	30	30
41–50	10	10
कुल	100	100

उपर्युक्त तालिका से हमें पता चलता है कि 60 प्रतिशत उतरदात्रियां 21–30 वर्ष के आयु वर्ग के 30 प्रतिशत 31–40 आयु वर्ग के एवं 10 प्रतिशत 41–50 वर्ष के आयु वर्ग के है।

तालिका संख्या–2

व्यक्तिगत वार्षिक आय के आधार पर

वर्गीकरण वार्षिक आय	संख्या	प्रति ात
एक लाख से कम	24	24
एक साल से चार लाख	40	40
चार लाख से आठ लाख	20	20
आठ लाख से बारह लाख	10	10
बारह लाख से अधिक	06	06
कुल योग	100	100

उपर्युक्त तालिका से हमें ज्ञात होता है कि कुल 100 उत्तरदाताओं में से 1 लाख से कम व्यक्तिगत वार्षिक आय वाले उतरदात्रियों की संख्या 24 प्रतिशत है। 1 लाख से 4 लाख के आय वाले की संख्या 40 प्रतिशत है। 4 लाख से 8 लाख के आय वाले की संख्या 20 प्रतिशत है। 8 से 12 लाख वाले की संख्या 10 प्रतिशत है और 12 लाख आय वाले की संख्या 6 प्रतिशत है।

तालिका संख्या-3

स्टार्ट-अप योजना का लाभ किस तरह से उठाने चाहिए

लाभ	संख्या	प्रति ात
लोन लेकर	30	30
कर में छुट	12	12
सब्सिडी लेकर	16	16
स्टार्ट–अप के लिए ट्रेडमार्क दाखिल करने की फीस मे ं छुट	14	14
सरकार द्वारा केडित कार्ड लेकर	08	08
कुल योग	**100**	100

उपर्युक्त तालिका से हमें पता चलता है कि 100 प्रतिशत उत्तरदाता स्टार्ट–अप इंडिया योजना के तहत लोन लेकर इन योजनाओं का लाम उठा रहे हैं। 12 प्रतिशत उत्तरदाता कर में छूट लेकर इन योजनाओं का लाभ उठा रहे हैं। 16 प्रतिशत उत्तरदाता सब्सिडी लेकर लाभ उठा रहे है। 14 प्रतिशत उतरदात्रियों स्टार्टअप्स के लिए ट्रेडमार्क दाखिल करने की फीस में छूट लेकर उठा रहे हैं वहीं 8 प्रतिशत उतरदात्रियों सरकार द्वारा क्रेडिट कार्ड प्राप्त करके लाभ उठा रहे है।

तालिका संख्या-4

सरकारी से संतुष्ट है तो किस प्रकार से संतुष्ट है के जानकारी के आधार पर वर्गीकरण

वक्तव्य	संख्या	प्रति ात
सामाजिक रूप से	20	20
आर्थिक रूप से	20	20
मनसिक रूप से	20	20
उपर्युक्त सभी	40	40
कुल योग	100	100

उपर्युक्त तालिका से हमें पता चलता है कि सामाजिक रुप से संतुष्ट उतरदात्रियों की संख्या 20 प्रतिशत है, आर्थिक रुप से संतुष्ट की संख्या 20 प्रतिशत है, मानसिक रुप से संतुष्ट उतरदात्रियों की संख्या 20 प्रतिशत है और सामाजिक, मानसिक, आर्थिक तीनों रुप से संतुष्ट उत्तरदाताओं की संख्या 40 प्रतिशत है।

तालिका संख्या-5

स्टार्ट-अप के जरिए कितने लोगों को रोजगार देने की जानकारी के आधार पर वर्गीकरण

वक्तव्य	संख्या	प्रति ात
एक भी नहीं	0	0
1 से 5	40	40
5 से 10	40	40
10 से 15	06	06
15 से 20	08	08
20 ज्यादा	06	06
कुल योग	100	100

उपर्युक्त तालिका से हमे पता चलता है कि ऐसा कोई भी उद्यमी उतरदात्रिया नहीं है जो स्टार्ट–अप के जरिए कम से कम एक भी व्यक्ति को रोजगार नहीं दे रहे है वहीं 40 प्रतिशत उद्यमी उतरदात्रियों ऐसे है जिन्होंने 1 से 5 लोगों को रोजगार दिया है। 5 से 10 लोगों को रोजगार देने वाले उत्तरदाता की संख्या 40 प्रतिशत है। 10 से 15 लोगों को रोजगार देने वालों की संख्या 6 प्रतिशत है। 15 से 20 लोगों को रोजगार देने वालों की संख्या 8 प्रतिशत है वहीं 6 प्रतिशत लोगों ने 20 से ज्यादा लोगों को रोजगार दिया है।

तालिका संख्या-6

स्टार्ट-अप योजना एवं ऐसी अन्य उद्यमी योजनाओं से हुनरमंद लागों को अपनी आर्थिक-सामाजिक स्थिति सुधारने का नया अवसर मिलने के आधार पर वर्गीकरण

वक्तव्य	संख्या	प्रति ात
हाँ	90	90
नहीं	10	10
कुल योग	100	100

उपर्युक्त तालिका से हमे पता चलता है कि 90 प्रतिशत उतरदात्रियां समझते है कि स्टार्ट–अप स्कीम एवं अन्य उद्यमी योजनाओं से हुनरमंद लोगों को अपनी आर्थिक सामाजिक स्थिति को सुधारने का नया अवसर मिलेगा वही 10 प्रतिशत उतरदात्रियां ऐसे है जिन्हें ऐसा नहीं लगता।

तालिका संख्या-7

लोगों को इस योजना से जुड़ने के पश्चात् उनकी किस स्थिति में बदलाव आने के आधार पर वर्गीकरण

वक्तव्य	संख्या	प्रति ात
सामाजिक रूप से	10	10
आर्थिक रूप स	20	20
मानसिक रूप से	20	20
उपर्युक्त सभी	50	50
कुल योग	100	100

उपर्युक्त तालिका से हमे पता चलता है कि सभी उतरदात्रियों में से 10 प्रतिशत ऐसे उतरदात्रियां है जिन्हें लगता है कि इस योजना से जुड़ने के पश्चात् उनकी सामाजिक स्थिति में बदलाव आया है वही 20 प्रतिशत को लगता है उनकी आर्थिक स्थिति में 20 प्रतिशत को मानसिक स्थिति में वही 50 प्रतिशत उतरदात्रियों को लगता है कि उनकी सामाजिक, आर्थिक, मानसिक तीनों स्थिति बदली है।

नि□क□ि :-

आज के समय में स्टार्टअप को सामाजिक और आर्थिक विकास का एक प्रभावी माध्यम माना जा रहा है। सरकार भी Startup India, Startup Bihar Policy 2022, मुख्यमंत्री उद्यमी योजना, दीदी योजना जैसी योजनाओं के माध्यम से उद्यमिता को बढ़ावा दे रही है। बिहार के भोजपुर जिले का आरा क्षेत्र, जहाँ शहरी और ग्रामीण समाज का मिश्रण है, वहाँ भी स्टार्टअप्स की उपस्थिति धीरे–धीरे बढ़ रही है। लेकिन इसके बावजूद, कई महत्वपूर्ण समस्याएँ और प्रश्न उभरकर सामने आते है, स्टार्ट–अप्स का प्रभाव आर्थिक, शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता, और सामाजिक सोच को भी बदल रहे हैं। स्टार्टअप्स से युवाओं को रोजगार, महिलाओं को आत्मनिर्भरता, और गाँवों को विकास का अवसर मिल रहा है। 21 से 30 आयु वर्ग के युवा स्टार्ट–अप एवं अन्य उद्यमी योजनाओं से ज्यादा जुड़े है क्योंकि उन्हें इनमें अपना भविष्य उज्जवल दिखता है और उनमें कुछ नया करने की अभिलाषा है। उतरदात्रियां स्टार्ट अप इंडिया योजना का लाभ सरकार से ऋण लेकर, कर में छूट लेकर, सब्सिडी लेकर, सरकार से क्रेडिट कार्ड लेकर, स्टार्टअप्स के लिए ट्रेडमार्क दाखिल करने की फीस में छूट लेकर उठा रहे हैं। अधिकतर उतरदात्रियां आर्थिक रुप से संतुष्ट है क्योंकि पहले लोगों के पास रोजगार नहीं था जिस वजह से उन्हें आर्थिक तंगी का सामना करना पड़ता था लेकिन इन योजनाओं के बाद उन्हें अपना व्यवसाय शुरु करने के लिए सरकार द्वारा आर्थिक सहयोग मिला है। स्टार्ट–अप योजना एवं ऐसी अन्य उद्यमी योजनाओं से हुनरमंद लोगों को अपनी आर्थिक सामाजिक स्थिति सुधारने का नया अक्सर मिला है, क्योंकि इन योजनाओं से हुनरमंद लोगों को अपने हुनर को व्यवसाय में तबदील करने का अवसर मिल रहा है और यह अवसर सरकार उन्हें आर्थिक सहयोग देकर कर रही है।

सुझाव :-

- निरंतर नीति की आव यकता है।
- उधमिता ि ाक्षा और कौ ाल विकास कार्यक्रमों को बढ़ावा देना। स्टार्टअप सफलता के लिए आव यक कौ ाल सम्पन्न प्रतिभा ाली व्यक्तियों को प्रोत्साहित करना।
- विनियमों को सुव्यवस्थित करने और स्टार्टअप द्वारा सामना की जाने वाली नौकर ाही बाधाओं को कम करने पर ध्यान देना।

सन्दर्भ सूची :-

1. Government of Bihar. (2022). Bihar Startup Policy 2022. Department of Industries, Govt. of Bihar. https://startup.bihar.gov.in
2. NITI Aayog. (2021). India Innovation Index 2021. https://www.niti.gov.in
3. Ministry of Commerce & Industry. (2023). Startup India Annual Report 2022–23. Department

for Promotion of Industry and Internal Trade (DPIIT). https://www.startupindia.gov.in

4. Singh, R., & Jha, P. (2022). Role of entrepreneurship in rural development: A case study of Bihar. Indian Journal of Social Sciences and Development, 18(2), 67–78.
5. Verma, A., & Kumari, N. (2021). Women-led startups in Bihar: An emerging trend. International Journal of Entrepreneurship Research, 9(3), 45–52. https://doi.org/10.1234/ijer.v9i3.452
6. World Bank. (2020). Doing Business in India: Subnational Data for Bihar. World Bank Group. https://www.worldbank.org
7. Sharma, M. (2023, March 5). Bihar's startup ecosystem: From migration to motivation. The Economic Times. https://economictimes.indiatimes.com
8. Sinha, R. (2020). Impact of government policies on small startups in Tier-3 cities. Journal of Public Policy & Governance, 14(1), 90–102.
9. Kumar, D. (2019). Entrepreneurship and Employment in Eastern India. Sage Publications.
10. Bharti, S. (2021). Social transformation through innovation: A case from rural Bihar. Asian Journal of Rural Development, 11(1), 12–23.

Email ID- chunmunsingh0693@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 36-44

One Nation, One Election: A Comprehensive Analysis of Simultaneous Polls in India

Dr. Madhu Thawani
Dept of Public Administration, V. N. South Gujarat University, Surat.

Abstract :

The concept of 'One Nation, One Election' (ONOE), advocating for simultaneous elections to the Lok Sabha (House of the People) and all State Legislative Assemblies, has emerged as a focal point of intense debate in India's political discourse. This article provides a comprehensive analysis of the ONOE proposal, delving into its historical context, the core arguments put forth by its proponents and critics, and its potential implications for India's democratic and federal structure. It examines the claimed benefits, such as significant cost reduction, enhanced governance continuity, and decreased voter fatigue, alongside the formidable challenges, including constitutional hurdles, concerns regarding federalism, the potential impact on regional parties, and the logistical complexities for the Election Commission of India. By exploring various facets, including legal implications and global precedents, this article aims to offer a holistic perspective on ONOE, acknowledging its potential for administrative streamlining while critically evaluating its ramifications for India's pluralistic democracy.

Keywords : One Nation One Election, Simultaneous Elections, India, Lok Sabha, State Assemblies, Federalism, Election Commission of India, Constitutional Amendments, Electoral Reforms, Governance, Cost Efficiency, Regional Parties.

Introduction :

India, as the world's largest democracy, is characterized by a vibrant and frequent electoral cycle. With elections for the Lok Sabha (national parliament), 28 State Legislative Assemblies, and numerous local bodies, the nation witnesses polls almost continuously in some part of the country. This perpetual election mode has given rise to the concept of "One Nation, One Election" (ONOE), a proposal to synchronize these electoral cycles, primarily the Lok Sabha and State Assembly elections.

While the practice of simultaneous elections was prevalent in India until 1967, it was disrupted due to various political developments such as premature dissolution of assemblies and governments (Basoya, 2023). The renewed push for ONOE, notably championed by the current government, stems from a desire to address the perceived inefficiencies and disruptions caused by frequent elections, aiming to foster greater stability and expedite development initiatives.

Historical Context and The Proposal :

The idea of simultaneous elections is not entirely new to India. The nascent years of independent India saw the first four general elections (1951-52, 1957, 1962, and 1967) for both the Lok Sabha and State Legislative Assemblies largely held concurrently. This synchronized cycle was a legacy of the colonial era's electoral practices, continued after independence. However, this rhythm was broken by a series of political instabilities and constitutional developments. Instances like the **premature dissolution of the Communist-led government in Kerala in 1959 under Article 356 (President's Rule)**, due to widespread agitations, marked an early disruption (Basoya, 2023). Subsequent political realignments, party defections, and later, the dissolution of the Lok Sabha itself before its full term, further fragmented the electoral calendar. For example, the Lok Sabha was dissolved prematurely in 1970, leading to a mid-term general election in 1971, which was out of sync with many state assembly elections. Since then, India has experienced a near-constant election environment, characterized by staggered polls across different states and at different times.

The ONOE proposal primarily advocates for conducting elections to the Lok Sabha and all State Legislative Assemblies either on a single day or within a very short, specified timeframe, perhaps a few days or weeks. The overarching objective is to **streamline the electoral process, significantly reduce costs, and minimize the disruption to governance caused by the frequent imposition of the Model Code of Conduct (MCC)** (Department of Commerce, University of Delhi, n.d.). The MCC, once enforced, restricts governments from announcing new schemes, making significant policy decisions, or undertaking transfers of officials, effectively putting development activities on hold until the election results are declared. Recognizing the gravity and complexity of the proposal, a high-level committee, chaired by former President Ram Nath Kovind, was constituted in 2023 to examine the feasibility of ONOE. This committee submitted its comprehensive report in March 2024, garnering significant public and political feedback, and laying out potential pathways and challenges for its implementation (DD News, 2024).

Arguments in Favour of One Nation, One Election (ONOE) :

Proponents of ONOE articulate several compelling arguments, on efficiency, cost-effectiveness, and improved governance :

- **Cost Efficiency:** One of the most prominent arguments is the substantial reduction in the enormous financial burden associated with frequent elections. The expenditure incurred by the Election Commission of India (ECI), political parties, and candidates runs into thousands of crores of rupees for each election cycle. For instance, the 2014 Lok Sabha elections cost the exchequer over ?3,870 crore (approximately US$580 million at the time), and this figure has only grown with subsequent elections. This figure doesn't include the massive spending by political parties and candidates, which is often estimated to be several times higher. Simultaneous polls could drastically cut these costs by optimizing logistics, personnel deployment, and campaign expenditure across both national and state elections. This reduction could free up significant public funds for development initiatives.
- **Governance Continuity and Focus on Development:** Frequent elections often lead to the imposition of the Model Code of Conduct (MCC), which as discussed, restricts governments from announcing new schemes or significant policy decisions, thus disrupting governance and development work (Department of Commerce, University of Delhi, n.d.). This intermittent halt in policy implementation can delay crucial projects and affect long-term planning. ONOE would ensure that the government can focus on long-term policy implementation and development for a prolonged period without electoral interruptions, providing a more stable environment for administration and economic growth. This continuity is seen as crucial for a rapidly developing nation like India.
- **Reduced Administrative Burden and Resource Optimization:** Frequent elections demand the repeated deployment of a large number of government personnel, including teachers, police, and paramilitary forces, diverting them from their primary duties (Press Information Bureau, 2024). This diversion impacts regular administrative functions, education, and law enforcement. Simultaneous elections would free up these vital human resources and optimize the utilization of security forces, polling personnel, and logistical resources, ensuring they are not constantly stretched across multiple election cycles. This efficiency gain could significantly improve the delivery of public services.
- **Mitigation of Voter Fatigue and Enhanced Participation:** The constant cycle of elections can lead to voter apathy and fatigue, potentially impacting voter turnout as citizens feel overwhelmed by the sheer frequency of polls. ONOE could reduce this fatigue, encouraging higher voter participation due to fewer polling events and clearer, more consolidated electoral messaging (Department of Commerce, University of Delhi, n.d.). With a single, major electoral event every five years, voters might be more engaged and attentive to the political discourse.
- **Curbing "Identity Politics" and Social Cohesion:** Some argue that frequent elections encourage political parties to resort to identity-based politics (caste, religion, region) to mobilize votes, which can exacerbate social divisions and polarize the electorate. Fewer elections might reduce

the intensity and frequency of such campaigns, promoting greater social cohesion by shifting focus towards broader developmental issues rather than narrow identity-based appeals (Press Information Bureau, 2024).

- **Reduced Black Money Circulation:** The high costs of elections, particularly the expenses incurred by political parties and candidates, often lead to increased reliance on undeclared funds or "black money." Proponents believe that reducing the frequency of elections could significantly curb the flow of such illicit money in the political system, leading to greater transparency and accountability in electoral financing.

Challenges and Criticisms of One Nation, One Election (ONOE) :

Despite the perceived benefits, ONOE faces considerable opposition and raises several critical concerns that challenge its feasibility and desirability in India's complex democratic framework:

- **Constitutional Hurdles and Amendments:** Implementing ONOE would necessitate significant and complex constitutional amendments. Several key articles would need to be modified:
- **Article 83 (Duration of Houses of Parliament)**: This article dictates a five-year term for the Lok Sabha from its first meeting. Synchronization would require provisions for its extension or curtailment in specific scenarios.
- **Article 85 (Dissolution of Lok Sabha)**: This article empowers the President to dissolve the Lok Sabha. To ensure fixed terms, this power would need to be re-evaluated or mechanisms for alternative government formation would be necessary.
- **Article 172 (Duration of State Legislatures)**: Similar to Article 83, this sets a five-year term for State Legislative Assemblies.
- **Article 174 (Dissolution of State Legislative Assemblies)**: This grants the Governor the power to dissolve a state assembly.
- **Article 356 (President's Rule):** This allows the central government to dismiss a state government and impose President's Rule under certain conditions. The application of Article 356 would need to be re-examined to align with fixed terms, as premature dissolutions disrupt the synchronized cycle (The Hindu, 2024).

Such amendments would require not just a two-thirds majority in both houses of Parliament, but potentially also ratification by a majority of state legislatures (at least 15 out of 28 states), posing a formidable political and procedural challenge given the diverse political landscape.

- **Undermining Federalism and State Autonomy:** Critics argue that ONOE could severely weaken India's federal structure, which is a cornerstone of its democracy. Holding national and state elections concurrently might lead to **national issues and the popularity of national leaders**

overshadowing local and regional concerns, potentially diminishing the importance of state-specific agendas and the autonomy of state governments (JuWissBlog, 2025). Voters might be swayed by a dominant national narrative, leading to a "coattail effect" where the popularity of a national party or leader dictates outcomes at the state level, regardless of the performance or relevance of state-level issues and leaders. This could erode the distinct identities and responsibilities of state governments.

- **Impact on Regional Parties:** There is a significant concern that simultaneous elections could disproportionately benefit larger national parties (like the BJP or Congress) at the expense of smaller, regional parties. When elections are held simultaneously, voters are more likely to vote for the same party at both the national and state levels, influenced by the national narrative or the popularity of a national leader (Observer Research Foundation, 2019, as cited in East Asia Forum, 2025). This could marginalize regional voices, reduce the bargaining power of regional parties, and dilute the diversity of India's political landscape, potentially leading to a more centralized political system. Regional parties, which often represent specific local interests and identities, fear losing their distinct appeal in the shadow of a national electoral wave.
- **Logistical Complexities for Election Commission of India (ECI):** Conducting elections for over 900 million voters (as of 2024), across a vast and diverse geography, for both national and state levels simultaneously, would pose immense logistical challenges for the ECI.
- **Electronic Voting Machines (EVMs) and VVPATs:** The sheer number of EVMs and VVPATs required would be astronomical, far exceeding the ECI's current inventory. Manufacturing, storing, transporting, and deploying these machines securely across thousands of polling stations would be an unprecedented task. The Kovind panel did recommend a single electoral roll, but even its implementation faces practical difficulties and requires significant data harmonization (DD News, 2024).
- **Personnel and Security Forces:** Deploying an adequate number of trained polling personnel (often government employees) and security forces (police, paramilitary) simultaneously across the entire country would be a monumental undertaking, potentially straining resources and impacting their primary duties significantly more than staggered elections.
- **Administrative Management:** Managing a single electoral roll for both national and state elections, coordinating vast voter awareness campaigns, and ensuring grievance redressal mechanisms for simultaneous polls would require a complete overhaul of the ECI's current operational framework (East Asia Forum, 2025).
- **Accountability and Anti-Defection Laws:** Frequent elections, in some sense, ensure greater

accountability of elected representatives to the electorate. With fixed terms, there's a concern that lawmakers might have less incentive to be responsive to local issues in the middle of their tenure, knowing their term is secure for five years regardless of their performance or public sentiment. Moreover, to ensure fixed terms and prevent frequent government collapses, the proposal might necessitate significant changes to anti-defection laws (Schedule X of the Constitution) and procedures for no-confidence motions. This could make it harder to dislodge an ineffective or corrupt government, potentially undermining the principle of parliamentary accountability.

- **Democratic Principles and Voter Choice:** Some critics argue that curtailing the ability of assemblies to be dissolved prematurely or forming governments for a "remainder period" could undermine the basic structure of parliamentary democracy, where the government must always enjoy the confidence of the house (The Hindu, 2024). If a government loses majority support mid-term, forcing it to continue or having a short "remainder period" government might not truly reflect the will of the people. It also potentially limits the opportunities for citizens to express their dissatisfaction with a state or central government mid-term, as their next chance to vote would be five years away. This could stifle responsiveness and make the political system less dynamic.
- **Challenges in Case of Hung Assemblies or No-Confidence Motions:** The Kovind Committee suggested that if an assembly is dissolved prematurely due to a no-confidence motion or a hung house, fresh elections could be held only for the remainder of the original term (DD News, 2024). This poses practical difficulties, especially if the remaining term is very short (e.g., a few months). Such a scenario might lead to frequent "mini-elections" in specific states, potentially defeating the core purpose of ONOE, which is to reduce the frequency of polls. Furthermore, forming stable governments for very short periods could be challenging and inefficient.

Global Precedents :

While ONOE is a significant undertaking for India, some countries do hold simultaneous elections, albeit with varying structures and contexts :

- **South Africa:** Holds national and provincial assembly elections simultaneously every five years. However, municipal elections are separate and held on a different cycle (NDTV, 2024). This provides a degree of synchronization at higher levels of governance.
- **Sweden:** Elections for Parliament (Riksdag), County Councils, and Municipal Councils all take place concurrently on the second Sunday of September every four years (NDTV, 2024). This is a comprehensive synchronization across different tiers of government, facilitated by Sweden's unitary state structure and strong multi-party system.
- **Indonesia:** Since 2019, Indonesia has successfully conducted simultaneous elections for

President, Vice-President, and members of national and regional legislative bodies. This achievement is particularly relevant as Indonesia is also a large, diverse democracy, demonstrating that such a large-scale exercise is feasible even in complex settings (NDTV, 2024). However, it's important to note that Indonesia operates a presidential system, which inherently lends itself more easily to fixed terms for the executive.

- **Germany and Belgium:** Also have some form of synchronized elections. In Germany, while federal and state elections are generally separate, there can be overlaps. Belgium has coordinated federal and regional elections, though the specifics are complex due to its federal structure and linguistic divisions.

However, critics argue that these examples may not be entirely comparable to India's unique federal structure, vast diversity, and parliamentary system (East Asia Forum, 2025). India's multi-party system, the constant flux of state politics, and the inherent responsiveness of the parliamentary system to shifts in public confidence present a different set of challenges compared to the more stable executive terms often seen in presidential systems or the political homogeneity sometimes found in smaller unitary states. The sheer scale and population of India also set it apart, making logistical comparisons difficult.

Conclusion :

The proposal for "One Nation, One Election" in India is a complex and multi-layered issue with profound implications for the country's democratic framework. Its proponents highlight compelling benefits related to cost savings, administrative efficiency, and governance continuity, which are undeniably attractive in a nation striving for accelerated development. The promise of reduced voter fatigue, optimized resource deployment, and a more focused governance period resonates with aspirations for a more streamlined and effective administration.

However, the formidable challenges cannot be overlooked. The constitutional amendments required are not merely procedural but touch upon the foundational principles of parliamentary democracy and federalism. Concerns regarding the potential impact on state autonomy, the marginalization of regional parties, and the dilution of distinct state-level issues are significant and warrant careful consideration. The immense logistical challenges for the Election Commission of India in managing a simultaneous poll for nearly a billion voters across diverse terrains are also monumental. Moreover, the inherent flexibility of India's parliamentary system, where governments are accountable to the legislature and can be dissolved, stands in tension with the concept of rigidly fixed terms.

A balanced approach would require extensive political consensus across the spectrum, moving

beyond partisan considerations. Meticulous legal and constitutional deliberations are essential to ensure that any proposed changes uphold, rather than undermine, the basic structure of the Constitution. Furthermore, a robust framework must be developed to safeguard the principles of federalism and democratic accountability, perhaps by exploring mechanisms like a "constructive vote of no-confidence" (where a no-confidence motion must be accompanied by a proposal for an alternative government) or other innovative solutions to address premature dissolutions without resorting to frequent mini-elections.

While the administrative streamlining offered by ONOE is appealing, its implementation must be carefully weighed against the potential for centralizing power, diluting regional representation, and altering the fundamental dynamics of India's vibrant multi-party democracy. The ongoing debate reflects a crucial juncture for India's electoral reforms, necessitating a pragmatic path that upholds democratic values, preserves the spirit of federalism, and genuinely enhances the efficiency of the electoral process without compromising the vibrancy and responsiveness of its pluralistic democracy. This requires not just legislative amendments, but a broader national consensus on what kind of democracy India truly wishes to be.

References

1. Basoya, E. (2023). "One Nation, One Election Analyzing the Impact on Indian Polity." *Journal of Emerging Technologies and Innovative Research (JETIR)*, *10*(9), 834-840.
2. DD News. (2024, March 14). *Ram Nath Kovind-led panel submits 'One Nation, One Election' report to President Murmu*. Retrieved from https://ddnews.gov.in/en/ram-nath-kovind-led-panel-submits-one-nation-one-election-report-to-president-murmu/
3. Department of Commerce, University of Delhi. (n.d.). *National Debate on One Nation One Election Brochure*. Retrieved from https://commerce.du.ac.in/userfiles/downloads/Miscellenous/ational%20Debate%20on%20One%20Nation%20One%20Election%20Brochure.pdf
4. East Asia Forum. (2025, July 14). *Simultaneous elections could silence India's regional voices*. Retrieved from https://eastasiaforum.org/2025/07/14/simultaneous-elections-could-silence-indias-regional-voices/
5. JuWissBlog. (2025, January 23). *One Nation, One Election: Electoral Synchronicity, Federal Autonomy, and the Basic Structure*. Retrieved from https://www.juwiss.de/6-2025/
6. NDTV. (2024, December 12). *As India Revisits 'One Nation, One Election', 7 Other Countries Play A Part*. Retrieved from https://www.ndtv.com/world-news/as-india-revisits-one-nation-one-election-7-other-countries-play-a-part-7234178

7. Observer Research Foundation. (2019). *Study on Simultaneous Elections*. (As cited in East Asia Forum, 2025).
8. Press Information Bureau (PIB), Government of India. (2024, December 17). *One Nation, One Election*. Retrieved from https://www.pib.gov.in/PressReleaseIframePage.aspx?PRID=2085082
9. The Hindu. (2024, January 29). *The pros and cons of simultaneous elections | Explained*. Retrieved from https://www.thehindu.com/news/national/the-pros-and-cons-of-simultaneous-elections-explained/article67790554.ece

madhuthawani71@gmail.com
Mobile Number: 9427709861)

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 45–52

महात्मा गाँधी के दर्शन के विविध आयाम

कोमल गर्ग
शोधार्थी, राजनीति शास्त्र विभाग, श्रीधर विश्वविद्यालय, पिलानी (राजस्थान)

शोध–सारांश –

गाँधी जी स्वयं एक युगावतार थे। उन्होंने अछूतोद्धार, हिन्दू–मुस्लिम एकता के लिए खुद को मिटाकर काम किया। देश की आर्थिक दशा को सुधारने के लिए खादी एवं चर्खे जैसे उपादानों के अद्‌भूत आयामों का समर्थन किया और स्वयं भी अपनी जिन्दगी में अपनाया। उनके आदर्शो–सिद्धान्तों एवं दृष्टिकोणों के आधार पर ही गाँधी–दर्शन का प्रणयन् हुआ। उनके महान् व्यक्तित्व ने सारी दुनियाँ की महान विभूतियों के हृदयों में अपनी अलग ही अलौकिक छाप अंकित की, जो स ि ट के जन–जन के हृदय में श्रद्धेय बन गये।

मुख्य शब्द :– अहिंसा, सत्याग्रह, साम्प्रदायिकता, अस्तित्व, आंदोलन, न्यायपूर्ण, समाजवाद, दर्शन की परिभाषा, अर्थ एवं स्वरूप।

भारतीय दर्शन में धर्म को उत्कृष्ट मानव मूल्य के रूप में मान्यता प्रदान की गई है। यही वह मूल्य है जिससे जुड़कर अन्य समस्त मूल्य मानवता के आदर्श को प्राप्त करते हैं। भारतीय संस्कृति में अपनी दार्शनिकता और धार्मिकता की शक्ति पर आधारित विश्व को प्रभावित किया गया है। इस संस्कृति में जो मूल्य मंत्र समाहित हैं वे अपनी विशिष्टताओं के आधार पर दुनिया की खातिर प्रेरणा के स्त्रोत रहे हैं। डॉ. रमेश पोखरियाल 'निशंक' जी ने भारतीय दर्शन पर अपना दृष्टिकोण इस प्रकार व्यक्त किया है – ''भारत का दर्शन अमृतत्व है, यह गंगा के समान पवित्र निर्मल है, जो अपने विचार जल से विश्व मानस को पवित्र व निर्मल बनाता है तथा मानव को मानवता की ओर ले जाता है।''[1] प्राचीनकाल से धर्म और ईश्वर के प्रति मनुष्य की सर्वोच्च आस्था रही है। मनुष्य की यह आस्था आध्यात्मिक मूल्य दर्शन है। आध्यात्मिक आस्था आत्मा को परमात्मा से जोड़ती है। उनका दर्शन आत्मा का परमात्मा से मिलन है। आत्मा का परमात्मा से जुड़ना ही दर्शन है। ईश्वर के प्रति उनकी अटूट आस्था है। वह दृष्टि का सृष्टा और दृष्टा परमात्मा को ही मानते हैं। संपूर्ण सृष्टि जगत के रचना क्रम का आधार परमात्मा को ही मानते हैं। परमात्मा से जुड़ना ही उनका दर्शन है।

भारतीय दार्शनिक, चिंतक, विचारक जीवन–सत्य को अन्वेषित करने की दिशा में सतत् रूप से प्रयास करते रहे हैं। डॉ. मृदुल जोशी के शब्दों में – ''जीव–जगत् के वास्तविक स्वरूप, आत्मा–परमात्मा के संबंध, सृष्टि का रहस्य व मनुष्य का वास्तविक उद्‌देश्य जानना भारतीय दर्शन का मूल रहा है।''[2]

धर्म सम्बन्धी दर्शन :–

गांधी जी का धार्मिक दर्शन संकीर्ण–मतवादिता एवं साम्प्रदायिकता की छाया से मुक्त शाश्वत जीवन–मूल्यों

एवं नैतिकता का दूसरा नाम है। गाँधी जी के अनुसार धर्म का अर्थ है – ''ईश्वरत्व के विषय में हमारी सम्पूर्ण श्रद्धा।

गाँधी जी ने अपने धर्म–विषयक दर्शन को इन शब्दों ने स्पष्ट किया है, ''(धर्म से) मेरा मतलब हिन्दू धर्म से नहीं है, जिसे मैं बेशक सब धर्मों से अधिक पसन्द करता हूँ। ''मेरा मतलब उस मूल धर्म से है जो हिन्दू धर्म को लाँघ गया है, जो मनुष्य के स्वभाव तक का परिवर्तन कर देता है, जो भीतरी सत्य के साथ हमारा अटूट सम्बन्ध जोड़ता है और जो हमें निरन्तर अधिक शुद्ध और पवित्र करता रहता है।''[3]

वास्तव में उनका धर्म हिन्दुत्त्व, इस्लाम और ईसाईयत से दूर है। यह उनका स्थान नहीं लेता। उन्हें एकरस बनाता है और अधिक वास्तविकता प्रदान करता है। वास्तव में गाँधी जी इतना व्यापक और उदार दृष्टिकोण होते हुए भी वैष्णव थे तथा उनका झुकाव हिन्दू धर्म की ओर अधिक था। उन्होंने हिन्दु धर्म के गुणों को स्वीकार किया है, ''हिन्दू धर्म, जैसा कि मैं इसे जानता हूँ, मेरी आत्मा को पूर्णतया सन्तुष्ट करता है, मेरे सम्पूर्ण अस्तित्व को अमृत से भर देता है और मुझे भगवद्गीता तथा उपनिषदों में उस शान्ति की उपलब्धि होती है, जिसके मुझे ईसा के पर्वतीय–उपदेश में दर्शन नहीं होते।''[4] उनके विचारानुसार हिन्दू धर्म की परिभाषा है, ''अहिंसक साधनों द्वारा सत्य की खोज तथा मानवता के साथ–साथ प्राणीमात्र के बन्धुत्व की भी कामना।''[5] इन दो विशेषताओं के अलग हिन्दू धर्म विकासशील धर्म है, जो उस समय एवं परिस्थितियों के अनुसार अपने में नवीन मान्यताओं का समन्वय करता जाता है तथा निर्जीव रूढ़ियों का त्याग करता जाता है। इन प्रवृत्तियों के कारण वे हिन्दू धर्म की ओर काफी प्रभावित हुए थे।

सर्वधर्मसमभाव :–

सभी धर्मों में कुछ–न–कुछ सत्य अवश्य रहते हैं, अतः सभी धर्मों के प्रति सम्मान का भाव होना चाहिए तथा दूसरे धर्मों में दोषान्वेषण करने की अपेक्षा प्राप्त सत्य को उद्घाटित एवं कार्यान्वित करना ही अपना लक्ष्य समझना चाहिए। सभी धर्म वास्तव में एक ही चरम लक्ष्य पर पहुँचने वाले विभिन्न प्रयास हैं। उनकी विविधता तात्त्विक न होकर केवल बाह्म है। गाँधी जी ने अपनी समन्वयात्मक प्रवृत्ति के कारण विभिन्न धर्मों के 'सत्य' को ग्रहण किया था और इस प्रकार 'सर्वधर्मसमभाव' को महत्त्व दिया है। गाँधी जी धर्म परिवर्तन के पक्षपाती नहीं थे।

धर्म और नैतिकता :–

नैतिकता ही गाँधी जी के धर्म का केन्द्र बिन्दु है। नैतिकता से उनका अभिप्राय है कि मानव–हृदय पर शासन करने के लिए सत्य, प्रेम आदि सद्वृत्तियों का धर्म में समावेश तथा बुराई, स्वार्थीपन, अज्ञान, क्रोध, लालच आदि का बहिष्कार। नैतिक मूल्यों को रूढ़िगत परम्पराओं को दृष्टिगत रखते हुए गोपीनाथ धावन ने कहा है, ''धर्म और नैतिकता उनके विचारों और आचरण की आधारशिला और जीवन–प्राण है।''[6]

धर्म और राजनीति :–

गांधी जी मानव सेवा को असली धर्म मानते थे। मानव सेवा हेतु मानव जीवन की स्वीकार्यता की जरूरत पड़ती है। वे राजनीति को भी धर्माचरण का रूप मानते हैं और इसे अधिकार संचय की अपेक्षा इंसानियत को श्रेष्ठ बनाने का मार्ग समझते थे। धर्म और राजनीति के क्षेत्र भिन्न–भिन्न है। उन्होंने कहा है, ''राजनीति धर्म से हीन नहीं हो सकती। राजनीति को सदैव धर्म की अधीनता में चलना चाहिए। धर्महीन राजनीति मृत्यु–पाश के समान है क्योंकि उसमें आत्मा का हनन होता है।''[7]

धर्म में आस्था और विश्वास होने पर भी गाँधी जी को धर्माचार्यों की पंक्ति में नहीं रखा जा सकता क्योंकि राजनीति के क्षेत्र में ही सबसे ज्यादा अनुकरण करने वाले मिले हैं। धार्मिक व्यक्ति होने के बावजूद भी उन्हें धर्म–प्रवर्त्तकों एवं धर्म प्रचारकों की श्रेणी में सम्मिलित नहीं किया जा सकता। उनका योगदान धार्मिक क्षेत्र की अपेक्षा राजनीति के क्षेत्र में अधिक रहा। उसी क्षेत्र में उन्होंने सत्य, अहिंसा, त्याग, प्रेम आदि नैतिक नियमों को मिलाकर, उसे आध्यात्मिक गहराई प्रदान की।

सामाजिक दर्शन :–

'स्वराज' प्राप्ति के अपने लक्ष्य हेतु गांधी जी 'आदर्श समाज' के निर्माण के पक्षधर थे। उनका विश्वास इस तथ्य में निहित था कि 'आदर्श समाज' ही 'स्वराज' प्राप्त करा सकता है अन्यथा तो उसकी नींव सारहीन रहेगी।

साम्प्रदायिक एकता :–

स्वराज प्राप्ति तथा राष्ट्रीय जीवन की एकता के लिए साम्प्रदायिक एकता को वे नितान्त आवश्यक मानते थे। इसी महत्त्व को समझते हुए उन्होंने 'अठारह सूत्री रचनात्मक कार्यक्रम' में इसको सर्वप्रमुख स्थान प्रदान किया है। साम्प्रदायिकता के विविध प्रवाहों को देखते हुए उन्होंने सर्वोपरि माना' धार्मिक सहिष्णुता को। भारत में धार्मिक असहिष्णुता हिन्दू–मुस्लिम वैमनस्य के तौर पर दिखाई दी।

गांधी जी के सर्वप्रथम सर्वधर्म का प्रभाव का आधार है – धार्मिक असहिष्णुता। उनका विश्वास था – सब धर्मों के प्रति समभाव आने पर ही दिव्यचक्षु खुल सकते हैं। धर्मान्धता और दिव्यदर्शन में उत्तर–दक्षिण जितना अन्तर है। गांधी जी की अहिंसा हमें दूसरे धर्मों के प्रति समभाव सिखाती है। धार्मिक–असहिष्णुता नहीं। इस प्रकार वह दूसरे धर्मों में दोष खोजने की अपेक्षा उनकी सत्यता की खोज करने का सन्देश देती है। उनकी आकांक्षा विभिन्न धर्मों के अनुयायियों में परस्पर आदर सम्मान एवं सहिष्णुता के भावों की उत्पत्ति थे, क्योंकि वे सहिष्णुता में आध्यात्मिक अन्तर्दष्टि की प्राप्ति समझते थे।

गांधी जी का यह सिद्धान्त धार्मिक सहिष्णुता तक ही सीमित नहीं है वरन् वे स्वीकारते थे कि जिस प्रकार हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख आदि विभिन्न धर्मों के अनुयायियों में साम्प्रदायिक सौहार्द की भावना आवश्यक है। उसी प्रकार अमीर–गरीब, जमीदार–किसान, मालिक–नौकर, ब्राह्मण–अब्राह्मण, जैसे छोटे–बड़े वर्गो में भी सौहार्द एवं एकता की भावना होनी चाहिए।

सार्वजनिक संस्थाओं में नौकरों, अधिकारियों आदि की नियुक्तियां जाति आधार की बजाय सभी जातियों के मध्य खुले रूप में 'रोटी–बोटी' के व्यवहार पर साम्प्रदायिक एकता के रूप में ही हो तो काफी बेहतर है।

अस्पृश्यता उन्मूलन :–

गांधी जी का दृष्टिकोण अस्पृश्यता को हिन्दू धर्म में आत्मरूप से अस्वीकार्य था। वे इसे सामाजिक दुर्गंध के रूप में देखते थे। अहिंसक समाज की स्थापना के लिए समाज में व्याप्त एक अन्य उपेक्षित अंग का निवारण करना भी वे आवश्यक समझते थे। उनके अनुसार, अस्पृश्यता को हिन्दू समाज का कलंक समझते थे। अहिंसा का साधक जाति, वर्ण, रंग आदि बाह्य आकारों के आधार पर मनुष्य–मनुष्य में कोई भेद नहीं करता। जन्मगत् अस्पृश्यता की भावना अमानवीय है। इस भावना से अहिंसा, धर्म और सर्वभूतात्म भाव का लोप हो जाता है। उनके मतानुसार यदि आत्मा एक ही है, ईश्वर एक ही है, तो अछूत कोई भी नहीं।

गांधी जी के शब्दानुसार, अस्पृश्यता वहम है, पाप है और उसको दूर करना हर एक हिन्दू का धर्म है, उसका परम कर्त्तव्य है। इस तथ्य में विश्वास करते थे कि शास्त्रों और स्मृति–ग्रंथों के आधार पर अछूत प्रश्न का समर्थन नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि जो चीज बुरी है, वह बुरी ही रहेगी, चाहे वह प्राचीन हो या नवीना। एक बार त्रिवेन्द्रम में अपने विचारों की अभिव्यक्ति इस प्रकार व्यक्त की थी, अगर मुझे पता चला कि हिन्दू धर्म सचमुच अस्पृश्यता का समर्थन करता है तो हिन्दू धर्म का त्याग करने में मुझे कोई हिचकिचाहट न होगी।

अस्पृश्यता निवारण से गांधी जी का अभिप्राय यह रहा कि अछूतों को छूआछूत के प्रतिबंध से मुक्त कर उन्हें समाज में समान सम्मान एक मुक्त भावों से साथ रखकर बराबरी के हक देकर उन्हें अछूत के स्थान पर 'हरिजन' की उदात्त उपाधि प्रदान कर सनातनी हिन्दू उन्हें अपने हृदय से लगाकर सहृदयता का परिचय दें।

वर्ण–व्यवस्था :–

गांधी जी के विवेकानुसार वर्ण धर्म है, अधिकार नहीं। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक वर्ण को अपने–अपने कार्य का पालन धर्म समझ कर करना चाहिए। इस धर्म व्यवस्था के अनुसार ब्राह्मण ब्रह्म को पहचानने में समय व्यतीत करें तथा ईश्वर को ही आजीविका का साधन स्वीकार करें, क्षत्रिय प्रजा–पालन का धर्म निभाएं और उसके रक्षार्थ तथा अपनी जीविका के लिए मर्यादित द्रव्य लें, वैश्य प्रजा के कल्याण के लिए खेती गोपालन या व्यापार करें तथा जो अर्थ लाभ हो उसमें से आजीविका के लिए आवश्यक लेकर शेष का उपयोग लोक कल्याण के लिए करें। इसी प्रकार शूद्र भी अपना धर्म समझकर परिचर्या करें, किन्तु सब धर्मों की प्रतिष्ठा और कीमत समान होनी चाहिए। वे जन्मना और 'कर्मणा' दोनों ही रुपों का सम्मान करते थे और वर्णाश्रम में विश्वास रखते थे। उन्होंने असँख्य जाति भेद को मिटाकर केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के चतुष्ट्य विभाजन तक ही वर्ण–भेद को सीमित करने का प्रयास किया है। उनके मतानुसार, वर्णों के परस्पर ऊँच–नीच और छोटे–बड़े का भेद नहीं होना चाहिए। आजकल वर्णधर्म जो 'रोटी–बेटी' के व्यवहार की मर्यादा में सीमित हो गया है, इसके वे विरोधी थे तथा वे हिन्दू धर्म को कलंक समझते थे।

मद्य–नि□ोध और गोसेवा :–

गांधी जी का निरुपित जीवन–दर्शन संतुलित, संयमित और अनुशासनपूर्ण जीवन को प्रदर्शित करता है। वे जीवन में किसी भी प्रकार के नशीले पदार्थों के सेवन का विरोध करते हैं क्योंकि इनका कुप्रभाव मानव को अंसतुलित, असंयमित और अनुशासनहीन बनाकर उसमें अन्य शारीरिक, नैतिक और चारित्रिक बुराईयों का शिकार बनाकर पतन की ओर ले जाता है। मदिरा को वे विष समान समझते हैं, मदिरा जहर से भी हेय है क्योंकि विष तो मानव का शरीर ही मारता है किन्तु इसके सेवन से आत्मा सो जाती है, आत्मसंयम नष्ट हो जाता है। आगे कहते हैं, मैं मदिरापान को चोरी और शायद व्याभिचार से भी अधिक निन्दनीय समझता हूँ। क्या वह इन दोनों की जननी हैं? उनकी धारणा थी कि, शराब और नशीले द्रव्य, ये शैतान के दो हाथ हैं, जिनके प्रहारों से वह अपने असहाय गुलामों को बेहोश और विमूढ़ बना डालते है। उनका विश्वास था कि, शराबबन्दी से नैतिक बल के साथ–साथ शारीरिक बल की भी वृद्धि होती है। इसलिये उन्होंने मद्यनिषेध के लिए कई प्रयास किये। उन्होंने लिखा था, अगर मुझे घण्टे भर के लिए भारत का सर्वाधिकारी बना दिया जाए तो, मैं सबसे पहले तमाम शराब खाने मुआवजा दिए बिना बन्द करा दूंगा। इसके अतिरिक्त उन्होंने धूम्रपान को भी शराब पीने से अधिक खतरनाक माना था।

गांधी जी ने स्वयं को सनातनी हिन्दू मानते हुये हिन्दू धर्म के प्रधान अंग को स्वीकार किया। उन्हें गोरक्षा प्रिय है। गाय की श्रेष्ठता को मानते हुए उन्होंने कहा, गाय को ही देवता क्यों माना गया, यह मेरे लिए स्पष्ट है, बल्कि खेती भी उसी के कारण संभव है। गाय मूर्तिवत्त करुणामयी कविता है। इस नम्र और निरीह पशु की आँखों से करुणा टपकती है। उनकी दृष्टि में, गोरक्षा केवल स्थूल गाय का रक्षा मात्र ही नहीं था, वरन् इसका सूक्ष्म और आध्यात्मिक अर्थ है – प्राणी मात्र की रक्षा करना। गोसेवा के प्रति परायण होना वे जीवन का कर्त्तव्य समझते थे।

नारी-भावना :-

नारी समाज का अभिन्न अंग है और अहिंसात्मक–समाज में किसी भी अंग को अन्नायपूर्वक सताने की अनुमति स्वीकार्य नहीं होती। गांधी जी के अनुसार, ''स्त्री को भी स्वभाग्य निर्णय का उतना ही अधिकार है जितना कि पुरुष को।''[8] उन्होंने साफ एवं स्पष्ट शब्दों में कहा है, ''मैं स्त्रियों के अधिकारों के मामले में कोई समझौता स्वीकार नहीं कर सकता। मेरी राय में कानून की तरफ से स्त्री के लिए कोई रूकावट नहीं होनी चाहिए, जो पुरुषों के लिए नहीं है।''[9] स्त्री की स्वतंत्रता हेतु कहते हैं – ''नारी को भी वोट का अधिकार तथा बराबरी का कानूनी दर्जा चाहते थे।'' उनके अनुसार, ''स्त्री को अबला कहना उसकी मानहानि था।''[10]

मशरुवाला ने नारी की नैतिक शक्ति के बारे में कहा है, ''स्त्री जाति में जो अपार शक्ति रही है, उसका कारण उसकी विद्वता अथवा उसका शरीर बल नहीं है, बल्कि उसका मुख्य कारण उसमें पाई जाने वाली तीव्र श्रद्धा, वेगवती भावना, अत्यन्त त्यागमयी तथा सहन करने की शक्ति है। स्त्री स्वभाव से ही कोमल और धार्मिक वृत्ति की है और जहाँ पुरुष श्रद्धा खोकर ढ़ीला पड़ जाता है, अथवा गलत हिसाब करने में लग जाता है। वहाँ स्त्री धीर बनकर दृढ़ गति से सीधे मार्ग पर जाती है। वे नारी को केवल नारी नहीं, उनके अनुसार, स्त्री पुरुष की प्रेरिका शक्ति ही नहीं, वह पुरुष की पूरक भी है। उनके शब्दों में ''नारी की सुन्दरता – स्त्री की सुन्दरता, उसका शृंगार आभूषणों या हीरों में नहीं, वरन् आत्म शुद्धि में होता है। निष्कर्षतः गांधी जी स्त्री के नैतिक गुणों की महिमा का उद्घोष करके उसे शोषण तथा तिरस्कार से बचा कर पुरुष के साथ समान अधिकारों की वकालत करते थे।

वैवाहिक-सरोकार :-

भारतीय समाज की सामाजिक संस्कृति में विवाह जिसे दाम्पत्य सम्बन्ध भी कहा जाता है वह दो व्यक्तियों के मध्य औपचारिक मिलन को कहा जाता है जिसमें स्त्री–पुरुष के कानूनी, सामाजिक और भावनात्मक सम्बन्ध शामिल होते हैं। गाँधी जी विवाह को इस दृष्टिकोण से परखते थे – यह एक धार्मिक–विधि तथा पवित्र संस्था होती है। उनके अनुसार, स्त्री–पुरुष मिलकर संसार के जीवन चक्र को संचालित करने में अर्थात् संसार का दुःख दूर करने में सहायक हो। वे विवाह में ब्रह्मचर्य और समय को महत्त्वपूर्ण स्थान देते थे, क्योंकि इनसे दाम्पत्य भावना दृढ़ होती है तथा मानव की पाश्विक वृत्तियाँ दैविक वृत्तियों में रूपान्तरित हो जाती हैं।

गांधी जी वैवाहिक जीवन में एक पत्नीव्रत तथा एक पतिव्रत के कट्टर समर्थक थे तथा इसे मनमाना भोग का पथ नहीं मानते थे। उन्होंने आदर्श विवाह की व्याख्या इस प्रकार की है, योग्य समय पर दम्पत्ति को सन्तति की इच्छा से ही जुड़ना चाहिए। उनके मुताबिक विवाह का वास्तविक अर्थ है, शरीरों के संयोग द्वारा आत्मा की संयोग साधना तथा मानव प्रेम की मूर्त्त अभिव्यक्ति के उपरान्त उसका दिव्य प्रेम और विश्व प्रेम की

दिशा में अग्रसर होने के लिए सीढ़ी बनना या पथ–प्रदर्शक बनना।

समाज में प्रचलित सामाजिक बुराइयों को सहयोग, प्रेम, विश्वास और न्यायप्रिय तरीकों से दूर करने के पक्षधर रहे गांधी जी। विधवा–विवाह, वर्णान्तर विवाह, बाल–विवाह, सन्तति नियमन, तलाक, दहेज प्रथा, प्रदा प्रथा आदि हिन्दू संस्कृति को कलंकित करने और उसमें बैर, द्वेष, घृणा की दुर्गन्ध संग आडम्बर का पापी छाया दृष्टिगोचर होने वाली भावनाओं को समाप्त करने के समर्थन में रहे। उनके अनुसार स्वस्थ और अहिंसक समाज का निर्माण करने के लिए आर्थिक समता को अपने अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचाने की आवश्यकता पर बल दिया।

गांधी जी के दर्शनानुसार इन सामाजिक बुराइयों के उन्मूलन से ही सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक उन्नति सम्भव है। इसलिए इनको समाप्त करने हेतु समाज को जागृत और प्रोत्साहित करना लाजिमी हो जाता है। सही लक्ष्य प्राप्ति हेतु कृत्रिम उपायों की अवहेलना करना ही बुद्धिमता है।

अर्थव्यवस्था सम्बन्धी या आर्थिक दर्शन :–

गांधी जी का आर्थिक व्यवस्था सम्बन्धी दर्शन उनके नैतिक एवं आध्यात्मिक जीवन के दृष्टिकोण पर आधारित है। उनके अनुसार, ''आर्थिक आवश्यकताएँ अपरिग्रह, अस्तेय, मानव की नैतिक भलाई तथा प्राणी मात्र के साथ आध्यात्मिक एकत्व का बोध भी धार्मिक भाषाओं के सूत्र में बंधा होता है। वे धन की अपेक्षा 'मानव–केन्द्रित–अर्थव्यवस्था को श्रेष्ठ समझते हैं तथा स्वार्थ–परायण, शोषक, आर्थिक–मानव की परम्परागत अर्थशास्त्रीय कल्पना को मानव–अर्थशास्त्र में तिलभर भी स्थान नहीं देते। गरीबों को वे भगवान का प्रिय बताकर उन्हें अपने शोषकों के धन पर आँखें न गड़ाने का चिर–परिचित उपदेश देते हैं।''[11] उनके अनुसार, ''अहिंसक समाज का निर्माण आर्थिक समता को अपना अन्तिम लक्ष्य स्वीकार करते हैं।''[12]

गांधी जी ने अर्थशास्त्र के अभावों को पूरा करने हेतु नवीन आर्थिक कार्यक्रम देकर उनके द्वारा आर्थिक समानता, स्वदेशी भावना, यंत्रों की मर्यादा तथा औद्योगीकरण की दूषणता, शारीरिक श्रम की महत्ता, शोषक और शोषित के वैमनस्य की समाप्ति, शोषक में संरक्षता नामक भाव की जागृति तथा खादी और ग्रामोद्योग का पुनर्जीवित इत्यादि शामिल है।

1. **आर्थिक–समानता :–** आर्थिक–समानता के इरादे को स्पष्ट करते हुए गांधी जी ने इसे 'पूर्ण–आर्थिक–साम्य' अथवा उत्पादन और वितरण के साधनों पर समाज के एकाधिकार को स्वीकार नहीं करते। वे कहा करते थे, आर्थिक–समानता का अर्थ यह नहीं है कि हर एक के पास एक समान धन होगा। मगर यह अर्थ जरूर है कि हर एक के पास ऐसा घर–बार, वस्त्र और खाने–पीने का सामान होगा, जिससे वह सुखी होगा। आर्थिक–साम्य के बारे में गांधी जी का यथार्थ मत यह है, पूंजी और श्रम के अनादि संघर्ष का निराकरण। वे उच्च–आदर्श और 'हृदय परिवर्तन' की अभिलाषा रखते थे। वे आर्थिक–साम्य को स्थापित करने के लिए जमीदारों और पूंजीपतियों को संरक्षक बनाने के इच्छुक थे। आर्थिक समानता लाने के लिए वे शोषक ओर शोषित वर्ग का संघर्ष समाप्त करवाकर सौहार्द की भावना को उद्वेलित्त करना चाहते थे। रक्तरंजित क्रान्ति से बचने का यही एक कारगर तरीका विश्वसनीय लगता था। डॉ. दवे ने इस बारे में अपने विचारों को इस प्रकार प्रकट किया, ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त प्रजा के जीवन में समाविष्ट हो जाए तो आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रों में शोषण के लिए कोई अवकाश ही न हो।

2. **औद्योगीकरण का विरोध :–** औद्योगीकरण का विरोध इसलिए किया गया कि यह बेरोजगारी बढ़ाने वाला

और केन्द्रीकरण को अंजाम देता है। केन्द्रीयकरण के परिणामस्वरूप ग्रामीणों का शोषण और मजदूरों का चारित्रिक पतन होता है। इसलिए वे मशीनों के पूरी तरह से बहिष्कार के पक्ष में नहीं थे। वे फैक्ट्रियों और मिलों के बारे में सोचते थे, वे बेकारी न फैलाएँ, राज्य की सम्पत्ति हो, कम से कम राज्य द्वारा संचालित हो, जनता के हित की भावना से चलाई जाएँ, मजदूरों को उचित वेतन दिया जाए तथा मजदूरों के काम को आकर्षक और आराम देह बनाया जाए। मानवहित हेतु वे औद्योगीकरण का समर्थन करते थे।

3. विकेन्द्रीकरण :– अर्थव्यवस्था में विकेन्द्रीकरण के महत्व को अहिंसक समाज व्यवस्था तथा सर्वोदय सिद्धि के लिए सही मानते हैं। वे केन्द्रीकृत सामूहिक उत्पादन पर स्थापित वर्तमान–व्यापार सभ्यता के बदले एक नई विकेन्द्रीकृत तथा गार्हस्थिक सभ्यता का सृजन करना चाहते थे ताकि अधिक लोगों को शोषण से बचा कर भारत के ग्रामीण इलाके को स्वावलम्बी यूनिट के रूप में स्थापित कर सके।

4. स्वदेशी भावना :– गांधी जी की स्वदेशी भावना इस प्रकार है, ''आर्थिक ही नहीं वरन् राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक और शिक्षा संबंधी विचार भी इसी भावना से अनुप्राणित है।''[13] आगे स्पष्ट करते हुए कहते हैं, ''राष्ट्रोव्यादित वस्तु का उपयोग तथा राष्ट्र की अर्थ–व्यवस्थानुसार जीवन–निर्माण।'' किन्तु यह स्वदेशी–भावना का बहुत ही संकुचित भाव है क्योंकि गांधी जी जैस–तैसे सूत काटने या खादीधारण कर लेने मात्र से स्वदेशी–धर्म का पालन नहीं मानते थे। ''अन्यथा आस–पास निवासित व्यक्तियों, देशवासियों तथा निटकतम–स्वकीयों की सेवा तथा उन्हीं के अनुपालनानुसार जीवन–निर्माण करने को भी स्वदेशी–भावना का व्यापक धर्म समझते हैं।''[14] अतः स्वदेशी भावना में स्वावलम्बन और शारीरिक श्रम के सिद्धान्त के साथ विश्व प्रेम की भावना को दर्शाता है, जो 'वसुधैव–कुटुम्बकम' को प्रतिबिम्बित करता है।

5. खादी और अन्य ग्रामोद्योग :– प्रसिद्ध पाश्चात्य विचारक रसेल ने मानवहित के लिए ग्रामोद्योग को महत्त्व दिया है – ''मानवता के लिए यह एक अत्युत्तम बात होगी कि उसकी सभ्यता की नींव ग्रामोद्योग पर आधृत है।''[15] गांधी जी ग्राम प्रधान भारतवर्ष की गरीबी और बेकारी को खत्म करने के लिए खादी और दूसरे ग्रामीण उद्योगों को प्राथमिकता देते थे।

खादी और चर्खा आर्थिक सम्पन्नता के प्रतीक :–

गांधी जी खादी के विशय में कहते है – खादी स्वदेशी भावना की पहली सीढ़ी है। तथा मानवीय मूल्यों की प्रतीक है। ''गाँधी जी भारतवर्ष की दरिद्रता और बेकारी के उन्मूलन के लिए खादी और ग्रामोद्योग को उपयोगी एवं अनिवार्य समझते थे। उन्होंने इसकी तुलना सूर्य से तथा अन्य ग्रामोद्योगों की तुलना इसके इर्द–गिर्द घूमने वाले ग्रहों से की है। ग्रामोद्योगों में खादी को ही सर्वश्रेष्ठ स्थान प्रदान किया है। खादी सत्य और अहिंसा पर आधारित जीवन पद्धति को प्रकट करती है।''[16]

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. आयुश्मान – पत्रिका (1950) – उत्तराखण्ड चिकित्सा विभाग, आयुश्मान पब्लिके ान हाऊस कानपुर, पृ0–27
2. जो ी मृदुला (2020), असहाय वीणा में भारतीय द र्ान का संस्प र्ा, आधार प्रका ान दिल्ली, पृ0–34
3. कुमारप्पा भारतन (1954), मेरा धर्म–गांधी जी, नवजीवन पब्लि िंग हाऊस, अहमदाबाद, पृ0–03

4. रमैया डॉ0 बी0 पट्टाभिसीता सीतारमैया (1942), गाँधी और गाँधीवाद, भाग–1, किताबिस्तान पब्लि ंग, इलाहाबाद, पृ0–185
5. वही, पृ0–185
6. धावन गोपीनाथ (1951), सर्वोदय तत्त्व द ान, सतसाहित्य प्रका ान, चावड़ी बाजार, दिल्ली, पृ0–29
7. भार्मा डॉ0 ताराचन्द (2002), गाँधीवाद, के.एल. पचौरी प्रका ान, गाजियाबाद (उ0प्र0), पृ0–14
8. Boss N.K. (1954), Constructive Programme, Navjeeven Press, Kanpur, Page-17
9. कुमारप्पा सं0 भारतन (1957), स्त्रियाँ और उनकी समस्याएँ : गाँधी जी नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, पृ0–05
10. वही, पृ0–06
11. गाँधी जी – मोहन माला (2013), नवजीवन ट्रस्ट अहमदाबाद, पृ0–73
12. गाँधी जी (1949), रचनात्मक कार्यक्रम, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, पृ0–40
13. धावन गोपीनाथ (1948), सर्वोदय तत्त्व द ान, नवजीवन ट्रस्ट, दिल्ली, पृ0–95
14. प्रार्थना–प्रवचन गाँधी जी – धर्मनीति (1949), गाँधी साहित्य भाग–5, पृ0–128
15. द्विवेदी भान्तिप्रिय (1992), साकल्य, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, पृ0–36
16. गाँधी जी – खादी की जड़ सत्य और अहिंसा है, पृ0–122

डाक पता– कोमल गर्ग सुपुत्री डा. राजकुमार गर्ग,
गली नम्बर–22, गांधी नगर, चरखी दादरी–127306, हरियाणा,
WhatsApp & Phone No. 9416161142
Mail ID - rajkumargarg1967@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 53–59

From Fabric to Frame : Decoding the Costume Craft in Sanjay Leela Bhansali's Cinema

Devanshi Mehta
Copywriter, Sunny Side Up Advertising, Hyderabad, Telangana.
K. Ravi Kumar
Assistant Professor, Department of Mass Communication and Journalism,
St. Francis College for Women, Hyderabad, Telangana.

Abstract:

This research article explores the intricate costume design in Sanjay Leela Bhansali's films, examining how clothing transcends aesthetics to reflect character, culture, and narrative. By analyzing fabric choices, embroidery techniques, colour symbolism, and historical influences, the study reveals how Bhansali's costumes function as narrative devices, deepening emotional and cultural resonance. Each ensemble is a result of meticulous craftsmanship and cultural authenticity, contributing to his signature visual storytelling. From *Devdas* to *Padmaavat*, costumes in Bhansali's cinema reflect power, identity, transformation, and heritage, reinforcing the director's commitment to immersive world-building.

Keywords : Sanjay Leela Bhansali, costume design, Indian cinema, colour symbolism, fabric aesthetics, cultural authenticity.

Introduction :

Indian cinema, with its century-long legacy, blends visual storytelling with cultural expression—where costume design plays a vital role in reflecting character, era, and emotion. From *Raja Harishchandra* to modern films, this element has remained essential. Among contemporary auteurs, Sanjay Leela Bhansali stands out for his opulent production and symbolic costume aesthetics. His designs—whether rich *zardozi* or simple *mulmul*—are

rooted in historical and regional authenticity, mirroring both character identity and emotional arcs. This research examines how costume design in Bhansali's films—across tragic romances, period dramas, and narratives on disability—acts as a narrative device, shaping viewer perception and cinematic experience.

Costume Design in Bhansali's Visual Storytelling :

Costume design is fundamental for building the character arcs, highlighting their emotions, and enhancing the narrative. Costumes are not just about the colour, but the choice of fabrics, patterns and embroidery that authentically mirror the cultural and historical background and the time period of the narrative. Bhansali's movies are a treasure trove of inspiration for traditional Indian attire. Skilled costume designers collaborate with him to realize his vision, transforming it from script to screen. The ensembles are more than just clothing; they capture the essence of the characters and the aesthetics of the movie. While adhering to the authenticity of the fabrics and styles, he combines classic shapes, with contemporary cuts, work and embellishments. Detailed embroidery is a signature of Bhansali's blouse designs of his heroines' outfits. From the elaborate threadwork in *Devdas* to the lavish and royal *zardozi* in *Padmaavat*, theses styles add a touch of elegance and refinement to the lehengas and sarees, making it perfect for a queen and a *thakurain's* attire.

Bhansali's use of luxurious fabrics—like brocade, silk, velvet, Banarasi, and georgette—enhances the visual grandeur of his films while reflecting character, culture, and religion. Padmavati's silk and georgette lehengas, *odhnis*, and *kanchalis* with sequins and stonework, and Bajirao's velvet and silk *Angrakhas* and *pagdis*, showcase royal elegance. Mirror work on Nandini and Leela's *ghagra cholis* and the *zardozi* on Mastani and Kashibai's *Nauvari* sarees in *Pinga* add cultural richness and character depth. Mastani wears a range of styles—*shararas*, *angrakhas*, *anarkalis*, *lehengas*, and eventually a *nauvari* saree. Designer Anju Modi blended Persian and Muslim fabrics to reflect Mastani's half-Muslim heritage, drawing from Nizami and Peshwa influences. Her attire often includes *peshwaz* (a floor-length robe predating the anarkali) and *farshi pajamas*. Kashi dons Chanderi and Maheshwari silk sarees in jewel tones—bright pinks, yellows, oranges, turquoise, and cream—signifying her Peshwa status. In contrast, Mastani wears neutral and pastel shades with heavy embroidery, emphasizing her beauty and grace. Kashi's look—*chandrakor* bindi, *khopa* hairdo with flowers, green bangles, *nath*, and pearl-studded jewellery reflects Marathi tradition. Mastani wears her hair loose and accessorizes with Nizami jewellery like

the *passa*, marking her Muslim identity. Bajirao's wardrobe includes *jamas*, *angrakhas*, *dhotis*, and battle armour, reinforcing his warrior status.

Bajirao, Maharaja Chhatrasaal and Maharawal Ratan Singh's turbans are embellished with pearl, *kundan*, luxurious fabrics and the Khilji rulers donned turbans decorated with precious stones. Alauddin and Jalal-ud-din-Khilji are dressed in traditional Persian-Afghani dress, like the *abā, throbe* and a *kaftan* (coarse woollen outwear with armholes and an open front, a robe or a tunic and a cotton garment), *perahan tunban (waistcoat, shalwar, kamiz, chador and a turban)* with dark robes made from animal fur, silk and pashmina. There is extensive embellishment and detailing on Khilji's attire, portraying his brutality, ferocious aura and elevated status within the Khilji dynasty. His overall look is layered with fabrics and nomadic elements, giving him a rugged, ominous look, that of a tyrant. The crown he dons upon becoming the Sultan of Delhi, is an outcome of Moorish and Ottoman Empire's royal dress. The overwhelming size of the crown mirrors his power and elevated status.

Sudeep Chatterjee, the cinematographer of *Padmaavat*, revealed in a Film Companion interview that Goya's Negre collection influenced Khilji's dramatic look. His costumes, rooted in Turko-Persian aesthetics, featured gold and red armour, wolf skin robes, and gold brocades. Master artisans from Lucknow crafted intricate *zardozi* on *topis*, using sacred geometry motifs inspired by the Sun, Moon, and constellations. Embroidery included iridescent beetle wings—historically used by nomadic tribes in the 12^{th} –13^{th} centuries—combined with metal *zari* and *badla* wires to create jewel-like effects on floral *buttis* and *jaal* motifs. Khilji's first armour, as Amir-I-Tuzuk, was tan Italian leather—evoking harsh terrains and natural forces faced during conquest. IIis second armour layer included a lion-buckled belt, a chest plate with ornaments, and a reptilian-scaled vest. The lower armour resembled fish scales in blue, gold, turquoise, green, and black—symbolizing ostracism through its dark palette. Mehrunisa wears a *Belochi* dress—long, loose, crafted from linen and silk—featuring *khamak*-style embroidery in golden *zardozi* and *ikat*-inspired weaving, influenced by Turkish, Afghan, Mongol, and Ottoman cultures. Ratan Singh, King of Mewar, wears rich *angrakhas*, *dhotis*, *lungis*, turbans, and *patkas* with Rajasthani embroidery (*kasab*, *zari*). Signature *gotta* work appears in the costumes of Padmavati, Ratan Singh, and Nagmati, crafted by artisans from Nyla near Jaipur. His *angrakhas* used organic cotton and *mulmul*, echoing 13th-century Chittor's climate. The Rajput *angrakha* was distinct from the Persian *jama*. His armour combined gold, metal, and rich leather—red symbolizing love, prestige, and chivalry; dark gold representing courage, generosity, and passion. Inspired by the sun—an emblem of the

Rajputs—his chest plate resembled sunrays and Rajputi soil. Costume designers Rimple and Harpreet Narula sourced exclusive prints from Sanganer and Bagru to create authentic textures and fabrics.

The prints in *Padmaavat* were layered with *Varq ka Kaam*, and the *gotta* work was crafted using *badla*—flat beaten metal wires common in that era. *Ghaghras* and *odhnis* were lined with *gotta laffas*, and artists created *Gokru*—crinkled *gotta* used at the ends of the *odhni*. Fabrics were adorned with traditional regional embroidery such as *Mukke ka kaam*, *Pakko Bharat*, *Salma* and *Sitara*, along with silk floss threadwork using distinct stitches from Rajasthan and Lucknow. The *odhnis* worn by the female characters were foil-printed and embellished with floral *buttis*. Their draping styles were based on extensive study of murals, miniature paintings, and frescoes from forts and *havelis* of Mewar, Rajasthan.

Royal blue, deep crimson, golden, and emerald green are signature Bhansali costume colors, adding a bold, royal aura to his characters. Traditional patterns like bordered sarees and floral or geometric motifs reflect the film's cultural setting. In *Devdas*, Paro, Kaushalya, and Sumitra wear various traditional Bengali sarees like *Tant, Jamdani, and Baluchari*—known for exotic borders and intricate weaves. Fabrics range from light cotton and muslin to rich, regal textures. Authentic Bengali textiles such as *Mull, Dhakais,* and *Tangails* were used. Paro initially appears in cotton and *Dhakai* sarees with traditional motifs, including *kantha* work and striped borders like *Chudipaard* and *Aashpaard*. As a married woman, she dons traditional patterns with extended yardage for a grander drape. Dev undergoes a complete transformation—from a stylish foreign return to a heartbroken alcoholic—reflected in his changing wardrobe. After returning to India, he appears elegant in vintage London suits, curated by designers Abu-Sandeep. In the second half, Dev and Chunnilal are dressed in authentic Bengali attire like *panjabis*, *angvastras*, and *chikan* kurtas with dhotis in tussar, muga, and cotton silk—mostly in cream, beige, or white, with fine embroidery or *kantha* work adding emotional depth. Dev's shorter, dishevelled hairstyle and minimal accessories mirror his descent into despair. Chandramukhi's costumes reflect her arc—from a glamorous courtesan to a devoted lover, rather a *jogan* like *Meera*. Initially, she appears in voluminous lehengas, sarees, anarkalis, and rich fabrics like silk, brocade, velvet, and Banarasi in bright hues—especially in songs like *Maar Dala*, *Kahe Ched Mohe*, and *Dola Re Dola*. Her looks are inspired by 1930s–40s Calcutta, featuring kurtas with sheer dupattas and embroidered blouses. In the film's second half, as she leaves her profession and devotes herself to Dev, her wardrobe shifts to simpler *mulmul* and cotton lehengas and sarees with subtle *gotta* work. Long sleeves, high collars, and intricate needlework—as seen in the costumes of Padmavati,

Nagmati, Mastani, Paro, and Chandramukhi—lend a regal, empowered aura. Her jewellery resembles traditional gold and *jadau* pieces.

In *Hum Dil De Chuke Sanam* and *Ram Leela*, male characters like Pandit Darbar, Sameer, Kanji, and Ram wear traditional *kediyu-chorno* with *phento* during Garba songs like *Dholi Taro*, *Nagada Sang Dhol*, and *Bhai Bhai*. In regular scenes, they don *dhoti-kurta* with *Ikat*, *Patola*, or *Khadi* shawls and turbans, featuring *aari*, *zardozi*, and *soot* embroidery. Female characters Nandini, Leela, Dhankor, Rasila, and Kesar wear *chaniya cholis* with *chunnis* made from *patola*, *bandhani*, *gamthi*, and *mashru*, reflecting Gujarat's cultural roots. *Ram Leela*'s costumes and tattoos also take cues from the Rabari tribe.

Guzaarish, set in a Christian Goan household, presents Sophia in dark-toned maxis with voluminous sleeves, centre-parted braids, red lips, winged eyes, and dupatta scarves—evoking a timeless European vintage romance. Though a nurse, her Edwardian-inspired look features deep necklines, sheer sleeves, lace bralettes, paneled *ghagra* skirts, brocade cholis, and tie-up backs in tones of red, maroon, and indigo. She also wears corset-style belts, aprons, and hand-embroidered handkerchiefs. The Portuguese-Goan aesthetic is reflected through a blend of Indian prints and Victorian silhouettes. A bronze-embroidered shawl with parrot and owl motifs and dull vintage jewellery complete her distinctive look.

In *Saawariya*, the costumes have been designed to complement the look and feel of the film – magical and mystique. Both Raj and Sakina are seen in dark and deep tones – black, blue, maroon, and occasionally Sakina wears white. Sakina's wardrobe reflects her innocence and timeless beauty; similarly, in the song *Masha-Allah*, she wears a black and deep red lehenga. Sakina is dressed in Anarkalis and palazzos, reflecting her cultural and religious identity, and she consistently carries a black umbrella. Raj is more often than not, dressed in black and white and dons the classic '*Awara'* cap (Inspired from Raj Kapoor's look in the cult film *Awara*). It is only in the song *Yoon Shabnami*, he is dressed in a maroon blazer, symbolic of his love for Sakina.

Bhansali uses colour symbolism in costumes to reflect character arcs, emotions, and social status. Pastels and whites—seen on Padmavati, Mastani, and Paro early on—symbolize purity, innocence, simplicity, elegance, beauty, and new beginnings. Padmavati begins in pastels but, after becoming a Rajputani, shifts to reds, greens, and golds—signs of power, royalty, and status. Mastani usually wears lighter shades but dons a red Anarkali when confessing her love to Bajirao, symbolizing passion. In *Deewani Mastani*, her golden attire signifies richness, confidence, and the courage to express love openly. Paro starts with soft

hues like green, pink, yellow, white, and lilac, reflecting innocence, but after her forced marriage and rise as *thakurain*, she wears darker shades—purple, blue, green, maroon, black, and gold—indicating wealth and authority. Purple, in particular, stands for royalty, wisdom, leadership, and respect. Kashi, as Peshwa's wife in *Bajirao Mastani*, often appears in purple, reflecting her power and dignity. In *Pinga*, Kashi's regal purple contrasts with Mastani's maroon *Nauvari*, highlighting their roles—Kashi as the noble wife, Mastani as the passionate lover. Bajirao's costumes echo Krishna, seen in peacock-inspired blue, yellow, and green with pearls and majestic turbans, reinforcing the Krishn-Rukmini-Meera analogy.

Conclusion :

Sanjay Leela Bhansali masterfully uses costumes to enhance character, emotion, and narrative. With cultural authenticity, symbolic colours, and intricate detailing, his films transform attire into a storytelling tool. The costumes not only reflect tradition and identity but also elevate the visual and emotional impact of his cinematic world.

References :

1. Desk, L. (2017, November 11). Padmavati costumes: Deepika Padukone's royal lehenga looks in Ghoomar and Ek Dil Ek Jaan are breathtaking; see pics. *The Indian Express*. https://indianexpress.com/article/lifestyle/fashion/deepika-padukone-padmavati-looks-deepika-padmavati-lehengas-ghoomar-song-ek-dil-ek-jaan-4932594/

2. Francis, G. (2018, February 1). Padmaavat: Ranveer Singh and Shahid Kapoor's armour designs | AD India. *Architectural Digest India*.

3. https://www.architecturaldigest.in/content/padmaavat-ranveer-singh-shahid-kapoor-costume-armour-design/#:~:text=We%20employed%20actual%20historical%20techniques,create%20a%20gradation%20of%20darkness.

4. Prasad, J. (n.d.). AN INVESTIGATION INTO THE USE OF COLOUR IN SANJAY LEELA BHANSALI'S PADMAVAT. *International Journal of Social Science and Economic Research*, *04*(05 "May 2019"), 3653. https://ijsser.org/files_2019/ijsser_04__277.pdf

5. Rediff Get Ahead Bureau. (2018, January 24). How we designed Deepika, Ranveer, Shahid's Padmaavat costumes. *Rediff*. https://www.rediff.com/getahead/report/how-rimple-harpreet-narula--designed-deepika-ranveer-shahids-padmaavat-costumes/20180125.htm.

6. Sawhney, J. K. (2023, February 24). *From roses to courtesan costumes, how Sanjay Leela Bhansali crafts grandeur in his films*. Hauterrfly. https://hauterrfly.com/fashion/sanjay-leela-bhansali-film-costumes-gangubai-kathiawadi-bajirao-mastani-fashion-costume-designer/

+91 7993462321
devanshimehta09@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 60-68

'कस्बाई सिमोन' : विवाह के बंधनों से मुक्ति की राह तलाशती नारी का संघर्ष

प्रो. अंजना मेहता
एसोसिएट प्रोफेसर, एम. टी. बी. आर्ट्स कॉलेज, सूरत, गुजरात।

आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य की युवा उपन्यासकार डॉ. शरद सिंह हमेशा वैविध्यसभर नवीन विषयों को आलोचनात्मक ढंग से लेकर उपन्यास–लेखन के लिए जानी जाती हैं। 'पिछले पन्ने की औरतें', 'पचकौड़ी', 'तीली–तीली आग', 'बाबा फरीद अब नहीं आते', 'छिपी हुई औरत और अन्य कहानियाँ', 'पत्तों में कैद औरतें' और 'डॉ. अम्बेडकर का स्त्री–विमर्श' जैसी उनकी महत्वपूर्ण रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। उल्लेखनीय साहित्य सृजन के कारण उन्हें पं. गोविन्द वल्लभ पंत पुरस्कार, परिधि सम्मान, पं. रमानंद तिवारी स्मृति प्रतिष्ठा पुरस्कार और लीडिंग लेडी ऑफ मध्यप्रदेश के सम्मान से सम्मानित किया जा चुका है।

सन् २०१२ में प्रकाशित 'कस्बाई सिमोन' शरद सिंह का लिव इन रिलेशनशीप पर आधारित नवीनतम उपन्यास है। परंपरागत भारतीय सामाजिक समस्याओं, बंधनों, रूढ़ियों एवं पितृसत्तात्मक विचारधारा ने स्त्रियों को इस कदर परेशान और प्रभावित किया था कि वे इसकी यातना, वेदना व यंत्रणा की कल्पना मात्र से दिलोदिमाग से सिहर उठती हैं। दहेजप्रथा, विधवाविवाह निषेध, मातृत्व से वंचित, पुरुष की उपेक्षा, अवहेलना, स्वेच्छाचारिता एवं अनगिनत बंधनों, पाबंदियों का शिकार स्त्री की जिन्दगी जीते जी दोजख बना दी जाती है। आर्थिक परावलंबन की वजह से औरतें मजबूरन उस दोजख में रहने–जीने–मरने बाध्य होती हैं। युगों–सदियों की इन बंदिशों से आज की आधुनिक, आर्थिक–स्वावलंबी सुशिक्षित नारी इन सबसे उन्मुक्त होकर अपनी स्वेच्छा से बंधनविहीन जीवन जीना चाहती है।

पुरुष सत्तात्मक समाज से, बंधनों से मुक्ति व आजादी की लहर वैश्विक स्तर पर शिक्षित महिलाओं तक पहुँचती है। पाश्चात्य नारीवादी लेखिका वर्जीनिया वुल्फ, बेट्टी फ्रिडन, सिमोन द बोउवार ने स्त्रियों के अस्तित्व, अधिकारों, स्वतंत्रता पर काफी लिखा। प्रस्तुत उपन्यास में सिमोन के जरिए भारतीय गाँवों–कस्बों में बसनेवाली स्त्री–स्वतंत्रता, अधिकारों की हिमायती नारियों की पीड़ा–व्यथा–वेदना को अत्यंत सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया है। साथ ही सिमोन के नारी संबंधी विचारों को उपन्यास की नायिका के माध्यम से रखने का प्रयास किया है। लेखिका ने उपन्यास के प्रारंभ में ही मृदुल के द्वारा सिमोन का परिचय हमें कराया है – "एक फ्रांसीसी लेखिका, उनका जन्म पेरिस में हुआ। सिमोन ने दार्शनिक, राजनैतिक और अन्य सामाजिक विषयों पर किताबें लिखी जिनमें 'द सेकेंड सेक्स' सबसे अधिक चर्चित हुई। इस किताब में उन्होंने स्त्री शरीर और मन के बारे में पितृसत्ता द्वारा बनाए

गए तमाम मिथकों और पारंपरिक विश्वासों को खुली चुनौती दी। उन्होंने सिद्ध किया कि स्त्री पैदा नहीं होती वरन् बना दी जाती है।"

'कस्बाई सिमोन' उपन्यास का कथानक छः प्रकरणों में विभाजित है, और पूर्व दीप्ति शैली में लिखा गया है। उपन्यास नायिका केन्द्रित है यानी कि उपन्यास के केन्द्र में है नायिका सुगंधा। भारतीय समाज में विवाह का बंधन, स्त्री–अधिकार, आर्थिक संबल, स्त्री–पुरुष–संबंध को सामाजिक मान्यता, नारी–सुरक्षा आदि पर गहरा चिंतन–मनन प्रस्तुत किया गया है। इन सबको को पाने के लिए स्त्री विवाह करती है किन्तु क्या सही मायने में उसे यह सब मिलता है? शादी करके नारी आजीवन एक पतिरूप पुरुष का साथ–दामन थामे रखती है, सात जन्मों तक साथ निभाने की कस्में खाई जाती है, वह विश्वास बनाये रखती है। किन्तु क्या पुरुष आजीवन अपनी पत्नी को ही वफादार बने रहता है? विवाहेतर संबंध रखने पर भी वह बाइज्जत समाज में रह सकता है तो स्त्री क्यों नहीं? ऐसे अनेक प्रश्नों को सुगंधा के द्वारा उठाया गया है, उनकी जाँच–परख करने की, उनका समाधान ढूँढने की भी अच्छी कोशिश की गई है।

प्रस्तुत उपन्यास में दो पीढ़ी की नारियों की समस्या व प्रश्नों को उठाया गया है। १२ वर्षीय सुगंधा की माँ माया और पिता का दाम्पत्य जीवन लड़खड़ा जाता है। आये दिन पति–पत्नी के बीच झगड़े होते रहते हैं। उस समय उनका परिवार मध्यप्रदेश के मंडला में रहता था। माता–पिता के झगड़े का बुरा प्रभाव सुगंधा पर पड़ता है। माया ने एम. ए. किया था पर वह हाउस वाइफ है, पिता कॉलेज में प्रोफेसर हैं। माया पति द्वारा सतायी हुई, प्रताड़ित, अत्यंत व्यथित नारी है। वह पूर्णतः पति को वफादार रहती है किन्तु पति विवाहेतर प्रेम–संबंध बनाता रहता है और पत्नी को 'जाहिल', 'गंवार' जैसी उपाधियों से अपमानित करता है। दोनों के बीच भयानक झगड़ा होता रहता है। माया को जलील करने के लिए अपनी कामलीला को छिपाने के लिए पत्नी पर गंभीर आरोप लगाता है कि सुगंधा उसकी बेटी नहीं है। तब पति के कारनामों को उकेरते हुए माया कहती है– "मैं तुम्हें चैन से जीने नहीं देती हूँ? और तुम, तुम तो दूध के धुले हो न? तुम अपनी शोध छात्राओं की थीसिस पास कराने के बदले उनसे क्या लेते हो, क्या मुझे पता नहीं? उन्हें आपने साथ सोने पर मजबूर करते हो, घिन आती है तुम पर, दुर्भाग्य तो मेरा है जो मैं तुम्हारे साथ बंधी हुई हु!"

माया के साथ वे अशोभनीय संवाद करते हैं बच्ची का थोड़ा लिहाज भी नहीं रखते। पत्नी के ऊपर उनका अत्याचार, मार–पीट इस कदर होती थी कि माया भी प्रतिकार करते हुए वाद–विवाद में उतर पड़ती और दोनों के बीच हाथापाई भी हो जाती है। पिता, पति के रूप में वे गैर जिम्मेदार पुरुष सिद्ध होते है। उनके लाड़–प्यार के अभाव में ही सुगंधा का बचपन व्यतीत होता है, सुगंधा के जन्मदिन के अवसर पर भी वे अक्सर घर से बाहर रहते हैं। दूसरे बच्चे के जन्म के समय जो कि बेटा था वह अल्पायु में ही चल बसता है इसके बाद माया अर्थराइटिस का शिकार हो जाती है। माँ–बेटी ही एक दूसरे का सहारा थीं, पिता का अभाव वह सुगंधा को खलने नहीं देती थीं। इससे स्पष्ट है कि पुत्र का खलता हुआ अभाव और अपनी शोध छात्रा को आश्रय देने के लिए सुगंधा के पिता माया से दूरी बना लेते हैं। कॉलेज–यूनिवर्सिटियों में संशोधन क्षेत्र में चलनेवाला व्यभिचार, चरित्रहीन प्रोफेसरों की पॉल खोलकर रखने का अच्छा प्रयास लेखिका ने किया है।

माया और सुगंधा के चरित्र का विकास लेखिका ने मनोवैज्ञानिक धरातल पर किया है। पति की शारीरिक–मानसिक यातना–यंत्रणा का शिकार होकर माया आत्मपीड़न से गुजरती है और भारी अन्तर्द्वन्द्व का भोग

बनकर पति से अलग होने का फैसला अपनी बेटी सुगंधा के सामने रखती है। उस प्रसंग में उसकी बेबसी, विवशता, माँ–बेटी की दयनीय दशा हमारे मर्म को छू जाती है। शाम की बस से मंडला से निकलकर माया और सुगंधा भोपाल उसकी सहेली के घर जाती है। सुगंधा का एडमिशन भोपाल के अंग्रेजी माध्यम गर्ल्स स्कूल में करवा दिया जाता है, वहीं पर प्रथम दिन उसका डरा–सहमा गुजरता है। नूतन के पति अक्सर घर से बाहर रहते थे अतः माँ–बेटी का वहाँ रहना सरल था किन्तु जैसे ही नूतन के पति घर आते हैं तो माया उसका घर छोड़ने का निर्णय करती है। माया एक काफी संवेदनशील, भावुक नारी है जो रिश्तों को बनाने, निभाने में बड़ी सावधानी रखती है – "मेरे वहाँ रहने से नूतन और मेरे संबंध खराब हो सकते थे। जरा सोचो, यदि नूतन का पति मुझमें दिलचस्पी लेने लगता तो मेरी और नूतन की क्या स्थिति रहती? संबंधों को बहुत सोच–समझकर निभाना पड़ता है, सुगंधा!"

उस दौरान सुगंधा को पापा का इन्तजार बना रहता है, किन्तु वे नहीं आते। नूतन मौसी की जीवनशैली, वैभव देखकर उसमें भी ऐसे भावी जीवन की आकांक्षाएँ, सपने जाग उठते हैं। एक महिना रहकर वे किराए के घर में चली जाती हैं। वहाँ पर नई–नई कठिनाइयों से वह गुजरती है। माया एक निजी स्कूल में पढ़ाने का काम करने लगती है। परिस्थितियाँ सुगंधा को उम्र से पहले ही बड़ा और ज्यादा समझदार बना देती है। भावनात्मक स्तर पर वे दोनों एक–दूसरे के पूरक बन गये। दुःख को साझा करने के लिए उन दो के अलावा था ही कौन? वहीं पर मकान मालिक के बेटे की कुदृष्टि, शारीरिक छेड़छाड़ का भोग सुगंधा बनती है। माता–पिता का तलाक हो जाता है, सुगंधा माँ के साथ रहने का ही फैसला करती है। माँ–बेटी एक दूसरे नये घर में जाते हैं। माया काफी समझदार और संवेदनशील नारी है, वह बेटी को सांत्वना देकर जुझारू बनाती है। अब माया सचिवालय में क्लर्क की नौकरी करने लगती है वहीं पर वह सेलट के परिचय में आती है, जिसे सुगंधा सेलट अंकल कहकर पुकारती है। पितृप्रेम से विहीन सुगंधा उनमें पिता का प्रेम ढूँढने की कोशिश करती है। धीरे–धीरे वह किशोरी से युवती बन जाती है। परिस्थितियों ने उसे समय से पहले बड़ा कर दिया।

सचिवालय में टाइपिंग की परीक्षा पास करने की शर्त पर मिलनेवाली माया को क्लर्क की नौकरी परीक्षा उत्तीर्ण करने पर उन्हें नौकरी में पक्का कर दिया गया। महंगाई–भत्ते तथा अन्य भत्तों के कारण अच्छा वेतन मिलने पर माँ–बेटी का जीवन सुख–चैन से व्यतीत होने लगता है तो दूसरी ओर सेलट उपहारों के माध्यम से माया–सुगंधा को प्रसन्न रखने का प्रयास एवं दिल जीतने का यत्न करते हैं। सुगंधा के लिए यह छोटी–छोटी भेट–सौगातें उसके मन को खुशियों से भर देती है। सुगंधा खुशी से छलक उठती है – "माँ ने मेरे लिए दो स्कर्ट–ब्लाउज और एक नया बेलबॉटम–टॉप खरीदा था। वह मेरा पहला बेलबॉटम था जबकि वह बेलबॉटम के फैशन का अंतिम दौर चल रहा था। स्लेटी रंग का बेलबॉटम और उस पर लाल–पीले बड़े–बड़े फूलों वाला टॉप। मुझे बहुत पसंद आया था। सेलट अंकल ने मेरे लिए एक ब्रेसलेट खरीदा था। उसे मैंने पहली बार अपनी पक्की सहेली रीता चूड़ासमा के जन्मदिन के उत्सव में पहना था।"

पति की उपेक्षा, प्रताड़ना, उनके जीवन में आयी हुई दूसरी औरत के कारण माया अपने जीवन में अकेलापन, रिक्तता और घुटन का शिकार होकर साथी कर्मचारी सेलट में अपनापन, लगाव, सहानुभूति और उसके साहचर्य को चाहती है। किन्तु सेलट की पत्नी द्वारा अपमानित होकर उसे लांछना भी सहनी पड़ती है। वह उस संबंध को तिलांजलि दे देती है। माया आधुनिक युग की स्वाभिमानी नारी है जो पहले की नायिकाओं की भाँति

'पति है तो ही अस्तित्व है' की विचारधारा को नकारती हुई अपना मार्ग स्वयं चुन लेती है। किराये के नये मकान में रहते समय सुगंधा का परिचय गुजराती परिवार में पली–बढ़ी रीता चूड़ासमा से होता है। वह उसकी पक्की सहेली है दोनों प्रथम वर्ष बी.ए. में साथ–साथ पढ़ाई करती हैं। उम्र में रीता उससे सात साल बड़ी है और मानसिक तौर पर भी। रीता का परिवार जरूरत से ज्यादा यौन संबंधों को लेकर आधुनिक था। इसीका परिणाम था कि रीता हँसमुख, जिन्दादिल और नीडर थी। स्त्री–पुरुष के काम–संबंधों की जानकारी सुगंधा को उससे ही मिलती है। संस्कारी परिवार की सुगंधा इससे जुड़ी पुस्तक जब रीता द्वारा देखती है तो अचंभित हो जाती है, उसे क्षोभ होता है। लेकिन धीरे–धीरे रीता की सारी बातें और पुस्तक में 'ज्ञान की बातें' शीर्षक से छपा लेख पढ़कर सुगंधा इन सभी बातों में विशेष रुचि लेने लगती है।

रीता और उसकी माँ पाश्चात्य भोगवादी संस्कृति व विचारधारा के प्रतीक है। युवती सुगंधा भी सैक्स संबंधी पुस्तक को पढ़कर अपने शरीर के विभिन्न अंगों में आये बदलाव को लेकर कुतूहल अनुभव करती है। माँ के अनुभवों को देखकर सुगंधा को विवाह जैसी संस्था में कोई रूचि नहीं है। पति द्वारा उपेक्षित, प्रताड़ित और चोट खा चुकी माँ को देखकर वह विवाह को नकारती है। स्वतंत्र होकर, शादी के बंधन से मुक्त होकर वह जीने की अभिलाषा रखती है– "उफ! ये विवाह की परिपाटी। गढ़ी तो गई स्त्री के अधिकारों के लिए जिससे उसे और उसके बच्चों को सामाजिक मान्यता, आर्थिक संबल आदि–आदि मिल सके किंतु समाज ने ही इसे तमाशा बना कर रख दिया। मैं इस तमाशे को नहीं जीना चाहती थी। मैंने सोच रखा था कि मैं कभी विवाह नहीं करूंगी। माँ के अनुभवों की छाप मेरे मन–मस्तिष्क पर गहरे तक अंकित थी। उसे मैं चाह कर भी मिटा नहीं सकती थी।"

सामाजिक रूढ़ियों, विचारों एवं परंपराओं के प्रति सुगंधा विद्रोहात्मक तेवर रखनेवाली, अपने इशारों पर, मनोनुकूल जीवन जीने की आकांक्षा रखने वाली नारी है। जो समाजी रूढ़ि, परंपरा और संकीर्ण सोच से मुक्त होकर वैयक्तिक व सामाजिक तौर पर स्वतंत्र जीवन जीना चाहती है। जहाँ न कोई गिला–शिकवा हो, न कोई दबाव व पाबंदी। मानव की हैसियत से वह अधिकार पाना चाहती है, सम्मानपूर्ण जीवन जीना चाहती है, पर इस प्रयास में उसे बहुत कुछ खोना पड़ता है। लिव इन रिलेशन की विचारधारा महानगरों में एक मर्ज की भाँति पनपती व विकसित होती जा रही है। खासतौर पर पढ़ी–लिखी आधुनिकाएँ इसमें अपनी स्वतंत्रता को कुछ हद तक सुरक्षित महसुस करती हैं। इसके लिए उसे न विवाह करना पड़ेगा न सामाजिक वर्जनाओं का निर्वाह, वह स्वयं को स्वतंत्र पाकर जब चाहे ऐसे रिश्तों को निभा सकती है या तोड़ सकती है। किन्तु यह भारतीय सामाजिक व्यवस्था पर एक बहुत बड़ा प्रहार है। मात्र सहवास, शारीरिक आवश्यकताएँ पूर्ण करने वाली यह प्रणाली कभी–कभी घातक भी बन सकती है। भारत सरकार भी कायदे–कानून की दृष्टि से इस पर सोच–विचार कर फैसले करने पर मजबूर हुई है।

लिव इन रिलेशन आज भारतीय में एक बहुत भयानक समस्या बन चुकी है। जहाँ तक महानगरों में वहाँ के परिवेश, जीवनशैली की दृष्टि से यह ज्यादा खतरनाक प्रभाव नहीं डाल सकती है किंतु छोटे गाँव, नगरों में यह विचारधारा या प्रणाली स्त्री के लिए पीड़ादायक ही रहेगी। हाल ही में ७ अप्रैल २०२४ के दिन मध्यप्रदेश हाईकोर्ट ने लिव–इन में रहकर माँ बनने वाली स्त्री के पक्ष में अत्यंत महत्वपूर्ण फैसला किया कि ऐसी स्थिति में पति को गुजारा देना पड़ेगा। लंबी अवधि तक पार्टनर के साथ रहनेवाली स्त्री गुजारा की अधिकारिणी होगी।

प्रस्तुत उपन्यास में लिव इन रिलेशन में रहने वाली सुगंधा का प्रश्न, समस्या, परिवेश मध्यप्रदेश का ही

है अतः इसका जिक्र व उल्लेख करना नितांत आवश्यक है। सुगंधा एक अति भावुक युवती है, बचपन में माता–पिता के झगड़े का शिकार होने के कारण विवाह को लेकर उसके मन में कोई अच्छी छवि नहीं है। हमेशा पिता के प्यार को पाने के लिए तरसने वाली, उपेक्षित सुगंधा का घर से बाहर किसी युवक में प्रेम को ढूंढना साहजिक है। रीता द्वारा जगायी गयी सेक्स की भूख को तृप्त करने के लिए वह रितिक जैसे कामुक, स्वार्थी, अवसरवादी पुरुष की चंगुल में फँस जाती है। वैसे वह स्त्री–पुरुष–संबंधों में रुचि लेने लगी थी फिर भी उसे दैहिक से ज्यादा प्रेम की भूख थी, जिसे रितिक के द्वारा पूर्ण करने की कोशिश में छली जाती है। वह हमेशा प्रेम पाने की असफल कोशिश करती है – "देह की भूख ने मुझे कभी इतना प्रभावित नहीं किया जितना प्रेम की प्यास ने। मुझे सदा यही आकांक्षा रहती कि कोई ऐसा हो जो मुझे और सिर्फ मुझे चाहे।"

स्वस्थ, आकर्षक देहयष्टिवाली सुगंधा विवाह को बंधन मानती है। समाज के संकुचित दृष्टिकोण का विरोध करने वाली नारी के रूप में वह स्त्री के अधिकारों को लेकर काफी सतर्क, जागृत है। पुरुषों की स्वेच्छाचारिता से वह परेशान है और समाज भी स्त्री–पुरुषों के संबंधों को विवाह के रूप में ही मान्यता देता है। भारत में लिव इन रिलेशन को समूचे रूप से समाज में स्वीकृति नहीं मिल सकती, मिलनी भी नहीं चाहिए क्योंकि वैयक्तिक संबंधों को इसमें स्थायित्व नहीं मिल सकता, हमारी प्राचीन परिवार प्रथा चरमरा जायेगी, संबंध बनाने, टूटने के कारण अधिकतर स्त्रियाँ निराशा, डिप्रेशन एवं अकेलेपन का शिकार हो जायेगी।

सुगंधा अपने ढंग से जीवन जीने में विश्वास करती है। शिकायत शाखा में काम करने वाली उपन्यास की नायिका सुगंधा एक नाजुक क्षण में, उसके प्रति झूठी सहानुभूति रखने वाले, उसकी गर्जियनशीप करने वाले रितिक के ऐंद्रजालिक सम्मोहन में फँस जाती है। रितिक कामुक और संकुचित स्वभाव का युवक है। दोनों का मन–मेल नहीं है पर सिर्फ शादी को लेकर उन दोनों की विचारधारा समान है। पर रितिक काफी मक्कार, चालाक युवक है जो इस बहाने सुगंधा से शारीरिक निकटता बढ़ाकर उसके किराये के घर में रहने के लिए आ जाता है। वह विवाह को फिजूल और बच्चे पैदा करने का लाइसेंस मात्र मानता है उसमें स्त्री–सम्मान की भावना है ही नहीं, वह स्त्री को भोग–विलास की वस्तु के अलावा और कुछ नहीं समझता ही नहीं है। इस दृष्टि से वह सुगंधा को जलील करता है, अपमानित करता है। इससे सुगंधा को गहरी मानसिक चोट पहुँचती ऐ, वह पश्चाताप के गह्वर में डूब जाती है।

उपन्यास में सुगंधा और रितिक, सुगंधा की पड़ोसन के माध्यम से परंपरागत एवं वर्तमान आधुनिक मूल्यों के बीच की टकराहट को बखूबी प्रस्तुत किया है। रितिक और सुगंधा अपना सहजीवन यानी लिव इन रिलेशन को शुरू करने के लिए नया घर खरीदते हैं। उनके लिए मकान किराये पर लेना, पड़ोसियों के प्रश्नों का सामना करना एक बहुत बड़ी समस्या बन जाती है। सुगंधा की माँ भी ऐसे संबंध के कारण चिंतित है। पड़ोसन के पूछने पर सुगंधा रितिक को झूठ का सहारा लेकर 'मुंहबोला भाई' बताती है। पड़ोसी द्वारा सुगंधा के बॉस को दफ्तर में उसके चरित्र को लेकर शिकायत होती है। मकान की समस्या के कारण उन दोनों को बार–बार नया घर ढूंढने की जरूरत पड़ती है। घरवालों को बिना बताये ये संबंध जारी रहते हैं। रितिक के पिता द्वारा विवाह के लिए आग्रह करने पर और सामाजिक कायदे–कानून का हवाला देने पर सुगंधा समाज की कटु आलोचना करती है। वह न तो शादी करना चाहती है और न रितिक को छोड़ना। रितिक की माँ दफ्तर में फोन कर सुगंधा को भद्दी गाली देती है तब अकाउंटेंट सिकरवार उसे डाँटता है।

सुगंधा को समझाते हुए सिकरवार कहता है– "सुगंधा, ये तुम्हारा अपना जीवन है, अपना निर्णय है लेकिन इस पूरे मामले पर एक बार ठंडे दिमाग से सोचना। तुम, नीना गुप्ता, सुष्मिता सेन या करीना कपूर नहीं हो, तुम एक कस्बे की और मध्यवर्ग की लड़की हो, ये सब पैसेवालों और महानगरों के जीने के तरीके हैं, तुम जैसी लड़कियाँ दुःख ही पाती हैं, चैन–सुकून, अधिकार और सम्मान नहीं।" सुगंधा के सह कर्मचारी भी उसके ऐसे संबंध को लेकर नाराज हैं। नई मकान मालकिन उसे समझाने के लिए दिल्ली से आती है लेकिन सुगंधा अपने फैसले पर अडिग रहती है।

लेखिका ने नई मकान मालकिन तथा सुगंधा यानी दो विपरीत ध्रुवों के माध्यम से एक ओर पुरानी भारतीय संस्कृति, परंपरा को समर्थन दिया है तो दूसरी ओर विवाह को अनावश्यक मानकर लिव इन रिलेशन में विश्वास करने वाले, बंधनमुक्त जीवन जीनेवाले युवक–युवतियों को सावधानी एवं सोच–समझकर निर्णय करने की चेतावनी दी है। साहसी, जुझारू एवं अटूट आत्मविश्वास वाली सुगंधा समाज के दोहरेपन का शिकार होती है। सुगंधा विवाह–बंधन को नकारती है। यहाँ पर हमें लगता है कि अज्ञेय के 'नदी के द्वीप' उपन्यास की नायिका रेखा की भाँति सुगंधा भी एक ओर सामाजिक रूढ़ियों का विरोध करती है तो कभी उन्हें स्वीकार करने की ललक उसके मन में उठती हुई दिखाई देती है। रितिक–सुगंधा पाँच साल से एक साथ रहते हैं, खुद का घर लिया। वे मैरिज एनीवर्सरी न मनाकर 'गृहप्रवेश की एनीवर्सरी' मनाते हैं। सौभाग्यवती स्त्री की भाँति भेडाघाट से सिंदूर की डिब्बी खरीदती है, करवाचौथ की पूजा करती है।

समाज की दृष्टि में वे दोनों पति–पत्नी नहीं थे लेकिन घर की रजिस्ट्री के दस्तावेज में पति–पत्नी थे। लेखिका ने जीवन जीने के नये तौर–तरीकों के अनुसार कानून बनाने की हिमायत करते हुए लिखा है– "जीवन जीने के नए ढंग यदि हम अपनाते हैं तो उनके अनुरूप निरंतर कानून भी बनते रहने चाहिए। लेकिन कानून भी तो एक बंधन है, हम मनुष्य बंधनों के बिना क्यों नहीं रह पाते हैं?" महान दार्शनिक रूसो का कथन भी उल्लेखनीय है– ''हम स्वतंत्र जन्म लेते हैं किंतु उसके बाद सर्वत्र जंजीरों में जकड़े रहते हैं।"

सुगंधा मुक्त होकर जीवन जीने की उम्मीद करती है किन्तु उसके अवचेतन में परिवार, बच्चे और सुनहरे संसार की इच्छा दबी हुई है, जो जाने–अनजाने अभिव्यक्त भी होती है। किन्तु वह परंपरागत पत्नी की तरह जीवन बिताना नहीं चाहती। शादी के संदर्भ में इन प्राचीन मान्यताओं, बंधनों के कारण एक भय–सा उसके मनःपटल पर छा जाता है। वह विवाह को लेकर अनिर्णायक स्थिति में जा पहुँचती है तथा भारी अंर्तद्वन्द्व से गुजरती है न शादी के पक्ष में निर्णय कर सकती है न लिव इन रिलेशनवाले सहजीवन का स्वीकार। जीवन को कटु अनुभवों से परिचित माया उसे यह बताने–समझाने की कोशिश करती है कि स्त्री पुरुष के सहारे नहीं बल्कि अपनी दृढ़ता के द्वारा जिंदगी का सामना कर सकती है, फिर भी वह विवाह को अनिवार्य मानकर, उसे शादी कर लेने की सलाह देती है।

सुगंधा अपने मन के साथ समझौता करके जीवन व्यतीत करती है। सहजीवन को वह 'एन्जॉय' मानती है किन्तु वह स्वयं महसूस करती है कि यह आत्मवंचना मात्र है – "मुझे आत्मवालोकन करना चाहिए, आखिर मैं चाहती क्या हूँ? यूं ही आपसी समझौतों के तहत 'लिव इन रिलेशन' में रहना या फिर विधिवत् शादी करके विवाहित के रूप में रहना?" रितिक के साथ रहते हुए वह उसमें, उसके स्वभाव में, व्यवहार में एक परंपरावादी पति की तरह होने वाले परिवर्तनों को, 'असामाजिक रिश्ते' को 'सामाजिक' आकार लेते हुए अनुभव करती है।

वह रितिक से प्रेम, सहानुभूति चाहती है, प्रेम उसके लिए प्रमुख था लेकिन रितिक की आवश्यकता तो सिर्फ दैहिक ही थी। दोनों के संबंधों में इसी वजह से दरार पड़ने लगती है। सुगंधा तन से अधिक मन से रितिक के साथ जुड़ी हुई है, उसके भावुक मन को गहरी चोट पहुँचती है। जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह रितिक से जीवन व्यतीत करती थी वह पूर्ण नहीं हो पाता–"हम विवाहित नहीं हैं इसलिए स्वतंत्र है कि वह ताजगी इतर व्यक्तियों में ढूंढ सकें। लेकिन मैं जानती हूँ कि मेरा स्त्रीमन रितिक से इतर, दूसरी देह में चौन नहीं ढूंढ पायेगा। संबंधों की यायावरी स्त्रीदेह को भले ही नए–नकोर अनुभव दे दे किंतु स्त्रीमन को चैन नहीं दे पाती है।"

अविवाहित रहकर उसे बहुत कुछ खोना पड़ता है। शारीरिक–मानसिक यंत्रणा के साथ–साथ आर्थिक चोट भी वह स्वीकार कर लेती है। पुरुष के जीवन में अविवाहित स्त्री रखैल बनकर ही रह जाती है। रितिक द्वारा सुगंधा के लिए किया गया यह संबोधन उसे मानसिक रूप से तोड़ देता है। पुरुष कितना आधुनिक विचारोंवाला क्यों न हो बिन ब्याही स्त्री उसके लिए रखैल ही होती है। भारतीय समाज में ऐसी नारियाँ कभी अपना अधिकार एवं मान–सम्मान प्राप्त नहीं कर सकतीं। विशेष कर कस्बाई माहौल में– "तुम एकदम सड़क छाप हो, सड़क छाप!..... जब तुम एक आदमी के साथ उसकी बिन ब्याही बीवी बनकर रह सकती हो तो दसियों के साथ भी रह सकती हो, कौन जाने मुझसे पहले कितनों के साथ रह चुकी हो!" रितिक का यह कथन सामंतवादी विचारधारा का द्योतक है। भ्रमरवृत्तिवाले पुरुष अनेक युवतियों के साथ संबंध बना सकता है, पुरुष जिस शरीर का प्रयोग–उपयोग बार–बार करता, तब उसे शरीर बदलने की, नये संबंध बनाने की चाह होती है, यही क्रिया अगर नारी करें तो समाज उसे अपमानित करके देश निकाला दे देता है। समाज में वह कलंकित होकर मुंह दिखाने योग्य नहीं रहती परंतु पुरुष की प्रतिष्ठा वैसी ही बरकरार बनी रहती है।

रितिक के व्यवहार से स्पष्ट लगता है कि वह सुगंधा से ऊबने लगा है, वह उसे ताना मारकर संदेह की दृष्टि से देखने लगता है। स्वाभिमानी–स्वावलंबी नारी सुगंधा इस संबंध को तोड़ देती है और गहरी मानसिक पीड़ा–वेदना को झेलती है। उसकी कोई विवशता नहीं थी फिर भी सिर्फ अपने प्रेम को बचाये रखने के लिए परस्पर साथ थे। विडम्बना यह है कि समाज से परे रहकर ये संबंध उन्होंने बनाये पर, उसका अंत सामाजिक ढर्रे पर ही हुआ। बहाना बनाकर वह माँ के पास भोपाल चली जाती है। मन बहलाने के लिए एवं स्त्रियों के पक्ष में सुगंधा 'औरतों के अधिकारों' पर लेख लिखती है। वह अकेलापन महसूस करती है, ऐसी स्थिति में कीर्ति उसे सांत्वना और सहयोग देती है। रितिक में सामाजिक जीवन जीने की चाह उत्पन्न होती है, दोनों साथ थे तब उनके मन में बच्चे को पाने की कामना जागती है परंतु वैध–अवैध के द्वन्द्व के कारण, इच्छा को छोड़ देते हैं।

लेखिका ने रितिक को छोड़ देने के बाद माया और सुगंधा की समान स्थिति का बहुत सुंदर ढंग से वर्णन किया है। माया को पति ने छोड़ा था, रितिक को सुगंधा ने छोड़ा। माया विवाहित थी, सुगंधा अविवाहित। कीर्ति उसे विवाह करने की सलाह देती है किन्तु वह स्वतंत्र रहना ही उचित मानती है। माँ की साथी का घर उसे सागर में मिल जाता है, वहाँ पर नौकरी स्थानांतरण करके रहने लगती है। डॉ. हरीसिंह विश्वविद्यालय में सुगंधा का परिचय छिंदवाड़ा में प्रोफेसर ऋषभ जैन से होता है, जो शादीशुदा पुरुष है, कामुक है। उसके साथ विश्वप्रसिद्ध पर्यटन स्थान खजुराहो जाते हैं। वह एक के बाद एक पुरुषों के साथ संबंध बनाती है। ऋषभ के बाद विशाल पटेल उसके जीवन में आता है। स्वतंत्रता की चाह में, बंधन से मुक्त रहने के प्रयास में अंततः उसे निराशा, अलगाव, भटकन, छलना के अतिरिक्त कुछ हासिल नहीं होता। इस प्रयास में उसके हाथ कुछ बाकी नहीं बचता।

वह पुरुषों द्वारा छली जाती है, उसके जीवन में अकेलापन, ऊब, घुटन, संत्रास के अलावा कुछ नहीं रहता।

महानगरीय जीवन जीनेवाली आज की सुगंधा जैसी नारियाँ अकेलेपन के कारण रिक्तता का अनुभव करने लगती है। विशेषकर आत्मनिर्भर स्त्रियाँ इन परिस्थितियों का शिकार हो रही हैं। सुगंधा भी एक ऐसी नारी है जो दिमागी और आर्थिक आजादी के साथ–साथ शारीरिक आजादी भी चाहती है। विष्णु प्रभाकर का कथन इस संदर्भ में दर्शनीय है– 'काम और यौन के प्रति भारतीय दृष्टिकोण सदा बदलता रहा है। प्रारंभ में आर्य बहुत उदार और संतुलित विचारों के थे, परन्तु बाद में भारतीय मानस कई कारणों से नारियों के प्रति अनादर होता चला गया। पुरुष के सभी पाप क्षम्य थे पर नारी से आशा की जाती रही यौन शुचिता की और सतीत्व की। सतीत्व की इस कठोर होती गई धारणा ने नारीत्व को ही नष्ट कर दिया। यह सब पुरुष प्रधान समाज के कारण था, जो एक ओर तो नारी को भोग्या मानता रहा, दूसरी ओर उससे आशा करता रहा सतीत्व की और इन दो परस्पर विरोधी कारणों के बीच नारीत्व कराहता रहा। औद्योगिक उपभोक्ता संस्कृति के कारण हो या पश्चिमी प्रभाव के कारण, नारी आज पूर्ण मुक्ति चाहती है।"

स्त्री मुक्त तो होना चाहती है पर परंपराओं से उस पर लादे गये बंधनों को, सामाजिक परंपराओं को एक झटके के साथ तोड़कर मुक्त नहीं हो सकती। सुगंधा के चरित्र का ताना–बाना मनोवैज्ञानिक धरातल पर निर्मित और संचालित है। अपने जीवन में वह जीवन साथी की तलाश में भटक जाती है। सही व्यक्ति न मिलने पर वह किसी से भी संबंध बनाने के लिए उत्सुक रहती है, मानों पुरुषों की बेवफाई का प्रतिशोध ले रही हो। अपने परिचय में आने वाले पुरुषों की तुलना रितिक से करती है। रितिक शादी कर लेता है फिर भी वह उसे भूल नहीं पाती। समाज एवं उसकी परंपराओं के खोखलेपन का परिचय उसे तब होता है जब कीर्ति अपने पति की तरक्की के लिए पति के अलावा अन्य पुरुष से संबंध बनाती है। लेखिका ने डॉक्टर जरिए रितिक–सुगंधा के संबंध को लिव इन रिलेशन को एप्रिशिएट करवाकर स्त्रियों की स्वास्थ्य संबंधित रूढ़ियों और मान्यताओं का विरोध किया है।

अशिक्षा, दहेज, पुत्र–पुत्री पार्थक्य, बेटियों की अवहेलना, स्त्रियों का दैहिक शोषण, स्त्री–पुरुष समानता, अधिकार, स्त्री को देह से परे एक इन्सान के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया है। उसके लिए युगों से निर्मित किये गये बंधनों की श्रृंखलाओं से मुक्त करवाने का यत्न किया है। स्कूलों में सेक्स की शिक्षा को अनिवार्य बताकर स्त्री–स्वास्थ्य को सुरक्षित बनाये रखने के लिए आधुनिक युग में गर्भ निरोधक वस्तुओं के इस्तेमाल पर जोर दिया है। उन्होंने माया जैसी औरतों के द्वारा यह दिखाने की कोशिश की है कि स्त्री आत्मनिर्भर हो तो वह जीवन जीने का हौसला व आत्मविश्वास बनाये रखती है। उपन्यास में विवाह की परिपाटी, स्त्री–अधिकार, बाल–विवाह की समस्या, कार्यालयों में कर्मचारियों की कामचोरी, दादागिरी, उच्च शिक्षा क्षेत्र में शोध छात्राओं का प्रोफेसरों द्वारा किया जाने वाला यौन–शोषण, समाज–व्यवस्था, अकेली औरत को किराये पर मकान की समस्या, उनके साथ समाज का व्यवहार, दोहरापन, दहेज के कारण महिलाओं की हत्या, पंगु कायदे–कानून, राजनीतिक भ्रष्टाचार, ऑनर किलिंग, चाटुकारिता जैसी अनेक समस्याओं का चित्रण किया गया है।

दिल्ली जैसे बड़े महानगरों में एवं छोटे गाँव, कस्बों में पनपनेवाले लिव इन रिलेशन के बनाव, इसका शिकार होती महिलाएँ, उसके भय–स्थान आदि की चर्चा लेखिका ने अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति बिल–क्लिन्टन का हवाला देकर की है। यथा स्थान उपन्यास में उल्लेखित समस्याओं को दर्शाने के लिए कालिदास, मोहन राकेश,

पौराणिक कथाओं, पात्रों के माध्यम से स्त्री के सतीत्व व पतिव्रता जैसे महान गुणों का महिमामंडन एवं स्वेच्छाचारी स्वतंत्र पुरुषों के व्यभिचार को अच्छी तरह से चित्रित किया है।

निष्कर्ष रूप में अगर देखा जाए तो पितृसत्तात्मक भारतीय समाज व्यवस्था में पुरुष बंधनों से बंधकर भी उन्मुक्त ही रहता है। वह चाहे सामाजिक विवाह का बंधन ही क्यों न हो। विवाहित होते हुए भी पत्नी की उपस्थिति में भी वह अनेक प्रेमिकाएँ, रखैल रख सकता है फिर भी वह समाज की नजरों में क्षम्य ही रहेगा। किन्तु अगर स्त्री उसकी भाँति बंधन–मुक्त जीवन जीना चाहेगी तो महानगरीय नारी की भाँति उसका जीवन सरल, सहज और यंत्रणाओं से विहीन नहीं बल्कि अनेक प्रकार के संकटों, संघर्षों से युक्त होगा। जब तक नारी को देह मात्र से समझकर, उसे भोग–विलास का साधन मात्र न मानकर, देह से परे एक मनुष्य के रूप में स्वीकारा नहीं जायेगा तब तक उसे उन परंपरागत बंधनों, मान्यताओं से मुक्ति व सारे अधिकार नहीं मिलेंगे। यह तब संभव हो पायेगा जब एक स्वस्थ समाज की स्थापना की कल्पना साकार होगी जिसमें स्त्री को पुरुष के समान वास्तविक रूप में बराबरी व समानता का दर्जा प्राप्त होगा।

संदर्भ-ग्रंथ सूची :-

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 69–74

దేవులపల్లి కృష్ణ శాస్త్రి కృతులలో సాహిత్య, సామాజిక, సాంస్కృతిక దృక్పథం

డా. పి. శర్వాణి

ఎమ్. ఏ., పెచ్. డి మహారాజా స్వయం ప్రతిపత్తి కళాశాల, విజయనగరం.

దేవులపల్లి కృష్ణ శాస్త్రి భావకవిగా ప్రసిద్ధి కెక్కారు. ఆయన శ్రవ్య నాటికలు, విమర్శనాత్మక రచనలు కూడా చేశారు. ఆయన రచనలలో సాహిత్య, సామాజిక, సాంస్కృతిక దృక్పథాన్ని కనబరచారు.

సాహిత్య దృక్పథం:

ఆధునిక కాలంలో కందుకూరి వీరేశలింగం పంతులు సంఘ సంస్కరణ లను ప్రవేశపెట్టారు. అదే సమయంలో బ్రిటిష్ వారి వల్ల ఆంగ్ల విద్య ఆంధ్ర దేశంలోకి ప్రవేశించింది. వాటివల్ల ఆనాటి యువకుల ఆలోచనా ధోరణిలో మార్పు వచ్చింది. దానివల్ల మహాకావ్యాలు, ప్రబంధాలు వెనకబడి ఖండకావ్యాలు తెలుగు సాహిత్యం లో ప్రవేశించాయి. ఆంగ్ల రొమాంటిక్ కవిత్వ ప్రభావంతో తెలుగు సాహిత్యం లోకి వచ్చిన భావకవిత్వానికి ప్రారంభకులు రాయప్రోలు సుబ్బారావు అయినా, దానిని ప్రజలకు దగ్గర కావడానికి తోడ్పడినవారు కృష్ణ శాస్త్రి. ఆధునిక తెలుగు సాహిత్యం లో వచ్చిన ఈ మార్పుల వల్ల కృష్ణ శాస్త్రి సాహిత్య దృక్పథం లో కొత్తదనం చోటు చేసుకుంది. మొట్ట మొదటగా రచించిన కృష్ణ పక్షం, ప్రవాసం, ఊర్వశి వంటి కవితా సంపుటి లలో కృష్ణ శాస్త్రి వ్యక్తిగతమైన భావాలే కవిత్వ రూపంలో వెలు వడ్డాయి. ఆయనకు వ్యక్తిగతంగా నచ్చిన ప్రేయసి మీద ప్రేమతో రచించిన ఊహ ప్రేయసి గీతాలు, తనకు సన్నిహితుల మరణంతో రచించిన స్మృతి గీతాలు అలాంటివే. అందులో కవి తనకు సంబంధించిన ఊహలను, విషయాలను కవితా రూపంలో విశ్వజనీనం చేశారు.

కృష్ణ శాస్త్రికి సంప్రదాయం మీద అభిమానం చాలా వుంది. కాని ఆయన

కవిత్వం అంతా గేయా లలోను, ముత్యాల సరాలు అనే కొత్త ఛందస్సు లోను వుంది. కొన్ని ఆకారం లో సిస పద్యాలు, గీతాలు, వృత్తాలలాగా వున్నా ప్రాచీన సాహిత్యం లోని పద్యాలలోని క్లిష్టత అందులో కనిపించదు. పద్యం పూర్తి కావడానికి అనవసర పదజాలంతో నింపడం ఈ ఆధునిక పద్యంలో కనిపించదు. కృష్ణ శాస్త్రి శ్రవ్య నాటికలలోని ఇతి వృత్తానికి పురాణాల కథలను తీసుకున్నా, వాటిని నాటికకు అనుగుణంగా మార్చి కొత్త రూపాన్ని తీసుకువచ్చారు. ఇక్కడ సంప్రదాయం మీద అభిమానం తో పురాతన ఇతి వృత్తాన్ని తీసుకున్నా, దానిని తనకు కావలసిన విధంగా మార్చారు.

కొన్ని సార్లు పూర్వ కథలో ఒక చిన్న విషయాన్ని ఆధారం చేసుకుని ఆయా పాత్రల పేరుతోనే తను అనుకున్న విధంగా కథను పెంచి రచించారు. వీటికి కృష్ణాష్టమి, గుహుడు, ధనుర్దాసు ఉదాహరణలు. కృష్ణ శాస్త్రి భాష వ్యావహారికంగా ఉండాలి. అలా ఉంటేనే జీవం ఉంటుంది అని అన్నారు. ఆయన రచనల్లో మాత్రం పూర్తి వ్యావహారికంగా ఉండదు. అది కొత్త పాతల కలయికతో ఉంటుంది. సంస్కృత సమాసాలను వాడినా అందులో అర్థ క్లిష్టత కనిపించదు.

సమాజం నుండి కవిత్వానికి కావలసిన విషయాన్ని తీసుకోవాలి. అప్పుడే ఆ రచన సజీవ రచన అవుతుందని కృష్ణ శాస్త్రి అభిప్రాయపడ్డారు. కృష్ణ శాస్త్రి కవిత్వం ఊహలోకంలో విహరిస్తుందనే ఒక అపవాదు వుంది. కాని ఆయన ఒక్క ఊహ ప్రేయసినే కాక జాతీయ భావ ప్రబోధంగా, జనపద జీవన సౌందర్య పూర్వకంగా రచనలు చేశారు. కాబట్టి ఆ అపవాదు నిరాధారం. ప్రాచీన సాహిత్యం లో స్త్రీ ని అంగాంగ వర్ణన చేశారు కవులు. అది క్షీణ యుగంలో అసభ్య శృంగారానికి దారి తీసింది. ఆధునిక కాలంలో ఆంగ్ల సాహిత్యం వల్ల ఆనాటి యువకుల ఆలోచనా ధోరణిలో మార్పు వచ్చింది. అటువంటి ఆనాటి ఆధునిక యువకుడైన కృష్ణ శాస్త్రి. స్త్రీ ని ప్రేయసిగా, దేవతగా, జీవితేశ్వరిగా భావించాలి అన్నారు. స్త్రీ అంగాంగ వర్ణనకు కాక ముఖ సౌందర్యానికే ప్రాధాన్యం ఇవ్వాలి అంటారు. ఆ విధంగా ఊర్వశి ని తీర్చి దిద్దారు.

ప్రాచీన సాహిత్యం లో లాక్షణికంగా అష్ట దశ వర్ణనలలో భాగంగా ప్రకృతి వర్ణన చేసేవారు కవులు. వాటిలో చమత్కారం ఉన్నంతగా జీవం ఉండేది కాదు. కృష్ణ శాస్త్రి ప్రకృతి తో తన్మాయత్వం చెందాలని ప్రకృతి తో తన బాధను వెళ్ళబుచ్చుకోవాలని ప్రకృతి కి మానవునికి అవినాభావ సంబంధం తెలపాలని భావించారు. ఆయన నల్లమల అడవుల సౌందర్యాన్ని చూసి ఆకులో ఆకుగా, పూవులో పూవుగా, కొమ్మలో కొమ్మగా ప్రకృతి తో తన్మాయత్వం చెందారు.

కృష్ణ శాస్త్రి కవికి ఉండవలసిన లక్షణాలను వివరించారు. కవి ఎప్పుడూ నిత్యప థి కుడిలాగా ఉండాలి. అతనికి గల కాలజ్ఞానం వల్ల మారుతున్న లోకంతో అత్యంత సన్నిహిత సంబంధం ఏర్పడుతుంది. ఆ జీవ జగత్తును పరిశీలించి దానిలో నుండి జీవాన్ని తీసుకుని తనలో నింపుకోక పోతే కవి కవితను సృష్టించలేడు. మట్టి బొమ్మలను చేసి వూరుకుంటాడు. కాబట్టి అతను ప్రకృతి, పరిసరాలు, చదువు సంస్కృతి తో కలిసి వ్యక్తిత్వం గల మనిషి గా తయారవుతాడు.

సామాజిక దృక్పథం:

కృష్ణ శాస్త్రి సమాజాన్ని పట్టించుకోలేదనే ఒక అపవాదు వుంది. అయితే వాస్తవం లో తన జీవితం లోనూ, కవిత్వం లోనూ సమాజాభివృద్ధి కోసం పాటుపడ్డారు. బ్రహ్మ సమాజ ప్రభావంతో హరిజన బాలురకు సేవ చేశారు. వారి అభివృద్ధి ని కాంక్షించారు. కవిత్వం లో హరిజనులు, శ్రామికుల మీద గీతాలను రాశారు. కరువు కాటకాలకు స్పందించి రచనలు చేశారు. సంఘ సంస్కరణలు కొన్ని స్వయంగా అమలు జరిపారు.

కృష్ణ శాస్త్రి ఆడంబర జీవితం ఆయన మొదటి రచనలైన కృష్ణ పక్షం, ప్రవాసం, ఊర్వశి కావ్యాలలో కనిపిస్తుంది. అది ఆయన వ్యక్తిగతమైన విషయం. రాను రాను భావ కవిత్వాన్ని ఆంధ్రదేశం అంతా తిరిగి ప్రచారం చేయడంతో కృష్ణశాస్త్రి కి సామాజిక పరిస్థితులు అవగతం అయ్యాయి. మనుష్యుల మనస్తత్వం, బానిస బ్రతుకు లోని దైన్యం, మూఢ నమ్మకాలు ఎక్కువ గా ఉండడం ఆయనకు తెలిసాయి. వాటిని తన కవిత్వంలో నిరసించారు. అస్పృశ్యతను తన కవిత్వం లో దుయ్యబట్టారు. శ్రామికుల కష్టాలకు తాను బాధ పడ్డారు. వేమనలాగే ఆయన రాసిన పద్యాలలో మూఢ నమ్మకాలను తీవ్రంగా ఖండించారు.

హిందువులకు దేవుళ్ళు ఎక్కువ అందువల్ల ఆ యా దేవుళ్లను పూజించే మనుషుల మధ్య సయోధ్య కరువైంది. వారి మధ్య కలహాలు ప్రారంభం అయ్యాయి. ఇంకా దేవుని పేరు చెప్పుకుని ప్రజలను మోసగించడం కూడా వుంది. ఇవన్నీ చూసి కృష్ణశాస్త్రి బ్రహ్మ సమాజోద్యమ ప్రచారానికి కృషి చేస్తూ మహతి వంటి రచనలు చేశారు. అందులో ఏకేశ్వరోపాసన, ప్రార్థన చేయడం ఎలా అన్నది, మతం అంటే ఏమిటీ అనే విషయాలను వివరిస్తూమనుషులంతా ఒక్కటే అని ప్రబోధించారు.

కృష్ణశాస్త్రి కాకినాడ కాలేజీ లో ఎఫ్. ఏ. చదువుతున్నప్పుడు బ్రహ్మ సమాజ బోధనలకు ఆకర్షితులయ్యారు. ఆయన అప్పుడప్పుడే రఘుపతి వేంకట రత్నం నాయుడి ఉపదేశాలను వంటపట్టించుకోనారంభించారు. ప్రార్థనా గీతాలు రచిస్తూ, పాడుతూ తీరిక వేళల్లో సంఘ సేవా కార్యక్రమాలలో పాల్గొంటూ సనాతనుల నిందలకు గురి అయ్యారు. కాలేజీ సెలవుల్లో పిఠాపురం వచ్చి పిఠాపురం మహారాజు స్థాపించిన హరిజన హాస్టల్స్ నిర్వహణలో స్వచ్ఛందంగా పాల్గొన్నారు. కృష్ణశాస్త్రి కి బాగా సన్నిహితుడైన అప్పటి హాస్టల్ విద్యార్థి బొజ్జ వెంకటరాజు తన కుమారుడికి కృష్ణశాస్త్రి అనే పేరు పెట్టారు. సాటి బ్రాహ్మణులు ఎన్ని అవమానాలకు గురి చేసినా, ఎన్ని నిందలు నిషేదాలు జారీ చేసినా కృష్ణశాస్త్రి ఎన్నడూ ఖాతరు చేయలేదు. త్రికరణ శుద్ధిగా తాను నమ్మిన విశ్వాసాన్ని, సంకల్పాల్ని విడనాడలేదు. నాన్నగారికి, పెద్దనాన్నగారికి తానే వారసుడైనా అబ్దికాలు పెట్టడం పదహారోయేటనుండే విరమించారు. ఆయనను బ్రాహ్మణ సంఘం కులం నుండి వెలివేసినా లెక్క చేయలేదు. బ్రహ్మ మతం నిర్దేశించిన సామాజిక విప్లవానికి ఆయన అనాడే పూనుకున్నారు..

కృష్ణశాస్త్రి ఇంటిలో వున్నది ఒక్కటేభోజనాల బల్ల అన్ని వర్ణాలకు చెందిన అతిథులు దాని మీదే భోజనం చేయాలి. శ్రీరంగం నారాయణ బాబు

తరువాత హైదరాబాద్ మకాంలో కవి ఆలూరి బైరాగి ఆయనింట నిరంతర అతిధి. ముద్దుకృష్ణ చివరి రోజుల్లో కొన్నేళ్ళ పాటు కృష్ణశాస్త్రి అతిధి అయ్యారు. కృష్ణశాస్త్రి ఒక గేయంలో మనుషులంతా ఒక్కటే అన్నారు. ద్వేషాలు, రోషాలు మతం తెస్తే ఆ మతం వద్దు. గాంధీ జీవితమే మతం. అదే లోకానికి హితం. హిందువులు, ముస్లిం లు అందరూ మానవులే అందరూ సోదరులే అన్నారు. ఈ విధంగా కృష్ణశాస్త్రి కవిత్వంలోనే కాక జీవితం లో కూడా పరిజనులు కూడా మనుషులే అని వారికి సన్నిహితంగా మెలిగారు. కృష్ణశాస్త్రి శ్రామికుల అభివృద్ధి కి తోడ్పాడాలి అంటూ, తానూ స్వయంగా అటువంటి రచనలు చేశారు.

1941 లో స్టూడెంట్స్ ఫెడరేషన్ ఆధ్వర్యంలో విద్యార్థి మహాసభ జరిగింది. కృష్ణశాస్త్రి నిర్వాహకుల కోరిక మీద ఆకాశము నొసట పాడుచు అరుణారుణ తార అంటూ ఎర్రజెండాను కీర్తించారు. దోపిడి కి దైన్యానికి నిలయమైన ఏకాకి నిశిదిని చీల్చుకుని వచ్చే తరుణ కాంతిధార ఎర్రజెండాను యువప తాక గా, జయ ప తాక గా తల చారు. కృష్ణశాస్త్రి హాలికుడు, రిక్షావాలా, బూట్ పాలిష్ ల మీద కూడా రచనలు చేశారు. అందులో వారి సమస్యలు, వాటికి పరిష్కారాలు చెప్పలేదు. వారిలోని శ్రమ జీవన సౌందర్యాన్ని చూపారు.

ఆనాడు భారతదేశం బ్రిటిష్ వారి పాలనలో బానిస బ్రతుకు బ్రతుకుతోంది. భారతదేశ స్వేచ్ఛ కోసం చాలామంది నడుం బిగించారు. ఆనాటి కవులు స్వాతంత్ర్య పోరాటానికి ప్రజలను ఉత్సాహ పరుస్తూ ప్రబోధ గీతాలను రాశారు. కృష్ణశాస్త్రి కూడా అటువంటి గీత రచన జరగాలి అంటూ స్వయంగా తానూ ఆ రచనలు చేశారు.

సంఘ సంస్కర్త అయిన కందుకూరి వీరేశలింగం పంతులు గురించి చెబుతూ, ఆ రచన చదివి ప్రజలు ఉత్సాహ పూరితులు కావాలని కృష్ణశాస్త్రి ఆశించారు. ఆ వ్యాసంలో కృష్ణశాస్త్రి కందుకూరి వీరేశలింగం పంతులు వ్యక్తిత్వం ఎలాంటిదో చూపారు. ఆయనలో స్త్రీ పురుష ప్రకృతులు రెండూ ఉన్నాయి. అదే ఆయనను గొప్ప సంఘ సంస్కర్తగా నిలబెట్టాయి అన్నారు. ఉద్యమాలన్నీ అయనలోనే ఉన్నాయి అంటూ, ఆయన చేసిన వితంతు వివాహాలను పేర్కొన్నారు. ఆనాటి వివాహ వ్యవస్థ లోని లోపాలను కృష్ణశాస్త్రి నిరసించారు. పెండ్లి పెద్దలకు కుండలాలు వుంటాయి. పించన్నయ్యగారి పెత్తనంతో వరుడు శకట రేఫం వధువు అరసున్నగా పెండ్లి జరుగుతుంది. ఆనాడు బాలికలను ముసలి వాళ్ళకు ఇచ్చి వివాహం జరిపించడం ఇంకా ఆచారంగా మారింది. ఆ ముసలి వాళ్ళు చనిపోతే చిన్నప్పుడే బాలికలు విధవలుగా మారుతారు. ఇంక వారికి జీవితమే ఉండదు. కాబట్టి ఆ వివాహ వ్యవస్థను కృష్ణశాస్త్రి ఎదిరించారు.

సాంస్కృతిక దృక్పథం:

కృష్ణశాస్త్రి పుట్టి పెరిగింది పల్లెలో. ఆయన ఉద్యోగానికి పట్టణానికి వచ్చారు. ఆ పట్టణ వాతావరణంలో ఇమడలేక తాను పుట్టి పెరిగిన పల్లెను గుర్తు తెచ్చుకుంటూ చివరి కాలం గడిపారు. ఆయన రచనలలో కూడా ఆ ప్రభావం ఎక్కువగా కనబడుతుంది. ఆయన సాంస్కృతిక దృక్పథంలో గత స్మృతుల విచారమే అధికంగా వుంది. అంతకు మించి సమకాలీన సమాజంలో ఆచార వ్యవహారాల ఆవశ్యకత, పల్లీయ జనాల జీవన విధానంలోని లోటుపాట్లు

కనబడవు. కృష్ణశాస్త్రి పాత ఆచార వ్యవహారాలను కాపాడాలని అన్నారు. ఆయన తన రచనలలో వాటిని చూపించారు. ఏరు వాకకు పాట, పసుపు కుంకం, మంగళ హారతి ఇవ్వడం చెప్పారు. ఏరు వాకమ్మకు మబ్బుటెండ కావాలి. కాపు కర్రుచుకుని గట్టున నిలిచి ఉంటే, కొడుకు దున్నుతుంటే, పాలేరు పండించుకోవాలి. ఏరు వాకమ్మను గరిశెలందు కొత్త సిరులు నిండాలి, నట్టింటమహాలక్ష్మి నడవాలి అని కోరాలి అంటూ పాట పాడతారు.తరువాత కొబ్బరికాయ కొట్టి, పసుపు కుంకం రాస్తారు. అది పల్లెలో వర్షాకాలం ప్రారంభంలో కనిపించే ఆచారం.

కృష్ణశాస్త్రి కి తెలుగు ప్రజలన్న, తెలుగు పల్లెపట్టు లన్న చాలా ఇష్టం. రాను రాను అవి పట్టణ వాసపు పోకడలు అంటుకొని మారిపోతూ ఉన్నాయి. కాబట్టే వాటికి తన రచనలలో చోటిచ్చారు. కృష్ణశాస్త్రి తన ఊరైన చంద్రంపాలెం గురించి చెప్పుకుంటూ చివరగా పంచదార ఫ్యాక్టరీ, బస్సు, టూరింగ్ సినిమా డేరా వచ్చి ఊరు మారిపోయిందని బాధపడ్డారు.

గ్రామంలో జరిగే మోసాలను కూడా ఒక శ్రవ్య నాటికలో చూపించారు. గ్రామ పెద్ద కొండయ్య ఆ ఊరిలోని వీరమ్మ అందానికి మోజు పడ్డాడు. ఆమె అతని పాలేరు గోపయ్యను ప్రేమించింది. గోపయ్యను పని మీద ప్రక్క ఊరికి పంపించి వీరమ్మను లొంగదీసుకున్నాడు. ఆమె చనిపోయిన తర్వాత గ్రామ దేవతగా పూజ లందుకుంది. కృష్ణశాస్త్రి పల్లెలలో అందాలే కాక క్రూరత్వం కూడా ఉంటుందని గుర్తించారు. కృష్ణశాస్త్రి కి భక్తి లేదు అని కొందరు విమర్శకులు భావించారు. కాని రచనలు చూస్తే దానిని నమ్మడానికి వీలులేనట్లుగా ఉంటుంది. ఆయనకు తెలిసిన ఒక అమ్మాయి తమిళ తిరుప్పావై ను పాడేది. దానికి ముగ్ధుడై తెలుగు లో దానిని అనువదించారు. ఆ తిరుప్పావు గేయాలను ఆయన కూతురు సీత పాడేది. ఆమెను ముద్దుగా ఆండాళ్ళు అని పిలిచేవారు. ఆమె పద్దెనిమిది ఏండ్లకే జబ్బు చేసి చనిపోయింది. ఆమె స్మృతి చిహ్నంగా శ్రీ ఆండాళ్ళు కళ్యాణం అనే శ్రవ్య నాటికను రాశారు. విగ్రహారాధనను ఖండించారు. శిధిలాలయంలో శివుడు లెడు. ప్రాంగణంలో గంట లేదు.

దివ్యశంఖం గొంతు తెరవలేదు. చిత్ర చిత్రమైన పూలన్నీ ఊరినిండా పూచాయి.శిధిలాలయంలో శిలకు ఎదురుగా కునికే పూజారికి ఒకటైనా పూవు లేదు. శిధిలాలయంలో శిలను సందిట పట్టుకుని పూజారి పొంచి వున్నాడు అంటూ భగవంతుని పేరు చెప్పి పూజారి డబ్బు దోచుకుంటాడని కృష్ణశాస్త్రి చెప్పారు. విగ్రహారాధన నిరసన బ్రహ్మ సమాజంలో ఒక సూత్రం. కృష్ణశాస్త్రి తన వేమన పద్యాలలో మతాన్ని ఖండించారు. సిలువ గుండెపైన, నెలవంక తలపైన, మనస్సులో ప్రణవ మంత్రం వున్నా మతం లేని వాడి మనుగడయే మతం. మతం అనేది మనిషి ఏర్పరచుకున్నది. అందులో భేదం పాటించవద్దు అని అంటారు.

ఆధార గ్రంధాలు:

- ఎన్. నిర్మలాదేవి (1991) దేవులపల్లి కృష్ణశాస్త్రి సాహిత్యావలోకనం. సుధాంశు ప్రచురణలు, హైదరాబాద్.
- ఆవంత్స సోమసుందర్ (1981) కృష్ణశాస్త్రి కవితాతత్వం. విశాలాంధ్ర

ప్రచురణలు, హైదరాబాద్.

- జి. చెన్నయ్య (1981) కృష్ణశాస్త్రి జీవితం, సాహిత్యం. సమతా పబ్లికేషన్స్, చిత్తూరు.
- జయప్రభ (1988) భావకవిత్వంలో శ్రీ. చైతన్య - తేజ పబ్లికేషన్స్, హైదరాబాద్.

Email: sharvaniputchala@gmail.com

Mobile: 9848261522

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 75–82

भारत के राजकोषीय नीति की व्यावहार्यता
Feasibility of Fiscal Policy of India

डॉ. एस. पी. भारद्वाज
प्राध्यापक - अर्थशास्त्र, भास. एम.एम.आर. पी.जी. महाविद्यालय चांपा, जिला जांजगीर चांपा (छ.ग.)

विश्व में शासन प्रणालियाँ किसी भी तरह का हो जैसे अध्यक्षात्मक, संसदात्मक, राजतंत्र, तानाशाही वर्तमान में सभी प्रणालियाँ संवैधानिक परंपरा या संविधान के अधीन होते हैं। जब बात भारत की आती है तब यह देश लम्बी गुलामी के बाद 15 अगस्त 1947 को आजादी की सांस ली, और 26 जनवरी 1950 को संविधान लागू हुआ। तब स्वतंत्र सरकार द्वारा अपने आर्थिक नीतियों के तहत् राजकोशीय नीतियों का सहारा लिया गया। आर्थर स्मिथिज के शब्दो में राजकोशीय नीति वह नीति है जिसके अंतर्गत सरकार अपने व्यय एवं राजस्व कार्यक्रमों का उपयोग करके राश्ट्रीय आय, उत्पादन तथा रोजगार पर वांछनीय प्रभाव डालने की कोशिश करती है तथा अवांछनीय प्रभाव से बचने का प्रयास किया जाता है। इस तरह राजकोशीय नीति के तहत सरकार के आय, व्यय एवं ऋण के कार्यक्रम आते हैं जिसके माध्यम से अर्थव्यवस्था में आर्थिक विकास, पूर्ण रोजगार एवं आर्थिक स्थायित्व को प्राप्त किया जाता है।

राजकोशीय नीति के संबंध में परम्परागत अर्थशास्त्री (एडम स्मिथ, केने, जे.बी. से आदि) न्यूनतम सरकारी हस्तक्षेप के साथ संतुलित बजट के पक्षधर थे, वहीं आधुनिक अर्थशास्त्री प्रो. कीन्स, ए.पी. लर्नर आदि ने कार्यात्मक वित्त का समर्थन किया। कीन्स का वृहद् अर्थशास्त्र एवं आधुनिक राजकोशीय नीति के विकास पर महत्वपूर्ण योगदान है। राजकोशीय नीतियों का क्रियान्वयन उसके प्रमुख उपकरण सार्वजनिक व्यय, करारोपण, सार्वजनिक आय तथा हिनार्थ प्रबंधन के द्वारा की जाती है। बजट नीति में इन उपकरणों का समावेश रहता है। विकसित तथा विकासशील देशों में इस नीति के उद्देश्य अलग–अलग है। जहाँ विकसित देशों में इसका मुख्य उद्देश्य सतत् आर्थिक विकास, आर्थिक स्थिरता तथा पूर्ण रोजगार की प्राप्ति है वहीं विकासशील देशों में आर्थिक विकास को बढ़ावा देना, मूल्य स्थिरता, बुनियादी ढाँचे का विकास, गरीबी एवं आय की असमानता को कम करना है। भारत के इस नीति का उद्देश्य आर्थिक विकास एवं मूल्य स्थिरता, आय एवं सम्पत्ति की असमानता में कमी, भुगतान असमानता को दूर करना एवं सामाजिक कल्याण हैं। यह शोध आलेख भारत की राजकोशीय नीतियों के क्रियान्वयन अर्थात उसकी व्यावहार्यता पर आधरित है जिसमें स्वतंत्रता से लेकर अब तक 2025–26 तक के राजकोशीय नीतियों पर समीक्षात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। शोधपत्र द्वितीयक समंक पर आधारित है। आकड़ों में वर्शानुसार ''अनुपात एवं वास्तविक'' में कुछ अंतर हो सकता है। राजकोशीय नीति का

क्षेत्र वि ाल है जिसे इस अध्ययन में सार रूप में समझने का प्रयास किया गया है।

राजकोशीय नीति के उपकरण :-

राजकोशीय नीति के प्रमुख बिन्दू इनका उपकरण (यंत्र) है जिसके माध्यम से सरकार मजबूत आर्थिक लक्ष्य को प्राप्त करता है। राजकोशीय उपकरण के बगैर दे ा की मजबूत आर्थिक स्थिति की कल्पना नहीं की जा सकती। इस संदर्भ में राजकोशीय नीति के प्रमुख उपकरण निम्नलिखित है।

(1) सार्वजनिक व्यय (2) कराधान

(3) सार्वजनिक ऋण (4) हिनार्थ प्रबंधन

भारत सरकार के राजकोशीय नीति की व्यावहार्यता :-

सरकार द्वारा विविध आर्थिक उद्दे यों को प्राप्त करने के लिए राजकोशीय उपकरणों का उपयोग किया जाता है। जब राजकोशीय नीतियों का बजट द्वारा अनुप्रयोग किया जाता है तब व्यावहार्यता की स्थिति उत्पन्न होती है।

भारत सरकार के राजकोशीय नीतियों के क्रियान्वयन को बजट द्वारा समझा जा सकता है बजट से हमें प्राप्तियाँ, व्यय तथा ऋण की जानकारी मिल जाती है। भारत में आर्थिक विकास के कार्यक्रमों को पंचवर्शीय योजना के माध्यम से प्राप्त करने का प्रयास किया गया है। अब तक दे ा में 12 पंचवर्शीय योजना 1951 से 2017 तक लागू की गई। 2014 में योजना आयोग को समाप्त कर 01 जनवरी 2015 को नीति आयोग का गठन कर योजनाएं संचालित है।

प्रथम पंचवर्शीय योजना 1951–56 में आजादी के बाद दे ा का पुर्ननिर्माण करना था इसमें कृशि को प्राथमिकता दी गई। द्वितीय योजना में उद्योग को, तृतीय 1961–1966 में पुनः कृशि। सन् 1962 में भारत–चीन युद्ध के चलते रक्षा व्यय को बढ़ाया। चौथी योजना 1969–74 इंदिरा गाँधी की सरकार द्वारा 14 बैंको का राश्ट्रीयकरण किया गया इसी बीच 1971 में भारत–पाक युद्ध हुआ और बांग्लादे ा आजाद हुआ। 1989–91 आर्थिक अस्थिरता का दौर था, जिसके चलते 1991 में नई आर्थिक सुधार की नीति अपनाई गई जिसमें निजी क्षेत्र को बढ़ावा, उदारीकरण तथा वि व व्यापीकरण को बल मिला। आज दे ा खुलेपन की राह पर चल रही है, जिससे निजी क्षेत्र को बढ़ावा मिल रहा है। अब तक के सरकार के राजकोशीय नीतियों को निम्नानुसार अलग–अलग तालिका के द्वारा समझने का प्रयास करेंगे।

तालिका क्र. 01

विभिन्न योजनाओं में विकास दर (GDP **का % में**)

योजना	कार्यकाल	लक्ष्य	प्राप्ति	योजना का प्रमुख उद्दे य
I	1951-1956	2.1	3.6	विभाजन प चात अर्थव्यवस्था का पुर्ननिर्माण
II	1956-1961	4.5	4.27	तेजी से औद्योगीकरण
III	1961-1966	5.6	2.4	खाद्य उत्पादन में आत्मनिर्भर
IV	1969-1974	5.7	3.3	आत्मनिर्भर एवं स्थिरता के साथ विकास
V	1974-1978	4.4	4.8	गरीबी उन्मूलन एवं न्याय
VI	1980-1985	5.0	6.1	जनसंख्या नियंत्रण, परिवार नियोजन

VII	1985-1990	5.0	3.7	सामाजिक न्याय के साथ उत्पादकता बढ़ाना
VIII	1992-1997	5.6	6.8	जनसंख्या, गरीबी, बेरोजगारी में सुधार
IX	1997-2002	7.1	6.8	नवीकरणीय ऊर्जा क्षेत्र में मानव संसाधन का विकास
X	2002-2007	8.0	7.6	विकास प्राप्ति एवं गरीबी दूर करना
XI	2007-2012	9.0	8.0	तीव्र और समावे ाी विकास
XII	2012-2017	8.0	7.0	समावे ाी और धारणीय विकास

कोई भी स्थिर सरकार अपने दे ा के जनता को खु ाहाल देखना चाहती है यही वजह है कि भारत सरकार द्वारा विभिन्न योजनाओं में लक्ष्य निर्धारित कर उसे प्राप्त करने का प्रयास किया। ऊपर के विवरण से स्पश्ट है कि सरकार के लक्ष्य अनुरूप लगभग विकास दर की प्राप्ति हुई है। प्रथम, द्वितीय, चौथी, छठवी, आठवी योजना में लक्ष्य से अधिक विकास दर की प्राप्ति हुई, भोश योजनाओं में कमोवे ाी अन्तर है। योजना के उद्दे य के अनुरूप राजकोशीय नीति का संचालन करना होता है। अतः विभिन्न योजनाओं में अलग–अलग उद्दे य रखे गये। कुल मिलाकर दे ा विभाजन अर्थात् स्वतंत्रता प चात् दे ा की सरकार अर्थव्यवस्था की पुर्ननिर्माण एवं आर्थिक स्थिरता व विकास के साथ सामाजिक न्याय, गरीबी दूर करना, तीव्र समावे ाी और धारणीय विकास में लगी हुई है और तेजी से बढ़ती हुई अर्थव्यवस्था की ओर अग्रसर है।

तालिका क्र. 02

भारत सरकार की प्राप्तियाँ एवं व्यय

वर्श	प्राप्तियाँ	व्यय	आय–व्यय का अन्तर (करोड़ रूपये में)	आय–व्यय का अन्तर (प्रति ात में)
1990-91	54954	98272	-43318	78.8%
2001-02	201306	362310	-151004	79.9%
2007-08	486422	680521	-194099	39.9%
2020-21	2020926	2630145	-609219	30.1%
2022-23	2283713	3944909	-1661196	72.4%
2023-24	2716281	4503097	-1786816	65.7%
2024-25	3207200	4820512	-1613312	50.3%
2025-26 (अनुमान)	3496000	5065000	-1569000	44.8%

स्त्रोत – केन्द्रीय बजट राश्ट्रीय पोर्टल।

केन्द्र सरकार को प्राप्तियाँ मुख्य रूप से कर राजस्व और गैर कर राजस्व से आती है। इसके अलावा पूँजीगत प्राप्तियाँ भी होती है। इसी तरह केन्द्र योजना एवं गैर योजनागत मद पर व्यय करती है। अर्थात् रक्षा, ि ाक्षा, स्वास्थ्य, बुनियादी ढांचा, सामाजिक कल्याण, अनुदान, ब्याज भुगतान, सब्सिडी, राज्यों का हस्तांतरण आदि क्षेत्रों में व्यय करती है। तालिका से स्पश्ट है कि विभिन्न वर्शो में प्राप्तियाँ एवं व्यय में अंतर है। प्राप्तियों में लगातार बढ़ौत्तरी हो रही है साथ ही व्यय में भी। चूंकि सरकार को विकास एवं आव यक क्षेत्रों में व्यय करने होते है।

अतः सरकार की व्यय में लगातार वृद्धि हुई है। इन विभिन्न वर्शो में आय–व्यय का अंतर न्यूनतम 30% से अधितम 79.9% रहा है। इन अधिक व्यय की पूर्ति सरकार ऋण अथवा हिनार्थ प्रबंधन से करती है।

तालिका क्र. 03 (अ)

भारत सरकार का सार्वजनिक ऋण

वर्श	GDP का % में
1990-91	70.0
2005-06	81.0
2010-11	66.4
2018-19	75.0
2020-21	88.5
2021-22	84.0
2022-23	81.0
2023-24	82.0
2024-25	82.4 (अनुमान)

स्त्रोत :– संस्कृति–सार्वजनिक ऋण की समस्या।

तालिका क्र. 03 (ब)

भारत सरकार का सार्वजनिक ऋण (लाख करोड़ रूपये में)

वर्श	आंतरिक ऋण	बाह्य ऋण	कुल ऋण
2019-20	83.19	29.9	113.09
2020-21	102.98	38.8	141.78
2021-22	119.01	43.93	162.94
2022-23	135.66	49.31	184.97
मार्च 2024	111.49	57.49	168.72
मार्च 2025	112.87	53.70	166.57
2025-26 वित्तीय वर्श	-	-	14.82

विकास ील दे ा की सरकार को राजकोशीय घाटे की पूर्ति के लिए ऋण का सहारा लेना आव यक हो जाता है क्योंकि सरकार को न केवल विकास मद पर खर्च करने होते है अपितु रक्षा एवं सामाजिक कल्याण, प्रतिकुल भुगतान संतुलन के क्षेत्रों में भी भारी मात्रा में रा ि ा खर्च करने होते हैं। तालिका क्र. 03 (अ) विभिन्न वर्शो में केन्द्रीय सरकार के ऋण को जी.डी.पी. के प्रति ात के रूप में बताया गया है। केन्द्रीय सरकार का ऋण 1990–91 में 70.0%, 2010–11 में 66.4%, 2020–21 में 88.5% तथा 2024–25 में 82.4% अनुमानित है।

इसी तरह सरकार के सार्वजनिक ऋण को रूपये में बताया गया है। तालिका अनुसार यहां 2019–20 में 113.09 लाख करोड़ रू., 2022–23 में 184.97 लाख करोड़ रू. एवं मार्च 2025 में सरकार का कुल ऋण 166.57 लाख करोड़ रू. थी। सरकार द्वारा वित्तीय वर्श 2025–26 में 14.82 लाख करोड़ रू. ऋण लेने का अनुमान है।

वैसे सरकार द्वारा 1951 से ही ऋण लिया जाता रहा है। वह ऋण अनाज आयात के लिए था। अर्थ ाास्त्रियों ने अनुमान लगाया है कि ऋण से सकल घरेलू उत्पाद का 60% से अधिक नहीं होना चाहिए, जो इस सीमा से अधिक है। अंतर्राश्ट्रीय मुद्रा कोश के रिपोर्ट के अनुसार भारत का सरकारी खर्च 2028 तक जी.डी.पी. का 100% पहुंच सकता है। रिजर्व बैंक ने अनुमान लगाया है कि सरकार को कर्ज से फिलहाल कोई खतरा नहीं है। एक अनुमान के अनुसार 1947 से 2014 तक पूर्ववर्ती सरकार द्वारा जितना ऋण लिया गया है उससे 05 गुना अधिक वर्तमान सरकार द्वारा 2014 से 2023 तक में लिया गया है। रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया के जून 2025 की फाइनें ियल स्टेबिलिटी रिपोर्ट के अनुसार हर भारतीय पर 4.8 लाख रूपये का कर्ज है। जो भी हो सार्वजनिक ऋण की मात्रा को कम किया जाना आव यक है।

तालिका क्र. 04

घाटे की वित्त व्यवस्था (हिनार्थ प्रबंधन) (करोड़ रूपये में)

योजना	वर्श	अनुमान	वास्तविक
I	1951-1956	290	420
II	1956-1961	1200	1450
III	1961-1966	550	1150
IV	1969-1974	850	2625
V	1974-1978	-	1354
VI	1980-1985	5000	5000 से अधिक
VII	1985-1990	14000	25034
-	1990-1991	7206	11347
31 मार्च 2022	WMA सीमा	-	51560
2025–26	WMA सीमा	-	150000

प्राचीन काल में हिनार्थ प्रबंधन का कोई महत्व नहीं था। 1930 के मंदी के बाद विकसित दे ाों में इसका प्रयोग एवं 1937 में कींस के विचारधारा से इसको ज्यादा बल मिला। भारत में इसका उपयोग प्रथम पंचवर्शीय योजना से ही प्रारंभ हो गया था। तालिका क्र. 03 से स्पश्ट है कि सरकार द्वारा प्रत्येक पंचवर्शीय योजना में हिनार्थ प्रबंधन का सहारा लिया गया। प्रथम योजना में 420 करोड़, पांचवी में 1354 करोड़ और सातवी योजना में 25034 करोड़ का हिनार्थ प्रबंध किया गया। प्रथम योजना में इससे मूल्यों में कोई वृद्धि नही हुई लेकिन द्वितीय योजना से मूल्यों में वृद्धि (मुद्रा स्फीति) दिखाई देने लगी। चतुर्थ योजना के समय 1965 तथा 1971 में भारत–पाक युद्ध के चलते भी मुद्रा स्फीति में व द्धि हुई। विदित हो 31 मार्च 1997 से हिनार्थ प्रबंधन की नीति को समाप्त कर अर्थोपाय अग्रिम WMA (Ways and means Advance) का सहारा लिया जा रहा है। यह रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया द्वारा केन्द्र सरकार को दी जाने वाली एक अस्थाई एवं अल्पकालिक ऋण है, जो सरकार की प्राप्तियों और भुगतान के बीच नकदी प्रवाह में अस्थायी अंतर को पूरा करने के लिये दिया जाता है। अब तक के आर्थिक आकड़े स्पश्ट करते हैं कि हिनार्थ प्रबंधन से मुद्रा स्फीति को बढ़ावा मिला है। इसे एक स्थायी ऋण नीति के रूप में नहीं अपनाया जाना चाहिए और अर्थोपाय अग्रिम की सीमा भी अधिक न हो। सन् 2025–26 में अर्थोपाय

अग्रिम की सीमा 150000 करोड़ रूपये रखी गई है।

तालिका क्र. 05

राजकोषीय घाटा (GDP का % में)

वर्श	प्रति ात	रिमार्क
1951-52	-	92 लाख रू. का अधि ोश
1965-66	-	395 करोड़
1970-71	4.8	1579 करोड़
1980-81	6.0	-
1990-91	8.9	-
2000-01	5.1	-
2009-10	5.2	-
2020-21	3.5	-
2021-22	4.4	-
2022-23	6.4	16.61 लाख करोड़
2023-24	5.9	-
2024-25	4.8	-
2025-26	4.4	-

स्त्रोत :– लेखा महानियंत्रक और बजट डाटाबेस (2021–22 से 2025–26 भोश अन्य से)

राजकोशीय नीति की कमियों को समझने के लिए राजकोशीय घाटा को जानना आव यक है। राजकोशीय घाटा का अर्थ सरकार के कुल खर्च और कुल प्राप्तियों (उधार को छोड़कर) के बीच का अन्तर है। जब सरकार अपनी आय से अधिक व्यय करती है तब उसे राजकोशीय घाटा कहा जाता है। तालिका क्र. 04 से स्पश्ट है कि 1951 में सरकार का राजकोशीय अधि ोश 92 लाख का था जो सरकार की विवके ीलता, मूल्य नियंत्रण, प्र ाासनिक खर्चो में कटौती आदि के कारण था लेकिन आगे के वर्शो में राजकोशीय घाटा में लगातार वृद्धि हुई है। 1965–66 में राजकोशीय घाटा 395 करोड़ था। भोश वर्शो का GDP का प्रति ात में द ार्शाया गया है।

वर्श 1990–91 में अर्थव्यवस्था डॉवाडोल होने के कारण घाटा 8.91% था वहीं 2024–25 में 4.8 तथा 2025–26 में 4.4% अनुमानित है। यह राजकोशीय घाटा कर संग्रह में धीमी वृद्धि, प्रतिकूल भुगतान संतुलन, रक्षा तथा सब्सिडी में अधिक व्यय आदि के कारण है। विदित हो दे ा में राजकोशीय घाटे का सुरक्षित स्तर सकल घरेलू उत्पाद का 3% तक सीमित रखने का प्रावधान किया गया है। इस अर्थ में घाटा को लगभग 1.5% और कम करने होंगे।

निश्कर्श एवं सुझाव :-

जैसे ही दे ा 15 अगस्त 1947 को अपने स्वतंत्र अस्तित्व में आया, जर्जर हुई दे ा की अर्थव्यवस्था को आर्थिक आयोजनों (पंचवर्शीय योजना) के द्वारा सवारने में लग गये। सरकार द्वारा राजकोशीय नीति को बजट नीति द्वारा अमली जामा पहनाया गया। बजट में प्राप्तियाँ, व्यय, ऋण के अलावा हिनार्थ प्रबंधन के आंकड़े हैं।

प्रथम योजना 1951 से ही सरकार द्वारा विकास योजनाओं, सामाजिक कल्याण अधोसंरचना, अनुदान आदि पर भारी रा ि ा खर्च की गई। योजनाओं में रखे गये लक्ष्य को कमोवे ा प्राप्त किया गया, लेकिन इससे राजकोशीय दबाव में वृद्धि हुई जिससे व्यय की मात्रा आय से अधिक हो गये जैसे 1990–91 में 78.8% तो 2024–25 में 50.3% अधिक खर्च हुए। राजकोशीय घाटा 1951–52 को छोड़कर 1970–71 में जी.डी.पी. का 4.8%, 1990–91 में 8.9% तथा 2025–26 में 4.4% अनुमानित है। अतः इन खर्चो एवं घाटो की पूर्ति के लिए सरकार को आन्तरिक एवं बाह्य दोनों तरह के ऋणों का सहरा लेना पड़ा। यह ऋण वर्श 2019–20, 2022–23 तथा 2024–25 में क्रम ाः कुल ऋण 113.09, 184.79 तथा 2025 में 166.57 लाख करोड़ रू. थी। अकेले वित्तीय वर्श 2025–26 में 14.82 लाख करोड़ कर्ज लेने की बात कही गई है। ऋण के साथ–साथ केन्द्रीय सरकार द्वारा हिनार्थ प्रबंधन का भी सहारा लिया गया जो प्रथम, चतुर्थ एवं सातवी योजना में क्रम ाः 420, 2625 तथा 25034 करोड़ रू. थी। बाद में हिनार्थ प्रबंधन को 31 मार्च 1997 को समाप्त कर अर्थोपाय योजना लागू की गई जो रिजर्व बैंक द्वारा दी जाने वाली एक अल्पकालीन ऋण है। अर्थोपाय ऋण सीमा 2025–26 के लिए 1.50 लाख करोड़ निर्धारित है। ऋण एवं हिनार्थ प्रबंधन दोनों से ही मुद्रा स्फीति में वृद्धि हुई है। इस तरह राजकोशीय प्रबंधन के क्षेत्र में सरकार के समक्ष कई चुनौतियां है जैसे – अपेक्षित विकास दर का न मिलना, राजकोशीय घाटा, ऋण तथा अर्थोपाय अग्रिम जिस कारण उत्पन्न मुद्रा स्फीति आदि। इस हेतु योजनाकारों एवं नीति निर्धारकों के समक्ष कुछ सुझाव प्रस्तुत है।

- विकास एवं सामाजिक कल्याण यद्यपि आव यक हैं तथापि अधिक व्यय पर नियंत्रण एवं संयम रखना होगा।
- व्यय के नियंत्रण से राजकोशीय घाटा पर काबू पाया जा सकता है।
- विकास दर के लक्ष्य निर्धारण में भी संयम की जरूरत है ताकि वास्तविक दर लक्ष्य के करीब अथवा अधिक हो।
- अधिक ऋण लेने से बचना चाहिए और विदे ाी ऋण तो बहुत कम लिया जाए क्योंकि आर्थिक पराधीनता राजनीतिक दासता को जन्म देती है।
- अर्थोपाय ऋण भी अन्ततः मुद्रा स्फीति को प्रभावित करता है। अतः सरकार द्वारा इसकी मांग कम से कम हो।
- हिनार्थ प्रबंधन अथवा अर्थोपाय ऋण को स्थाई ऋण के रूप में नहीं अपनाया जाना चाहिए।

कुल मिलाकर राजकोशीय नीति की संयमित एवं प्रभावी क्रियान्वयन की सख्त आव यकता है। राजकोशीय समस्याओं के बावजूद भी आज दे ा वि व में तेजी से उभरती हुई अर्थव्यवस्था में गिना जाने लगा है वर्तमान में यह वि व की पाँचवी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है। आ ा है सरकार की अपनी प्रभावी राजकोशीय नीति के चलते सरकार का विजन 2047 तक दे ा वि व की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था होगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. वार्श्णेय जे.सी. मेक्रो अर्थ ाास्त्र 2003, कैला ा पुस्तक सदन भोपाल।
2. डॉ. रामरतन भार्मा, डॉ. ब्रम्हे आर.के., डॉ. मनीशा दुबे, भारतीय अर्थव्यवस्था 2015, छत्तीसगढ़ राज्य हिन्दी ग्रंथ अकादमी।

3. डॉ. विवेक भार्मा, प्रबंध की अर्थ ाास्त्र 2009, अर्जुन पब्लि िंग हाऊस, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली 110002
4. बी.एल. माथुर आर्थिक प्र ाासन 2006, अर्जुन पब्लि िंग हाऊस, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली 110002
5. डॉ. मामोरियां एवं जैन, भारत का आर्थिक विकास 1992 साहित्य भवन आगरा।
6. डॉ. जे.पी. मिश्रा, अर्थ ाास्त्र 2023 साहित्य भवन पब्लिके ान आगरा।
7. भारत सरकार की आर्थिक समीक्षा 2020, 2022, 2023, 2024.
8. दृश्टि – राजकोशीय घाटा और इसका प्रबंधन फरवरी 2024.
9. संस्कृति – सार्वजनिक ऋण की समस्या।
10. दैनिक समाचार पत्र हरिभूमि दैनिक भास्कर।
11. विकिपीडिया।

व्हाट्स अप/मो. 8103777476
ई–मेल spbhardwaj414@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 83-88

भारत में मानवाधिकार एवं पुलिस संगठन

डॉ. विभा शर्मा
सहायक आचार्य राजनीति विज्ञान एस.आर.के. राजकीय महाविद्यालय राजसमन्द–313324

विषय परिचय :-

मानवाधिकार वे अधिकार हैं जो प्रत्येक मनुष्य को बिना किसी भेदभाव के जन्म से ही प्राप्त होते हैं। मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 में मानवाधिकारों को परिभाषित किया गया है जो धारा 2 डी में उल्लेखित है। इसके अनुसार मानवाधिकार का अर्थ व्यक्ति के जीवन, स्वतन्त्रता समानता व गरिमा से सम्बन्धित है जो संविधान द्वारा प्रत्याभूत है या अन्तर्राष्ट्रीय करारों में वर्णित है और भारत में न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय है।

21वी सदी के भारत में विकास के नित नए आयाम स्थापित हो रहे है, जिन संस्थाओं की स्थापना मानव के अधिकारों की सुरक्षा के लिए हुई है वे ही संस्थाएं यदा–कदा मानवाधिकार उल्लंघन का हेतु भी बन जाती है। आज मानवाधिकार हनन का दायरा भी विस्तृत होता जा रहा है। ऐसी परिस्थितियों में मानवाधिकारों की रक्षा के लिए विश्व के मनीषी पुरूषों, बुद्धिजीवियों, चिन्तकों एवं संगठनों का सामने आना लाजिमी है।

उद्देश्य :-

मानवाधिकारों की प्राप्ति में पुलिस बलों की भूमिका, इसके साथ ही पुलिस संगठनों की नागरिकों के सशक्तिकरण में, मानव अधिकारों के अनुरक्षण में भूमिका को जानना समझना ही इस आलेख का मुख्य उद्देश्य है। पुलिस जैसे संगठनों द्वारा किस तरह मानवीय अधिकारों की स्थापना कर उसे अक्षुण्ण रखा जा सकता है। मानव अधिकारों की प्राप्ति समाज के अन्तिम पंक्ति के अन्तिम व्यक्ति तक हो इसके लिए क्या किया जा रहा है क्या किया सकता है एवं क्या और किया जाना चाहिए। मानव के समग्र कल्याण को किस तरह आगे बढाया जा सकता है। समय–समय पर मानवाधिकारों की स्थापना के लिए पुलिस बल के लिए वार्ताएं, नीति निर्माण एवं आमुखीकरण हेतु कार्यशालाएं एवं प्रशिक्षण इत्यादि कार्यक्रम होते रहे है। विभिन्न लेख एवं आलेखों में राष्ट्रीय व राज्य स्तर पर इससे जुडे संस्थानों के सुदृढीकरण को लेकर चर्चाएं एवं परिचर्चाएं भी होती रही है जिसका समयबद्ध परीक्षण करना समीचीन है।

नक्सलवाद, आतंकवाद उग्रवाद हिंसक प्रदर्शन मॉब लिचिंग आदि के मध्य विकास की बात करना कई बार बेमानी लगता है। मानव अधिकार से पहले मानव की सुरक्षा का मुद्धा आता है व्यक्ति की जान की सुरक्षा के बाद ही वह इससे इतर सोच सकता है। अतः इनसे निजात पाकर ही विकास को पाया जा सकता है और विकास के लिए सुरक्षा इंतजामात पहली आवश्यकता है। मानवाधिकारों की प्राप्ति मानव के समग्र विकास के बिना असम्भव है। रोटी कपडा तथा मकान की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करने के उपरान्त शिक्षा, स्वास्थ्य तथा

मानवाधिकार आदि ही मानव विकास के प्रतिमान के रूप में सामने आते हैं।

- पुलिस संगठनों के साथ मानवाधिकार के सैद्धान्तिक व व्यावहारिक पक्ष को जाना जा सके।
- पुलिस बल एवं मानवाधिकार के मध्य सह सम्बन्धों की स्थापना करना।
- कल्याणकारी राज्य में पुलिस संगठनों का मानवाधिकार की स्थापना, रक्षण एवं प्रश्रय में प्रभाव डालने वाले घटकों, दबाव समूहों एवं हित समूहों के अन्तर्सम्बन्ध और उसके परिणामों को प्राप्त करना।

उक्त बिन्दूओं को जानने समझने एवं वास्तविकता के धरातल पर परखने के लिए निम्न अध्ययनों को आधार बनाया गया है :–

- मानवाधिकार एवं संवैधानिक प्रावधान।
- पुलिस संगठन एवं मानवाधिकार।

मानवाधिकार एवं संवैधानिक प्रावधान :–

भारत की आजादी के दौरान ही यूएनओ द्वारा मानवाधिकारों की स्थापना के लिए मानवाधिकार का घोषणा पत्र दिसम्बर 1948 को जारी किया गया यही वह समय था जब भारत में भी संविधान लिखा जा रहा था। अतः मानव अधिकारों के सम्बन्ध में संविधान में प्रावधानों का होना स्वाभाविक था। संविधान के भाग तीन एवं चार मानव अधिकारों के सम्बन्ध में रखे गए हैं। जिन्हें मूल अधिकार कहा गया है।

अनुच्छेद 14 : विधि के समक्ष समानता इसमें विधि के समक्ष समानता एवं विधि के समान संरक्षण की बात कही गई है।

अनुच्छेद 15 : धर्म मूलवंश जाति लिंग या जन्म स्थान के आधार पर विभेद का प्रतिशोध का अधिकार इस अनुच्छेद में दिया गया है।

अनुच्छेद 16 : अवसर की समानता का अधिकार नागरिकों को इस अनुच्छेद में दिया गया है।

अनुच्छेद 19 : स्वातन्त्रय का अधिकार इस अनुच्छेद में सभी नागरिकों को वाक् स्वतन्त्रता, भारत के राज्य क्षेत्र में निर्बाध विचरण की स्वतन्त्रता एवं कोई भी जीविकोपार्जन करने की स्वतन्त्रता प्रदान की गई है।

अनुच्छेद 21 : प्राण एव दैहिक स्वतन्त्रता के संरक्षण का अधिकार संविधान के भाग तीन के अनुच्छेद इक्कीस में जीवन के अधिकार को मान्यता दी गई है। इसके अन्तर्गत वे सभी बातें इसमें शामिल है जो मानव के व्यक्तित्व के विकास और जीवन को जीने योग्य बनाती है। अनुच्छेद 21 का दायरा काफी विस्तृत एवं व्यापक है इसे आपातकाल में भी निलम्बित या सीमित नहीं किया जा सकता है।

उच्चतम न्यायालय द्वारा इसके सम्बन्ध में विभिन्न अवसरों एवं प्रकरणों में स्पष्ट किया गया है कि किसी व्यक्ति को उसके प्राण या दैहिक स्वतन्त्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रकिया के अनुसार ही वंचित किया जा सकता है।

मेनका गांधी बनाम भारत संघ 1978 के मामले में दिए गए निर्णय एवं उसके बाद के निर्णयों से अनुच्छेद 21 के उदार निर्वचन के कारण वह एक प्रकार से अवशिष्ट अधिकार सा बन गया है इसके फलस्वरूप निम्नलिखित अधिकारों को अनुच्छेद 21 के अन्तर्गत समाहित किया गया इसमें कहा गया है।

- विदेश भ्रमण का अधिकार।
- मानव गरिमा के साथ जीने का अधिकार।

- जीविकोपार्जन का अधिकार।
- शिक्षा पाने का अधिकार।
- आहार पाने का अधिकार।
- निशुल्क विधिक सहायता का अधिकार।
- एकान्तता का अधिकार।
- एकान्त कारावास के विरूद्ध संरक्षण का अधिकार।
- आश्रय का अधिकार।
- प्रदूषण मुक्त जल एवं वायु के उपयोग का अधिकार।
- पर्यावरण प्रदूषण के विरूद्ध संरक्षण का अधिकार।
- सार्वजनिक स्थानों पर धुम्रपान का निषेध।
- अमानवीय व्यवहार के विरूद्ध संरक्षण।
- हथकडी लगाने के विरूद्ध संरक्षण।
- पुलिस अभिरक्षा में मृत्यु के विरूद्ध संरक्षण।
- बलात्कार से पीडित महिला का अन्तरिम प्रतिकर पाने का अधिकार।

संविधान के अनुच्छेद 21 में संशोधन के द्वारा भारत के नागरिकों के लिए शिक्षा का अधिकार दिया गया है इसमें प्रारम्भिक शिक्षा को अनिवार्य एवं निशुल्क बनाया गया है।

अनुच्छेद 23 एवं 24 : इसके द्वारा भारत के नागरिकों को शोषण के विरूद्ध अधिकार प्रदान किया गया है।

अनुच्छेद 25 : इसके द्वारा भारत के नागरिकों को धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार दिया गया है।

पुलिस संगठन एवं मानवाधिकार :–

आज के समय में पुलिस एवं मानवाधिकार ऐसा विषय है जो सदैव ही चर्चा में रहता है कभी पुलिस कर्मी जो स्वयं एक मानव है उनके अधिकार के रूप में तो कभी उनके द्वारा उत्पन्न परिस्थितियों से मानव अधिकार के हनन के रूप में। इस तरह पुलिस संगठन एवं मानवाधिकार के दो पहलु है। एक जो पुलिस कर्मी है उनकी सेवा स्थिति, कार्य दशा एवं दूसरे पुलिस बल के द्वारा किए जा रहे कार्यों से मानवीय अधिकारों के हनन की स्थिति।

मानवाधिकार संगठनों, संचार माध्यमों जनता के द्वारा प्रायः मानवाधिकार हनन के आरोप लगाए जाते हैं। सोशल मिडिया एवं समाचार तन्त्रों के भारी लवाजमे से आज सुदूर किसी ढाणी गांव में हो रही छोटी सी घटना भी तुरन्त ही देशभर में फैल जाती है। यहां यह उल्लेख करना समीचीन होगा कि किसी घटना के घटित होने के कई पहलु होते है किन्तु सामने वही आता है जिसे परोसा जाता है एवं दिखाया जाता है। ऐसा भी नहीं है कि पुलिस संगठन के द्वारा सदैव ही मानवाधिकारों का उल्लंघन किया जाता है। अतः ऐसे में पुलिस संगठन जो समाज में मानव को शन्तिपूर्ण तरीके से मानवीय गरिमा के साथ जीने के अधिकार के लिए कार्यरत है उनकी कार्य परिस्थितियों को भी ध्यान में रखना होगा एवं पुलिस बल को भी अन्वेषण के दौरान ऐसे कृत्यों से बचना होगा जिससे उन पर अधिकारों के हनन का आरोप लगता हो।

स्पष्ट है कि जब तक ऐसे कारण एवं परिस्थितियां उत्पन्न नहीं हो पुलिस बलों को मानव अधिकारों के प्रति सजग एवं सचेत रहना चाहिए दूसरी ओर नागरिकों को भी समाज में शान्ति एवं सौहार्द्रपूर्ण स्थितियां के लिए अपने दायित्वों का निर्वहन करना चाहिए। पुलिस के किसी भी अन्वेषण में नागरिकों को भी अपना पूर्ण सहयोग देना चाहिए यद्यपि ये स्थिति आदर्श राज्य की द्योतक है परन्तु वास्तव में ऐसा होता नहीं है।

आन्तरिक सुरक्षा के नाम पर नागरिकों के अधिकारों पर प्रतिबन्ध लगाने का कार्य पुलिस संगठनों के द्वारा किया जाता है ऐसे में मानव अधिकार एवं पुलिस बलों के द्वारा कानूनी प्रावधानों के मध्य कार्य के बीच एक महीन रेखा है जो कब पार हो जाती है पार करने वाले को इसका पता भी नहीं चल पाता है और मानवाधिकारों का उल्लंघन हो जाता है। इसे हम इस उदाहरण से समझ सकते है। किसी भी राज्य में अभिव्यक्ति के अधिकारों के उपयोग के लिए कई साधन है जिनमें धरना प्रदर्शन हडताल आदि शामिल है। यद्यपि भारत में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा आवश्यक सेवाओं को निर्बाध रूप से संचालित रखने के लिए हडताल पर युक्तियुक्त प्रतिबन्ध सम्मिलित है। हडताल, धरना प्रदर्शन से जहां एक ओर आम नागरिकों को अपने कार्य में असुविधाओं का सामना करना पडता है एवं उनके नागरिकों के लिए सामान्य अधिकारों का उल्लंघन होता है वहीं यदि धरना प्रदर्शन पर रोक लगायी जाए तो लोकतन्त्र में इसे अभिव्यक्ति के अधिकार का हनन माना जाता है और इसी धरना प्रदर्शन में पुलिस बल के द्वारा जरा भी संयम खोया जाता है तो मानवों पर पुलिस बल द्वारा की गई कार्यवाही मानवाधिकार उल्लंघन का ठोस उदाहरण बन जाती है।

यहां हमें एक तथ्य ध्यान में रखना होगा कि पुलिस बल को धरने प्रदर्शन से निपटने के लिए कई घंटो तक ऐसे स्थानों पर भूखे प्यासे खड़े रहना होता है जिससे उनके भी मानवीय मन को ठेस पहुंचती है एवं ऐसे में प्रदर्शनकारियों के उकसाने वाली एक छोटी सी घटना मानवाधिकारों के उल्लंघन का माध्यम बन जाती हैं।

हिंसक वारदातों में संलिप्त आतंकवादियों एवं उग्रवादियों के साथ अन्वेषण के दौरान की जाने वाली कार्यवाहियों में पुलिस बलों पर मानवाधिकार उल्लंघन के जा आरोप लगाए जाते है उनमें सत्यता का अंश नही के बराबर होता है यह कई बार सामने आ चुका है। आंतकवादी जो मानवता को शर्मसार कर मानवीय अधिकारों से परे नागरिकों के प्राण तक हर लेते हैं उनसे अन्वेषण के दौरान कडाई से पूछताछ को मानवाधिकार का उल्लंघन मानना अनुचित ही है। नक्सलवादियों के द्वारा पुलिस बलों के काफिलों पर घात लगाकर हमला करने वालों के मानव अधिकारों की वार्ता करना बेमानी सा है। आदर्श स्थितियां वहा होती है जहां नागरिक अपने कर्तव्यों को समझे एवं राज्य मानव के अधिकारों को मान्यता देवे। यह कतई सम्भव नहीं है कि नक्सलवादी एवं आतंकवादी नागरिक एवं पुलिस बल पर प्राणघातक हमला करते रहे एवं पुलिस बल उनके मानवाधिकारों की सुरक्षा करे। ताजा उदाहरण की बात करे तो पुलवामा हमले के आतंकवादियों एवं साजिशकर्ताओं के साथ मानवाधिकारों की बात करना शान्तिपूर्ण राज्य की चाह रखने वाले पुलिस बलों के लिए सम्भव नहीं है।

भारतीय दण्ड संहिता 1980 में भी मानव के अधिकसरों की रक्षा के लिए कतिपय उपबन्ध उल्लेखित है। इसी तरह साक्ष्य अधिनियम 1872 में कई प्रावधान है जिनके द्वारा व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकारों की रक्षा होती है। इस तरह नागरिकों के मानव अधिकार तो सर्वविदित है किन्तु पुलिस बल जिनके कंधों पर इन अधिकारों के रक्षण का दायित्व है उनके अधिकार का क्या? एक व्यक्ति जब पुलिस के रूप में पुलिस संगठन का सदस्य बनता है तो उसके व्यक्तिगत अधिकार समाप्त नहीं हो जाते है, वह एक पुलिसकर्मी होने के साथ ही राज्य का नागरिक

भी है।

अफसोस इस बात का है कि पुलिसजनों के मानवाधिकार की बात आज तक न तो किसी मानवाधिकारों संगठन ने उठायी है, न ही किसी मानवाधिकार आयोग ने, सिर्फ पुलिस पर मानवाधिकारों के हनन के आरोप लगा देने तक ही अपना कर्तव्य पूरा मान लेने की प्रवृति देखी गई है।

नक्सल प्रभावित एवं उग्रवाद प्रभावित इलाकों में तैनात पुलिसकर्मियों को इस तरह की स्थिति का सामना अक्सर करना पडता है। इसी को ध्यान में रखकर सीमा सुरक्षा बल द्वारा डिफेंस इंस्टीट्यूट ऑफ साईकॉलोजी एण्ड एलाईड साईंसेज एवं इंस्टीट्यूट ऑफ हयुमन बिहेवियर एण्ड एलाईड साईंसेज के माध्यम से अध्ययन कराया गया जिसमें यह सामने आया कि पुलिस कर्मियों एवं सुरक्षा बलों पर बहुत अधिक कार्यभार है, उनको दिए जाने वाले अवकाश की अवधि भी कम है। परिवार एवं समाज से कई बार दूर रहने के कारण तनाव की स्थिति विकट स्वरूप धारण कर लेती है एवं मनोवैज्ञानिक दबाव से हिंसक व्यवहार का परिणाम भी देखने को मिलता है। अधिकारियों से एक निश्चित दूरी एवं अनुशासन की वजह से सदैव मानसिक तनाव बना रहता है।

पुलिसकर्मी कई बार अपनी वाजिब मांग एवं शिकायत तक को अपने उच्च अधिकारियों के समक्ष नहीं रख पाते है। ऐसी कार्य परिस्थितियों में नक्सलवाद उग्रवाद जैसी समस्याओ से निपटने एवं सदैव आपराधिक प्रवृति के लोगों के साथ सामना उन्हें अन्दर ही अन्दर तोड़ता रहता है। यदि समय रहते इस दबाव को कम नहीं किया जाता है तो यह अपने ही साथी कर्मियों, अधिकारियों के साथ हिंसक वारदातों के रूप में भी सामने आता है। अतः जहां आम नागरिक के अधिकारों को समझने एवं प्रश्रय देने की आवश्यकता है वहीं पुलिस एवं सुरक्षा बल जो पहले मानव हैं एवं बाद में पुलिस संगठन अथवा सुरक्षा बल के सदस्य है उनके भी मानवीय अधिकारों को तवज्जो देनी होगी।

उपसंहार :-

पुलिस बल से जुडे होने के नाते कार्यभार के अतिरिक्त दबाव से वे आम नागरिकों के अधिकारों का कई बार हनन कर जाते है चुंकि मानव अधिकार एवं कर्तव्यों के परिपालन के बीच में एक महीन रेखा है। इसी तरह मानसिक दबाव के चलते कई बार वे स्वयं के अधिकारों से भी वंचित हो जाते हैं। मानवाधिकार संगठनों की भूमिका एवं सक्रियता से पुलिस बलों को कार्य करने कई बार अतिरक्ति सजगत रखनी होती है बावजूद इसके कई बार पुलिस हिरासत में मौत होना, पूछताछ के दौरान थर्ड डिग्री के इस्तेमाल जैसे आरोप लगते है जिनमें कभी सच्चाई तो कभी मानवाधिकार संगठनों द्वारा दबाव की राजनीति होती है।

मानवाधिकारों की वर्तमान स्थिति में देखे तो यह सामने आया है कि भारत में मानव अधिकारों को लागू करने के क्षेत्र में पर्याप्त कार्य हुआ है, पुलिस बल एवं सशस्त्र बलों को दिए गए कुछ अधिकार एवं कानूनों की आलोचना के बावजूद यह कहा जा सकता है कि भारत में कानून और न्याय प्रणाली मानवाधिकार की मांग के अनुरूप है।

इन सभी पहलुओ को समग्र एवं समेकित दृष्टि से देखने की जरूरत है। हमें पुलिस बल को भी समय समय पर अवकाश, मनोरंजन, अच्छी कार्यदशाएं, बेहतर वेतन भत्ते समय पर पदोन्नति जैसी सुविधाएं देनी होगी वहीं नागरिकों में भी नागरिक कर्तव्यों का भान हो यह सुनिश्चित करना होगा तभी कल्याण कारी राज्य में आदर्श मानवाधिकरों की स्थापना हो सकेगी।

सन्दर्भ :-

1. मीणा डॉ. आलोक कुमार, डॉ. मीनाक्षी (2014) मानवाधिकार : दशा एवं दिशा, गौतम बुक कम्पनी, जयपुर।
2. जाखड़ दिलीप (2015) मानवाधिकार और पुलिस संगठन, यूनिवर्सिटी बुक हाउस प्रा. लि. जयपुर, आईएसबीएन 81–87339–31–4
3. सुब्रह्मण्यम डॉ. एस. (2001) पुलिस और मानवाधिकार प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली आईएसबीएन 81–7315–259–4
4. मिश्रा डॉ. महेन्द्र के. (2008) भारत में मानवाधिकार एस. आर. एस. पब्लिशर्स एंड डिस्टीब्यूटर्स दिल्ली आईएसबीएन 81–8346–015–1

vibhamanoj1@gmail.com

M. 9460927295

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 89-91

शास्त्रीय संगीत का इतिहास एवं विकास

डॉ. श्रुति मिश्रा
–

शोध सारांश :-

संगीत का प्रारम्भ सिधु घाटी के सभ्यता के काल में हुआ। हालांकि इस दावे के एकमात्र साक्ष्य हैं। उस समय की एक नृत्य बाला की मुद्रा में कास्य मूर्ति और नृत्य, नाटक और संगीत के देवता के पूजा का प्रचलन था। सिंधु घाटी कि सभ्यता के पतन के प चात वैदिक संगीत की अवस्था का प्रारम्भ हुआ। जिसमें संगीत भौली में भजनो और मंत्रो के उच्चारण से ई वर की पूजा और अर्चना की जाती थी। इसके अतिरिक्त दो भारतीय महाकाव्य, रामयण और महाभारत की रचना में संगीत का मुख्य प्रभाव रहा।

भारत में प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक आते–आते संगीत की भौली और पद्धति में अत्यधिक परिवर्तन हुआ।

प्रस्तावना – भारत में संगीत के लिए भाास्त्रीय संगीत आधार स्तम्भ है। भाास्त्रीय संगीत को ही क्लासिकल म्यूजिक भी कहते है। भाास्त्रीय गायन सुर–प्रधान होता है। भाब्द प्रधान नही। इसमें महत्व सुर का होता है जहाँ भाास्त्रीय संगीत ध्वनि विशयक साधना के अभ्यस्त ही समझ सकते है। संगीत को न जानने वाले केवल दे ाी गीत या लोकगीत ही सुनकर आनंद उठा सकते है।

सामवेद में संगीत के बारे में गहराई से चर्चा की गई है। भारतीय भाास्त्रीय संगीत गहरे तक आध्यात्मिकता से प्रभावित रहा है। इस लिए इसकी भुरूआत मनुश्य जीवन के अंतिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति के सधान के रूप में हुई।

भारतीय संगीत का विकास :– भारतीय भाास्त्रीय संगीत की पद्धति वैदिक ग्रंथो और नाट्य भाास्त्र जैसे–प्राचीन ग्रंथो में खोजी जा सकती है, जबकी प चमी भाास्त्रीय संगीत मध्यकलीन और पुनर्जाकरण संगीत से विकसित हुआ है।

भाास्त्रीय संगीत प चमी कला संगीत को एक भौली है, जो मध्ययुगीन और पुनर्जाकरण काल के दौरान यूरोप में विकास हुआ । और वैरोक भाास्त्रीय और रोमांचिक युगो के दौरान अपने अधुनिक रूप में विकसित हुई। भाास्त्रीय भाब्द भ्रामक हो सकता है, क्योकि इसका उपयोग सभी आरकेस्ट्रा संगीत को संदर्भित करने के लिए किया जाता है। लेकिन यह वास्तव में भाास्त्रीय काल (लगभग 1750–1820) से संगीत को संदर्भित करता है। जिसकी वि ोशता यह थी कि यह बहुत सरल थी।

भाास्त्रीय संगीत का हमारे समाज और संस्कृति पर गहरा प्रभाव पडा है। इसने दुनिया भर के श्रोताओं को प्रेरित और प्रभावित किया है। कई प्रसिद्ध रचनाए सांस्कृतिक टचस्टोन बन गई है।

उदाहरण के लिए – वीधोवेन की नौवी, सिम्फनी का इस्तेमाल, राजनीतिक भशणो, फिल्मों और यहा तक की युरोपिय संद्य के गान के रूप में भी किया जाता है। बारव की रचनाओं का सदियो से अध्ययन और प्र ांसा की जाती रही है। और आज भी आकेस्ट्रा और गायक मंडलियों द्वारा उनका प्रद ान किया जाता है।

अपने समृद्ध इतिहास और संस्कृतिक महत्व के बावजूद, भाास्त्रीय संगीत को हाल के वर्शो में चुनौतिया का सामना करना पडा है। बहुत से लोग इसे अभिजात्य या पुराना मानते है और संगीत समारोह में युवा द ाको को अकर्शित करना मु किल हो सकता है।

भाास्त्रीय संगीत आज भी प्रासंगिक है, और इसका भविश्य नई तकनीको को भाामिल करने और भौली की परंपराओं और मूल्यों को संरक्षित करते हुये। युग द ाकों तक पहुचाने में भाामिल है।

अर्थात भाास्त्रीय संगीत एक ऐसी भौली है जिसकी सरहना कोई भी व्यक्ति कर सकता है। चाहे उसकी संगीत पृश्ठभूमि या पंसद कुछ भी हो चाहे संगीत समारोहो में भाग लेना हो या रिकार्डीगं सुनना हो या संगीतकारो और उनके कार्यो के बारे में पढना हो, भाास्त्रीय संगीत की दुनिया को जानने और इसकी सुदरता और जटिलता को सराहना करने के कई तरीके है।

भाास्त्रीय संगीत में कई तालो का भी उल्लेख है, व इस ग्रंथ से पता चलता है, कि प्राचीन भारतीय पांरपरिक संगीत में बदलाव आने भाुरू हो चुके है। व संगीत पहले से उदार लगा था। मगर मूलतत्व एक ही रहें। 11वीं और 12वीं भाताब्दी में मु लम सभ्यता के प्रसार ने उत्तर भारतीय संगीत को नया आयाम दिया। राजदरबार संगीत के प्रमुख संरक्षक बने और जहॉ उनके भाासको ने प्रचीन भारतीय संगीत को समृद्ध परंपरा को प्रोत्साहन दिया। वही अपनी आव यकता और रूची के अनुसार उन्होने इसमें अनेक परिवर्तन भी किये।

इसी समय कुछ नई भौलियॉ भी प्रचलन में आई जैसे – ख्याल, गजल, आदि। एवं भारतीय संगीत के कई नये वाद्यो से भी परिचय हुआ। जैसे– सरोद, सीतार, इत्यादि।

निश्कर्श – मतंग मुनि द्वारा रचित बृहदे ाी गंथ की रचना काल सातवी–अठवी भाताब्दी के लगभग माना जाता है। इसमें आठ अध्याय हैं, जिसमें से रागाध्याय और प्रबधाध्याय ही प्राप्त है। मंतग ने मार्गीय एवं दे ाी संगीत का उल्लेख किया हैं।

मार्गीय संगीत कई नियमों द्वारा बंधा था। और दे ाी संगीत जन मन रंजक था। मंतग ने जति गायन के दस लक्ष्णो को ही स्वीकारा है।

अनुप विलास – इस ग्रंथ में नाद उत्पति, 22 श्रुतियॉ पर स्वर स्थापना, श्रुतिया के दो प्रकार गायक तथा यंत्रक भाुद्ध स्वरो का चित्रण था। देवता, ग्राम, मूर्च्छना, जाति, वर्ण, अलंकार, भाुद्धतान, कूट तान आदि का वर्णन संगीत रत्नाकार और संगीत परिजात के समान किया है।

रागाध्याय में संगीत रत्नाकार में वर्णित रांगो के नाम तथा 70 रागों का परिचय भी दिया गया है। जिसमें अडाना, आराबी कामोद तथा कल्याण आदिराग भी सम्मिलित है।

भाास्त्रीय संगीत का आधुनिकयुग – संगीत आधुनिकयुग सन् 1801 से वर्तमान समय तक माना जाता है। अभी तक हमने देखा की प्राचीन समय भरत द्वारा जाति वर्गीकारण मतंगमुनी द्वारा ग्रामराग वर्गीकरण तथा पण्डित

ारंग देव द्वारा द ावि ा राग वर्गीकरण ग्रामराग, उपांग, भाशा, विभाशा, अंर्तभाशा, रागांग, क्रियांग, उपांग का उल्लेख मिलता है।

भारतीय संस्कृति में वैदिक काल से ही गुरूकुल परमपरा के अन्तर्गत सभी प्रकार कि विधाओं के ि ाक्षण प्रि ाक्षण की व्यवस्था होती थी।

महाभारत काल में अर्जुन को गायन, वादन, तथा नर्तन की विद्या प्राप्त होने पर गंधर्व वि ारद कहा गया। प्रचीनकाल में भुारू से गुरूकुल में ही संगीत ि ाक्षण ि ाश्यों को प्रदान की जाती रही।

समय चक्र के आगे बढने पर मध्य काल में राजनौतिक कारण, विदे ाी अक्रमणों तथाा संस्कृतिक के प्रभाव के कारण संगीत की ि ाक्षण प्रणाली में भी अंतर अना स्वाभाविक था।

जो भाास्त्रीय संगीत केवल दे ा में ही नही विदे ा में भी विकसित हो चुकी है। लोग भाास्त्रीय संगीत को बहुत पंसद करते है।

इसका उदाहरण आज प्रयाग संगीत समिति महाविद्यालय पूना, भारतखंडे संगीत कॉलेज लखनऊ, स्कूल ऑफ इण्डियन म्यूजिक बडौदा, भांकर संगीत विद्यालय ग्वालियर आदि। कई संस्थानों एवं लगभग सभी भाहरों के वि वविद्यालयों में संगीत का ि ाक्षण विधवित चल रहा है।

व्यवसायिक दृश्टिकोण से संगीत विशय में ज्ञानाअर्जन कर ि ाक्षार्थी संगीत के क्षेत्र में मंच प्रद ाक कलाकर, संगीत के क्षेत्र में व्यवसाय प्राप्त कर सकते है। साथ ही संगीत एक स्वतः सुखाय विद्याा के रूप में प्रगति का साधन भी बन सकता है।

अतः समाज को सांस्कृतिक धरोहर संगीत को सर्व जन हिताय बनाने में संगीत विद्यालयों का योगदान अमूल्य है।

भाास्त्रीय संगीत का उपयोग उपचार और चिकित्सा के साधन के रूप में किया जाता है। अध्ययनों से पता चलता है, कि भाास्त्रीय संगीत सुनने से तनाव और चिंता कम हो सकती है। रक्तचाप कम हो सकता है। और यहॉ तक कि संज्ञात्मक कार्य में भी सुधार हो सकता है। कुछ अस्पतालों और चिकित्सीय केन्द्रो को लाभ प्राप्त हो रहा है। मनोवैज्ञानिको नें भाास्त्रीय संगीत को अपनी उपचार योजनाओं में भी सामिल किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची –

1. राग रंगिणी –पंडित अहोबल पृश्ठ 65
2. नाटय भाास्त्र – भरत, पृश्ठ 225
3. मतंगमुनी – बृहदे ाी, पृश्ठ 144
4. नाट्य ास्त्र – भरत, पृश्ठ 185

shrutimishra956@gmail.com

8839075686

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 92–98

Comparative Study of Light Intensity Distribution from CFL, LED, and Mobile Flashlight Using a Lux Meter

P. Satya Phani Kumar*, S. Suresh
Assistant Professors, Department of Physics,
Maharajah's College (A), Vizianagaram, Andhra Pradesh, India
D. Naresh, T. Aravind
Undergraduate Students, Major in Physics,
Maharajah's College (A), Vizianagaram, Andhra Pradesh, India

Abstract :

This study compares the light intensity distribution of five light sources—CFL (11 W), LED (9 W), incandescent bulb (40 W), and mobile phone flashlights (OnePlus and iQOO)—using a digital lux meter. Illuminance was measured at distances ranging from 10 cm to 100 cm to assess adherence to the inverse square law. CFL, incandescent, and mobile flashlights showed strong linearity ($R^2 \approx 0.99$), while the LED deviated ($R^2 = 0.8466$), likely due to directional optics. The LED bulb exhibited the highest illuminance (3360 lux at 20 cm), followed by the incandescent (1463.5 lux) and CFL (259.5 lux), with mobile flashlights showing limited range (232 lux and 165 lux). These findings validate core photometric principles and highlight LEDs' superior luminous efficiency for high-intensity applications, with implications for lighting design and energy conservation.

Introduction :

The measurement and analysis of light intensity play a significant role in understanding the performance and efficiency of different lighting sources in both domestic and commercial environments. With the growing emphasis on energy conservation and optimal lighting design, evaluating how various light sources behave at varying distances is essential for selecting appropriate illumination technologies.

Light intensity, typically measured in lux (lumens per square meter), decreases with increasing distance from the source. This relationship is governed by the **inverse square law**, which states that the intensity of light is inversely proportional to the square of the distance from the source. While this law is fundamental in theoretical photometry, real-world deviations often occur due to the geometry, reflector design, and dispersion characteristics of different light sources.

In this study, we investigate and compare the intensity distribution of five light sources: **CFL bulbs**, **LED bulbs**, **incandescent bulbs**, and mobile phone flashlights from two different smartphone models (**One Plus** and **IQOO**). Using a digital lux meter, lux values were recorded at fixed intervals from each light source under controlled indoor conditions **in a dark room to minimize ambient light interference**. The purpose of the experiment is to examine how closely each light source adheres to the inverse square law and to assess their relative lighting performance.

This experiment not only highlights the variations in the behaviour of modern and traditional lighting systems but also demonstrates the practical applicability of fundamental physics principles in everyday technology assessment.

Methodology :-

Experimental Setup :

The experiment was conducted in a dark room to eliminate the influence of ambient light and ensure consistent measurement conditions. Illuminance measurements were taken using a digital lux meter for five distinct light sources: a CFL (11 W), an LED bulb (9 W), an incandescent bulb (40 W), and mobile phone flashlights from OnePlus and IQOO smartphones.

Each light source was fixed at a constant height and aimed directly at the sensor of the lux meter. The lux meter was placed on a measuring tape aligned horizontally on the floor, allowing distance-based readings. Measurements were recorded at regular intervals ranging from **10 cm to 100 cm**, with care taken to ensure the alignment between source and sensor remained constant.

For each distance point, **two readings were recorded** to improve accuracy, and the **average lux value** was calculated. The **inverse square of the distance ($1/d^2$)** was computed to evaluate how closely the light intensity followed the inverse square law. The experiment was repeated for each light source under identical conditions to ensure fair comparison.

The collected data was tabulated and organized in a spreadsheet for further graphical analysis and interpretation.

Table 1. Average Illuminance Readings :

Average illuminance (in lux) measured using a digital lux meter at distances ranging from 10 cm to 100 cm for five different light sources. The inverse square of the distance ($1/d^2$) is also listed for comparison with theoretical predictions.

Table

Distance (cm)	Distance (m)	$1/d^2$ ($1/m^2$)	CFL Average	LED Average	Incandescent average	IQOO flash average	One Plus flash average
10	0.1	100	1065	4920	6085	645	823.5
20	0.2	25	259.5	3360	1436.5	165	232
30	0.3	11.1111	118.5	1333.5	612.5	73	101
40	0.4	6.25	66.5	724.5	320.5	38	56
50	0.5	4	43	459.5	220.5	24	35
60	0.6	2.77778	28.5	334	160.5	15	24
70	0.7	2.04082	20.5	247.5	116	10	16
80	0.8	1.5625	15.5	180	86	7	11
90	0.9	1.23457	10.5	143.5	65.5	4	8
100	1	1	7.5	112	52.5	3	6

Results and Discussion :

Table 1 presents the average lux readings of five different light sources measured from 10 cm to 100 cm. All sources show a decreasing trend in intensity with increasing distance. The LED bulb consistently exhibited the highest lux values across all distances, while mobile flashlights showed steep intensity drops. These trends support the general expectation of inverse square behavior, which is further analyzed in the following graphs.

Figure 1. Lux vs Distance for All Light Sources :

Figure 1 shows the variation of illuminance (in lux) with distance (in meters) for five different light sources. All sources display a significant drop in light intensity as distance increases, consistent with the expected inverse square behavior. The LED and incandescent bulbs exhibit the highest initial lux levels, maintaining higher intensity over greater distances. Mobile flashlights, especially the iQOO flash, show limited range and a sharp decrease in lux, indicating lower luminous output.

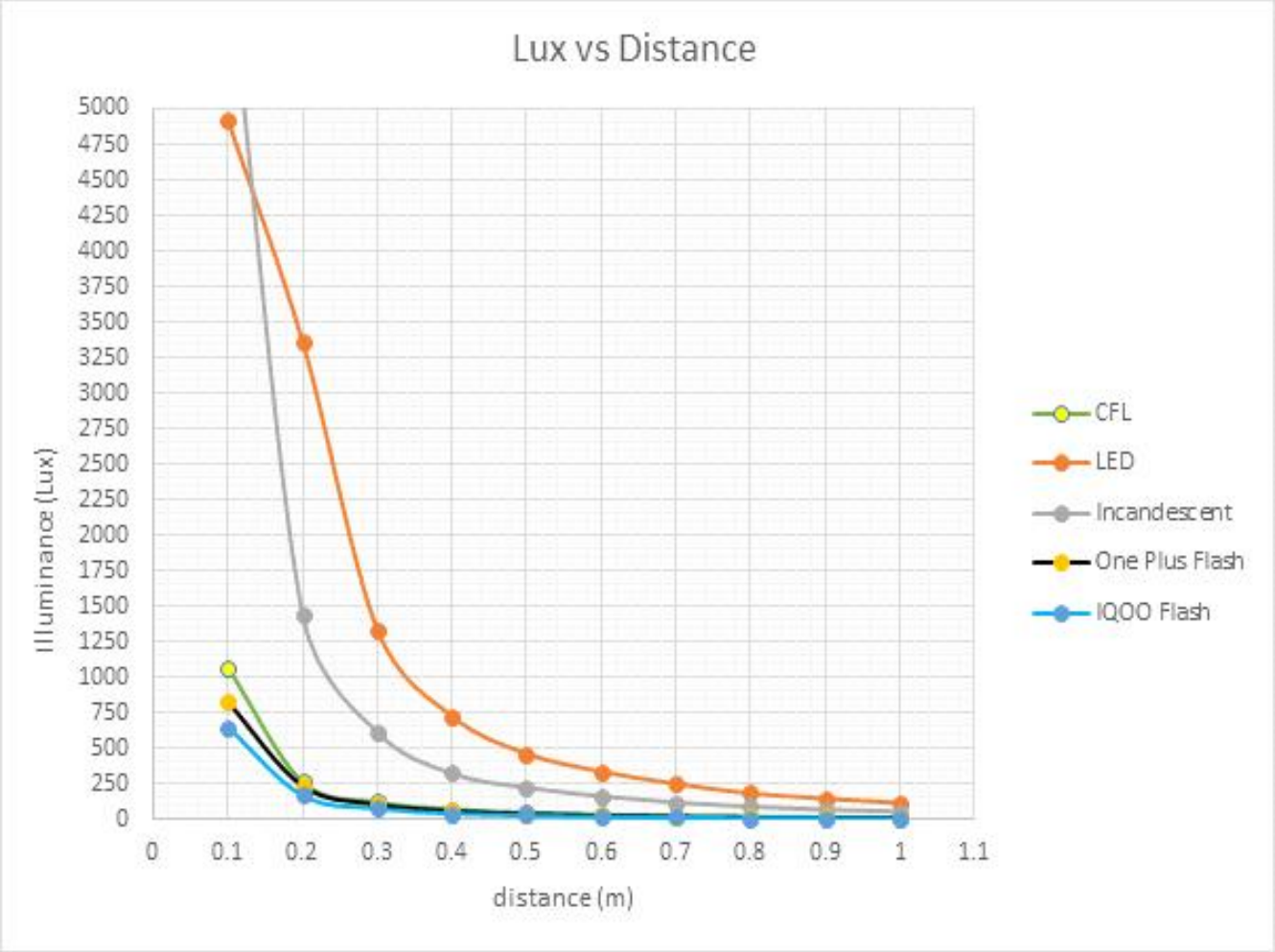

Figure 1Variation of illuminance with distance for CFL, LED, incandescent bulb, OnePlus flashlight, and iQOO flashlight. The data clearly shows an inverse relationship between lux and distance, aligning with theoretical expectations.

Figure 2. Lux vs 1/d² for All Light Sources :

Figure 2 illustrates the relationship between illuminance and the inverse square of distance (1/d²) for all tested light sources. A strong linear correlation (R² ? 1) is observed for CFL, incandescent, and mobile flashlights, confirming their conformity with the inverse square law. The LED bulb, however, shows noticeable deviation (R² = 0.8466), likely due to directional emission patterns or lensing effects. These results affirm the theoretical model for most sources while highlighting practical deviations in engineered lighting systems.

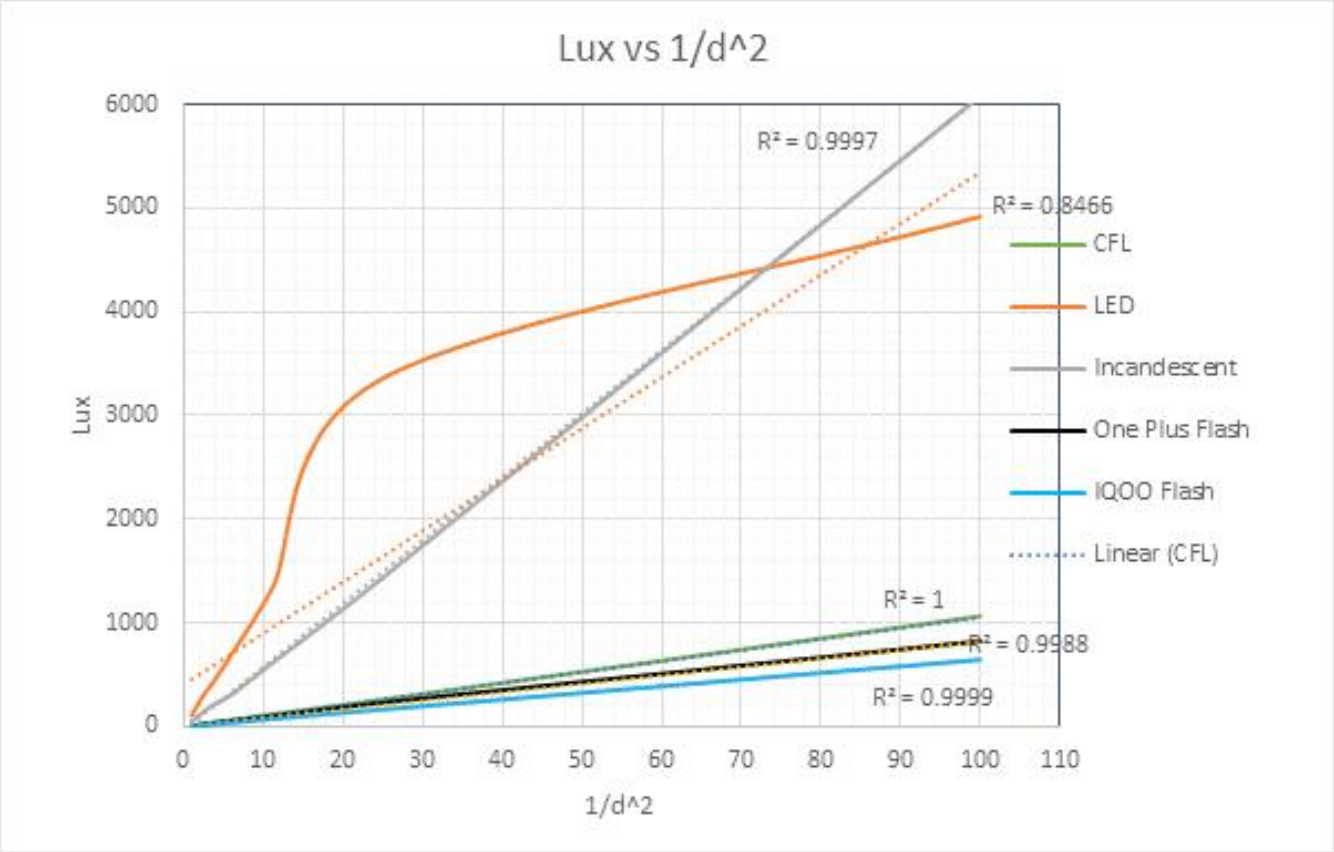

Figure 2

Figure 3. Comparative Illuminance of Light Sources at 20 cm :

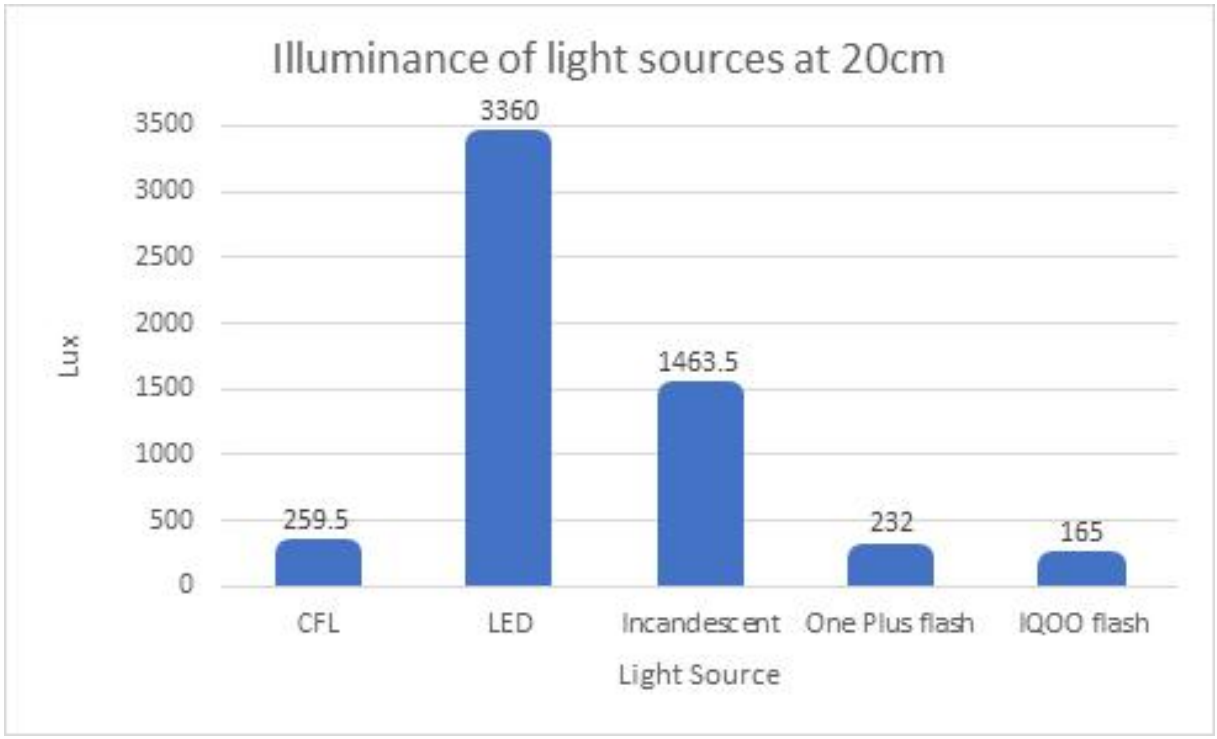

Figure 3 displays the average lux levels measured at 20 cm for all five light sources. The LED bulb produced the highest illuminance (3360 lux), followed by the incandescent bulb (1463.5 lux) and CFL (259.5 lux). Both mobile phone flashlights recorded lower output, with OnePlus at 232 lux and iQOO at 165 lux. This bar chart clearly illustrates the superior luminous performance of LED and incandescent sources at short range.

Trend Observations :

Based on the graphical analysis presented above, the following key patterns were observed :

The lux readings from all five light sources demonstrated a consistent decline in illuminance with increasing distance, as seen in Figure 1. Among the tested sources, the LED and incandescent bulbs exhibited the highest initial lux values at close range and maintained significantly higher output over greater distances compared to the CFL and mobile flashlights. The CFL bulb showed moderate performance, while both mobile phone flashlights (OnePlus and IQOO) exhibited steep intensity drops beyond 30 cm, indicating limited effective range. These trends reflect the relative efficiency and beam dispersion characteristics of the tested light sources.

Deviation from Inverse Square Law :

Figure 2, which plots illuminance against the inverse square of distance ($1/d^2$), was used to examine the conformity of each light source with the inverse square law. A strong linear correlation ($R^2 \approx 1$) was observed for the CFL, incandescent bulb, and both mobile flashlights, indicating good adherence to the theoretical model. However, the LED bulb showed a noticeable deviation from this linear trend ($R^2 = 0.8466$), especially at shorter distances. This deviation is likely due to directional optics, beam-shaping lenses, or reflector design commonly used in LED bulbs. These engineered features alter the way light disperses, making such sources behave differently from ideal point sources. These deviations are important when evaluating real-world lighting performance and are considered in the final conclusions below.

Future Scope and Recommendations :

While this study was conducted under controlled indoor conditions, several extensions could further enrich the understanding of light source behavior. Quantifying **luminous efficacy** (lumens per watt) by incorporating **total luminous flux** measurements would enable direct assessment of energy efficiency. Measuring **beam dispersion or beam angle**, particularly for LED sources, may help explain the observed deviations from the inverse square law.

In addition, **environmental factors** such as operating temperature and **age-related lumen depreciation** (light aging) can influence output and merit further investigation in future work.

Conclusion :

This study investigated the variation of light intensity with distance for five different light sources—CFL, LED, incandescent bulb, and mobile phone flashlights (OnePlus and iQOO)—using a digital lux meter. The results confirmed that most sources followed the inverse square law of illumination with high linearity, particularly the CFL, incandescent, and mobile flashlights. The LED bulb, while highly efficient in terms of brightness, deviated from the theoretical trend, likely due to its directional beam characteristics.

Among the sources tested, the **LED bulb consistently produced the highest illuminance**, followed by the incandescent bulb. CFLs showed moderate performance, while mobile flashlights, though convenient, were limited in intensity and effective range.

This experiment not only validates fundamental photometric laws but also provides a comparative understanding of modern lighting technologies. **Minor deviations in behaviour may arise due to lens geometry, reflector design, or beam divergence, especially in engineered lighting devices.** Future studies may expand on this work by analyzing different LED designs or performing spectral analysis to assess light quality. The methodology and results can serve as a valuable reference for physics education, energy awareness, and real-world lighting assessments.

References :

1. Serway, R. A., & Jewett, J. W. (2014). *Physics for Scientists and Engineers* (9th ed.). Cengage Learning.
2. Agarwal, D. C., & Lal, M. (2009). *Basic Electrical Engineering*. Tata McGraw-Hill.
3. Reddy, P. J. (2010). *Science and Technology of Photovoltaics*. CRC Press.
4. Extech Instruments. (2020). *User Manual: Digital Light Meter Model 401025*.
5. Energy Efficiency Services Ltd. (EESL), Govt. of India. (2021).

*Corresponding Author

Email: pspk9999@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 99-103

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में शिक्षित महिला पात्रों का चित्रण और उनका सामाजिक संघर्ष

डॉ. सोनिया गुप्ता
एसोसिएट प्रोफेसर हिंदी,
महाराजा अग्रसेन महिला महाविद्यालय, झज्जर।

सारांश :-

यह शोध पत्र मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में शिक्षित महिला पात्रों के जीवन और उनके संघर्षों का सरल और गहराई से अध्ययन करता है। मैत्रेयी पुष्पा का साहित्यिक लेखन ग्रामीण जीवन और समाज की वास्तविकता को उजागर करता है, जिसमें महिलाओं के संघर्ष, सपने और जीवनशैली का जीवंत वर्णन किया गया है। उनके उपन्यासों जैसे 'इदनमम', 'चाक' और 'कस्तूरी कुंडल बसै' में बड़े ही सुंदर ढंग से दिखाया गया है कि शिक्षित महिलाएं न केवल अपनी पहचान के लिए प्रयास करती हैं बल्कि समाज की पितृसत्तात्मक सोच को चुनौती देकर अपनी आजादी के लिए भी संघर्ष करती हैं।

इन पात्रों के माध्यम से पुष्पा जी यह बताती हैं कि शिक्षा कैसे महिलाओं को अपने अधिकार और इच्छाओं को समझने तथा उन्हें अपनाने का साहस देती है। यह शोध उनके उपन्यासों में शिक्षित महिला पात्रों की आत्मनिर्भरता, आत्मविश्वास और सामाजिक जागरूकता पर केंद्रित है। इन पात्रों का संघर्ष केवल उनके व्यक्तिगत जीवन तक सीमित नहीं रहता, बल्कि यह पूरे समाज में बदलाव की दिशा में एक बड़ा कदम बन जाता है। यह अध्ययन नारीवाद, पितृसत्ता और आधुनिक स्त्री विमर्श जैसे विषयों पर प्रकाश डालता है और यह बताता है कि मैत्रेयी पुष्पा का लेखन पारंपरिक और आधुनिक महिला चिंतन के बीच एक सेतु का काम करता है। इस शोध का उद्देश्य यह समझाना है कि उनके उपन्यासों की शिक्षित महिलाएं कैसे समाज की पुरानी सोच को बदलने और महिलाओं के लिए नए रास्ते खोलने में योगदान देती हैं।

परिचय :-

हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। 20वीं सदी के उत्तरार्ध में हिंदी उपन्यासों में महिलाओं की स्थिति, उनकी समस्याओं और समाज में उनकी भूमिका पर गहराई से लिखा गया। इस साहित्यिक प्रवृत्ति में स्त्री पात्रों के संघर्ष और उनके सामाजिक तथा व्यक्तिगत अनुभवों को विशेष महत्व दिया गया। मैत्रेयी पुष्पा इस धारा की प्रमुख लेखिका हैं, जिन्होंने ग्रामीण समाज की स्त्रियों के जीवन, उनकी चुनौतियों और उनकी आवाज को अपनी कृतियों में प्रमुखता से स्थान दिया है।

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में शिक्षित महिलाओं को सशक्त और जागरूक रूप में दर्शाया गया है। उनके पात्र सामाजिक परंपराओं, रूढ़ियों और पितृसत्तात्मक सोच को चुनौती देते हुए दिखाई देते हैं। उनके लेखन में यह स्पष्ट होता है कि शिक्षा महिलाओं के लिए केवल ज्ञान का माध्यम नहीं है, बल्कि यह उनकी आत्मनिर्भरता और आत्मसम्मान का प्रतीक है। शिक्षा महिलाओं को अपने अधिकारों और स्वतंत्रता के प्रति जागरूक बनाती है, जिससे वे समाज की परंपरागत बेड़ियों को तोड़ने में सक्षम होती हैं।

इस शोध में मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में शिक्षित महिलाओं के संघर्षों और उनकी प्रेरणादायक भूमिकाओं पर प्रकाश डाला गया है। यह अध्ययन इन पात्रों की व्यक्तिगत यात्रा के साथ–साथ सामाजिक और सांस्कृतिक परंपराओं को चुनौती देने में उनके योगदान को भी समझने की कोशिश करता है। इसमें नारीवाद, पितृ सत्ता और आधुनिक स्त्री विमर्श जैसे प्रमुख मुद्दों को स्थान दिया गया है।

साहित्यिक पृष्ठभूमि :–

मैत्रेयी पुष्पा का लेखन साहित्य में एक विशिष्ट स्थान रखता है। वे न केवल साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण लेखिका हैं, बल्कि उनके लेखन ने सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी नए विचारों को बढ़ावा दिया है। उनका लेखन ग्रामीण समाज की स्त्रियों की वास्तविक परिस्थितियों को उजागर करता है और समाज में बदलाव की जरूरत को रेखांकित करता है।

मैत्रेयी पुष्पा के साहित्य का केंद्र बिंदु ग्रामीण भारत की महिलाओं के जीवन और उनके संघर्ष हैं। उनके उपन्यास और कहानी नारी स्वतंत्रता, आत्म सम्मान और सामाजिक परिवर्तन जैसे मुद्दों को सशक्त रूप में प्रस्तुत करती हैं।

मैत्रेयी पुष्पा के साहित्य की मुख्य विशेषताएँ :–

1. ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्रण :

मैत्रेयी पुष्पा की रचनाएँ ग्रामीण समाज की तस्वीर पेश करती हैं। उनकी कहानियों में ग्रामीण महिलाओं की दबी हुई इच्छाओं और उनकी समस्याओं को मार्मिकता से दर्शाया गया है। उनके उपन्यास और कहानियों के पात्र अपने अस्तित्व के लिए समाज के ढाँचे से लड़ते हैं, जिससे समाज के अनछुए पहलुओं का पर्दाफाश होता है।

2. नारीवाद का प्रखर स्वरूप :

इनका साहित्य नारीवाद को एक क्रियात्मक और जीवंत स्वरूप देता है। उनकी नायिकाएं पारंपरिक छवि से अलग होती हैं। वे निडर, आत्मनिर्भर और सामाजिक रूढ़ियों को चुनौती देने वाली होती हैं। इनकी नायिकाओं के संघर्ष व्यक्तिगत होने के साथ–साथ सामूहिक और सामाजिक भी होते हैं।

3. शिक्षित महिला का स्वरूप और उसकी विशेषताएँ :

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में शिक्षित महिलाओं को नई सोच, संघर्ष और आत्मनिर्भरता का प्रतीक दिखाया गया है। ये पात्र पारंपरिक समाज से बाहर निकलकर अपनी पहचान बनाने और अपने अधिकारों के लिए लड़ने का साहस दिखाते हैं। उनके उपन्यासों के पात्रों की विशेषताएँ और संघर्ष उनके लेखन में प्रमुखता से उभरते हैं, जो कि निम्नलिखित हैं :

मुख्य बिंदु :-

1. स्वतंत्रता की चाह :

शिक्षित महिलाएं अपनी स्वतंत्र पहचान बनाने की कोशिश करती हैं। वे समाज की परंपराओं और रूढ़ियों को तोड़कर नई राहें खोजती हैं।

उदाहरण : 'मैं केवल दूसरों की इच्छाओं का विस्तार नहीं, अपनी एक स्वतंत्र पहचान हूँ।'

2. समाज का प्रतिरोध :

ये महिलाएं पारंपरिक भूमिकाओं और पितृसत्तात्मक सोच को चुनौती देती हैं। वे अपने अधिकारों और स्वतंत्रता के लिए डटकर खड़ी होती हैं।

उदाहरण : 'समाज का हर नियम स्त्री को नियंत्रित करने के लिए बनाया गया है।'

(इदनमम, मैत्रेयी पुष्पा, किताब घर, 1994)

3. आत्मनिर्भरता की खोज :

शिक्षित महिलाएं आर्थिक और सामाजिक रूप से आत्मनिर्भर बनने का प्रयास करती हैं। यह उन्हें आत्मसम्मान और समाज में प्रतिष्ठा दिलाने में मदद करता है। वे अपनी राह चुनती हैं और दूसरों पर निर्भर रहने से बचती हैं।

4. संघर्ष और योगदान :

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में शिक्षित महिलाएं केवल शिक्षा ग्रहण नहीं करतीं, बल्कि इसका उपयोग अपने और समाज के जीवन में बदलाव लाने के लिए करती हैं। उनके संघर्ष व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों स्तरों पर होते हैं, जो उन्हें आधुनिक नारीवादी विचारधारा में एक विशेष स्थान दिलाते हैं।

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में शिक्षित महिला का चित्रण :-

1. इदनमम

इस उपन्यास में शिक्षित महिला की स्वतंत्रता, सामाजिक अपेक्षाओं और आत्मनिर्भरता की खोज को प्रमुखता से उभारा गया है।

मुख्य बिंदु :

– पितृसत्तात्मक संरचना को चुनौती देना।

– पहचान और अधिकारों के लिए संघर्ष।

उदाहरण : 'शिक्षा ने मुझे सिखाया कि चुप रहना सबसे बड़ा अपराध है।'

2. चाक :

इसमें शिक्षित महिलाओं के व्यक्तिगत और सामाजिक संघर्षों का विस्तार से वर्णन किया गया है।

मुख्य बिंदु :

– शिक्षा के माध्यम से आत्मनिर्भरता।

– सामाजिक और पारिवारिक जिम्मेदारियों के बीच संतुलन।

उदाहरण : 'मैं केवल एक माँ नहीं, बल्कि सोचने–समझने वाली इंसान हूँ।'

3. कस्तूरी कुंडल बसै :

यह उपन्यास ग्रामीण पृष्ठभूमि में शिक्षित महिला के संघर्ष और सामाजिक प्रभाव को दर्शाता है।

मुख्य बिंदु :

– ग्रामीण समाज में शिक्षा का प्रभाव।

– महिलाओं के अधिकार और सम्मान के लिए संघर्ष।

उदाहरण : 'शिक्षा ने मेरी आँखों से पर्दा हटा दिया, अब मैं अपने फैसले खुद लेती हूँ।'

शिक्षा और समाज में शिक्षित महिला की भूमिका

1. शिक्षा और सशक्तिकरण :

शिक्षा महिलाओं को न केवल अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनाती है, बल्कि उन्हें आत्मनिर्भरता और निर्णय लेने की क्षमता भी प्रदान करती है।

उदाहरण : 'साक्षरता ने मुझे जीवन के अर्थ को समझने की शक्ति दी है।'

2. पारंपरिक भूमिकाओं का विरोध :

शिक्षित महिलाएं समाज में स्थापित पारंपरिक ढाँचे के पुराने नियमों और सोच के साथ जूझती हैं।

उदाहरण : 'मेरा संघर्ष केवल मेरा नहीं है, यह हर उस स्त्री का है जो बोलने की हिम्मत रखती है।'

शिक्षा महिलाओं को सशक्त बनाने और सामाजिक बदलाव का वाहक बनाने में सहायक है। शिक्षित महिलाएँ समाज की रूढ़िवादी सोच को चुनौती देकर एक नए युग का निर्माण करती हैं।

शिक्षा के माध्यम से महिलाएं अपनी पहचान और अधिकारों के प्रति सजग हो जाती हैं जिससे वे न केवल अपने जीवन में बदलाव लाती है बल्कि समाज की संरचनाओं में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन का माध्यम बनती है। शिक्षित महिला अपने पारिवारिक, सामाजिक और आर्थिक परिवेश मे नए अवसर पैदा करती है और अपने अनुभव से दूसरों को प्रेरित करती है।

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में शिक्षित महिला संघर्षशील नायकत्व का प्रतीक है। जो समाज की रूढ़ियों का सामना करते हुए अपने लिए नहीं राह बनाती है। उनके लेखन में यह संदेश मिलता है कि शिक्षा केवल ज्ञान अर्जन का साधन नहीं बल्कि यह अपनी अस्मिता को पहचानने और उसे सम्मान पूर्वक जीने का माध्यम है। उदाहरण शिक्षा केवल जीने का तरीका नहीं, बल्कि खुद को समझने का माध्यम है।

यह उदाहरण मैत्रेयी पुष्पा के लेखन का सार प्रस्तुत करता है जो बताता है कि शिक्षा व्यक्ति को अपने अस्तित्व और अधिकारों को पहचानने का साधन प्रदान करती है।

समाज और शिक्षित महिला : एक परस्पर प्रभाव :–

शिक्षित महिला और समाज के मध्य गहरा संबंध होता है। वह महिला पढ़–लिखकर केवल अपनी पहचान नहीं बनाना चाहती, बल्कि अपने विचार और कार्यों से समाज में भी परिवर्तन लाती है।

नारी सशक्तिकरण का प्रतीक, शिक्षा प्राप्त महिला आत्मविश्वास, ज्ञान और विवेक से परिपूर्ण होती है, जिससे वह समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाने में सक्षम होती है। वह अपने अधिकार और कर्तव्यों के प्रति जागरूक होती है और अन्य महिलाओं के जीवन में भी जागरूकता और प्रेरणा का संचार करती है।

उदाहरण : 'मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में समाज की पुरानी सोच को चुनौती देकर सशक्त नारीवाद का

समर्थन किया गया है।'

सामाजिक संरचनाओं का पुनर्निर्माण :-

शिक्षित महिलाएं पितृसत्ता की जड़ें हिला कर नई सामाजिक संरचनाओं की नींव रखती हैं। वे पुरानी मान्यताएं मानने के लिए तैयार नहीं होतीं और ऐसे समाज की स्थापना पर बल देती हैं जहाँ समानता और न्याय हो।

उदाहरण : 'कस्तूरी कुंडल बसै की नायिका कस्तूरी अपने संघर्षों के माध्यम से यह सिद्ध करती है कि शिक्षा से प्राप्त ज्ञान और शक्ति केवल स्वयं का ही विकास नहीं करती, बल्कि यह समाज की सोच को भी बदलने में महती भूमिका निभाती है।'

संदर्भ (References)

1. पुष्पा, मैत्रेयी। इदनमम, किताब घर, 1994।
2. ———। चाक, किताब घर, प्रकाशन वर्ष अनिर्दिष्ट।
3. ———। कस्तूरी कुंडल बसै, प्रकाशन स्रोत अनिर्दिष्ट।
4. शर्मा, अनामिका। हिंदी साहित्य में नारी विमर्श, राजकमल प्रकाशन, 2010।
5. पाठक, उषा। आधुनिक हिंदी उपन्यास और स्त्री चेतना, वाणी प्रकाशन, 2015।

goels8008@gmail.com
7988867926

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 104–106

स्त्री अस्मिता का संघर्ष : छिन्नमस्ता के विशेष संदर्भ में

शंषादबी. टी
शोध छात्रा, कालिकट विश्वविद्यालय।

मानव होने के नाते प्रत्येक व्यक्ति सामान्य अवलोकन संबंधी विशेषताओं के संदर्भ में समान है, लेकिन अनेक कारणों से उसकी अस्मिताएँ भिन्न होती हैं। अस्मिता की भावना आत्म खोज से उत्पन्न होती है। व्यक्ति जीवन के हर क्षेत्र और विभिन्न परिस्थितियों में 'खुद' की खोज करके अपने अस्तित्व के बोध के साथ विशिष्ट पहचान और अपना हक प्राप्त करता है। अस्मिता व्यक्ति के व्यक्तित्व की विलक्षणता और उसकी पहचान के साथ सामाजिक निष्ठा को भी प्रकट करती है। इसके अतिरिक्त व्यक्ति में निहित स्वत्व बोध को पैदा करती है और स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करने की संकल्पना को व्यक्त करती है।

स्त्री–पुरुष में जैविक अंतर स्वाभाविक है। लेकिन आज लिंगभेद की कसौटी पर स्त्री का अस्तित्व अस्थिर हो गया है। स्त्री समाज और परिवार में अपनी इच्छा से जीना चाहती है। वह अपना स्वत्व एवं अधिकार स्वयं निर्धारित करना चाहती है। लेकिन अक्सर समाज और परिवार में स्त्री का व्यक्तित्व दूसरों द्वारा नियमित है। यदि स्त्री के व्यक्तित्व एवं पहचान का मूल्यांकन स्त्री के बजाय पुरुष करेगा तो निश्चय ही उस अस्मिता का कोई अस्तित्व नहीं रहेगा। पुरुष ने हमेशा स्त्री के अस्तित्व को केवल वस्तु के रूप में निर्धारित किया है। नारी के इस एहसास से ही समाज एवं परिवार में अपनी अस्मिता की तलाश की शुरुआत होती है। सदियों से दबाई गई नारी में अब आत्मबोध जाग उठा और अवसर पाते ही वह प्रखर रूप में अपने स्वत्व एवं अस्तित्व को स्थापित करने के लिए संघर्ष कर रही है। स्त्री अस्मिता की संकल्पना द्वारा नारी अपनी दैहिक, मानसिक एवं भाषिक संरचना के अधिकारिणी बन गयी है। आधुनिक नारी के बदलती दृष्टिकोण को व्यक्त करते हुए प्रभा खेतान लिखती हैं – "आज स्त्री ने सदियों की खामोशी तोड़ी है उसकी नियति में बदलाव है, उसके व्यक्तिगत जीवन का उद्देश्य, दर्शन, उसका मन–मिजाज सभी तो बदल रहा है।"[1]

प्रभा खेतात ने नारी अस्मिता को केन्द्र बनाकर ही उपन्यासों का सृजन किया। उन्होंने स्त्री अस्तित्व एवं पहचान के जरिए पुरुषसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था का विरोध किया। उनके नारी पात्र साहसी, आत्मविश्वास, उत्कृष्ट विचार एवं स्वाभिमान से भरे हुए हैं। प्रभा खेतान के बहु चर्चित उपन्यास 'छिन्नमस्ता' में पितृ सत्तात्मक समाज में अपनी अस्मिता की तलाश हेतु संघर्षरत नारी की स्थिति को चित्रित करने का सफल प्रयास किया गया है। यह नारी की स्वतंत्रता एवं आत्मनिर्भरता की कहानी है। 'छिन्नमस्ता' में एक ओर नारी जीवन की विसंगतियों को प्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत कर पुरुष सत्ता के खोखले वर्चस्व को उजागर किया है, तो दूसरी ओर नारी की आर्थिक एवं मानसिक स्वतंत्रता का चित्रण किया गया है। इस उपन्यास की नायिका प्रिया सदियों से थोपे गए नैतिक

मानदण्डों को तोड़कर अपने लिए नई राह प्रशस्त करके स्वतंत्र व्यक्तित्व बनाना चाहती है। इस उपन्यास की समीक्षा में गोपाल राय ने प्रिया के व्यक्तित्व को इस प्रकार व्यक्त किया है कि "यह आधुनिक नारी की त्रासदी और उसके संकल्प का एक प्रामाणिक दस्तावेज है। यह एक ऐसी नारी का संघर्ष कथा है जो एक रूढ़िबद्ध समाज से टकराते और अपने को भावात्मक स्तर पर लहूलुहान करते हुए अपने अस्तित्व को नए सिरे से परिभाषित करने की कोशिश कर रही है। इस उपन्यास की पहचान बनती है प्रिया के चरित्र से जो अपने को सदियों से शोषित– पीडित नारी की पंक्ति से अलग करने में समर्थ होती है। वह समाज और परंपरा के जड़ मूल्यों को चुनौती देती हुई अपनी अलग पहचान बनाती है, पर कहीं भी असंतुलित नहीं होती। 'छिन्नमस्ता' का मिथक प्रिया जैसी संवेदनशील आधुनिक नारी के लिए बहुत सार्थक है, जो इस मनःस्थिति में ही अपनी लहूलुहान जिन्दगी को दोबारा जीती है, वह अपना कटा सिर हाथ में लेकर, पुरुष समाज से संघर्ष कर रही है।"[2]

छिन्नमस्ता के अधिकांश नारी पात्र किसी–न–किसी कारण से अपने जीवन में यातना व पीड़ा झेलते हैं। ये दर्दनाक जीवन परिस्थितियाँ उन्हें संघर्ष करने की प्रेरणा देती हैं। प्रिया का बचपन अनाथ, असहाय, कुंठाग्रस्त एवं भयावह था। प्रिया माँ और परिवार द्वारा उपेक्षित संतान थी। उसे साढे नौ वर्ष की उम्र में भाई के बलात्कार का शिकार बनना पड़ा। भाई के इस व्यवहार से बचपन से ही प्रिया के मन में पुरुष के प्रति घृणामयी दृष्टिकोण पैदा होता है। उसने आंगन की बालकनी से कूदकर आत्महत्या करने की धमकी देकर भैया की शारीरिक प्रताड़ना का प्रतिरोध किया। भाई के विरुद्ध प्रिया का यह प्रतिरोध उसकी अस्मिता की खोज की पहली सीढी थी। शादी के पश्चात बड़े घर की बहू बनने के बाद भी प्रिया को कोई अस्तित्व नहीं महसूस होती। हर चीज के लिए पति को पैसों का हिसाब देना पड़ता है। प्रिया को यह अच्छा नहीं लगता। पति उसे हवस मिटाने की वस्तु मात्र समझता है। पति के इस व्यवहार के कारण पुरुष के प्रति उसके घृणामयी दृष्टिकोण अधिक बढता गया। पीहर में भाई द्वारा, कॉलेज में प्रोफेसर द्वारा और ससुराल में पति द्वारा दिए गए आघातों ने प्रिया को विद्रोही बना दिया। इन सभी से मुक्त होकर वह अपनी अस्मिता एवं जमीन खोजना चाहती है। इसलिए वह अपना एक स्वतंत्र व्यवसाय शुरु करती है और आर्थिक रूप से सक्षम होने का प्रयास करती है। व्यवसाय से प्रिया का आत्मविश्वास बढ़ जाता है। प्रिया सोचती है कि "मैंने दुःख झेला है। पीड़ा और त्रासदी में झुलसी हूँ। जिस दिन मैंने त्रासदी को ही अपने होने की शर्त समझ लिया, उसी दिन, उस स्वीकृति के बाद, मैंने खुद को एक बड़ी गैर–जरूरी लड़ाई से बचा लिया। कुछ के प्रति यह मेरा समर्पण था। सारे जुल्मों के सामने..... सलीब पर लटकते मैंने पाया कि मैं अब पूरी तरह जिन्दगी की चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार हूँ।"[3]

नरेंद्र प्रिया के व्यक्तित्व को घर की चार दीवारों के भीतर एक आदर्श पत्नी के रूप में सीमित रखना चाहता है। वह प्रिया से कहता है– "देखो प्रिया! जिस दिन तुमने काम शुरू किया था, उसी दिन मैंने कह भी दिया था– काम करो पर यह मत भूलो कि तुम विवाहिता हो, एक बच्चे की माँ हो, अग्रवाल हाउस की बहू हो।"[4]

लेकिन प्रिया दूसरों की शर्तों पर जीने के लिए तैयार नहीं होती है। वह बेटी, पत्नी, बहू, माँ आदि बंधनयुक्त मानदण्डों को तोड़कर समाज में एक स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में अपनी अस्मिता को कायम रखना चाहती है। उसने व्यवसाय केवल पैसों के लिए नहीं किया बल्कि अपने अर्थहीन जीवन को नई दिशा और आइडेंटिटी प्रदान करने का एक उपाय माना। वह नरेंद्र से कहती है– "नरेन्द्र, मैं व्यवसाय रुपए के लिए नहीं कर रही। हाँ, चार साल पहले जब मैंने पहले–पहल काम शुरू किया, मुझे रुपयों की भी जरूरत थी। पर आज मेरा

व्यवसाय मेरी आइडेंटिटी है। यह आए दिन की विदेशों की उड़ान..... यह मेरी जिन्दगी के कैनवास को बड़ा करती है। नित्य नए लोगों से मिलना–जुलना, जीवन के कार्य–जगत को समझना। मुझे जिन्दगी उद्देश्यहीन नहीं लगती।"[5]

व्यवसाय के जरिए प्रिया ने आर्थिक सफलता प्राप्त की। आर्थिक आत्मनिर्भरता से प्रिया के सोच विचार में बदलाव आने लगा। अब उसमें नरेंद्र के पितृसत्तात्मक सोच विचार के विरुद्ध संघर्ष करने की हिम्मत पैदा होती है। प्रिया के व्यवसाय की सफलता और व्यस्तता ने नरेंद्र के मन में जलन पैदा किया। वह प्रिया के व्यवसाय को बंद करवाना चाहता है। नरेन्द्र के इस कठोर व्यवहार के कारण प्रिया अपने पति, बच्चे, घर और परिवार को छोड़कर अस्मिता की खोज पर निकल पड़ती है।

नीना इस उपन्यास का और एक सशक्त नारी पात्र है। वह आधुनिक विचार वाली संघर्षशील नारी है। वह स्त्री होने पर गर्व करती है और किसी के सामने झुकने को तैयार नहीं है। वह बखूबी जानती है कि वह एक अवैध संतान होने के कारण समाज उसे कभी भी स्वीकार नहीं करेगा। वह पापा से नफरत करती है और उनके स्नेह और पैसे को अस्वीकार करती है। वह काम करके समाज में अपनी एक अलग पहचान अर्जित करने का प्रयास करती है। वह मानती है कि अपनी लड़ाई स्वयं लड़ने के लिए और अधिकार प्राप्त करने के लिए जीवन में होने वाले हर अपमान को याद रखना चाहिए। जूड़ी के इस कथन से नीना का निर्भय एवं संघर्षशील व्यक्तित्व का चित्रण व्यक्त हुआ है– "नीना के लिए आग हो या पानी, वह सब कुछ को जिंदगी का धर्म मानती है, उसके जीवन की अपनी लय है। ऐसा नहीं कि अकेलापन उसे नहीं चुभता पर वह हर तूफान का हँसकर स्वागत करती है और निर्भय होकर हँसती है।"[6]

इस प्रकार 'छिन्नमस्ता' की नारी, पितृसत्तात्मक समाज के षड़यंत्र को अच्छी तरह जानती है और जीवन के विभिन्न परिस्थितियों में पुरुषसत्तात्मक समाजिक व्यवस्था के बीच अपनी अस्मिता की तलाश में सफल हुई है।

संदर्भ ग्रन्थ :–

1. उपनिवेश में स्त्री, प्रभा खेतान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ. 53
2. हिंदी उपनयास का इतिहास, गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृ. 384
3. छिन्नमस्ता, प्रभा खेतान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997, पृ. 9
4. छिन्नमस्ता, प्रभा खेतान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997, पृ. 10
5. छिन्नमस्ता, प्रभा खेतान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997, पृ. 10
6. छिन्नमस्ता, प्रभा खेतान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997, पृ. 159

ADDRESSS :

Shamshadbee T W/O Najmudheen EK

Edathodi Kakkassery (H), Moorkkanad (PO), Kulathur (via) 679338 (PIN) Malappuram, Kerala

Email: shamshadbeet@gmail.com

मोबाइल : 9526271419

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 107-109

गीता दर्शन में निहित शैक्षिक मनोविज्ञान

मलखान मीना
सहायक आचार्य,
राजस्थान शिक्षक प्रशिक्षण विद्यापीठ, शाहपुरा बाग, आमेर रोड, जयपुर।

श्रीमद्भगवद्गीता का उपदेश एक विशेष मनोवैज्ञानिक स्थिति में निःसृत हुआ, आसन्न युद्ध सम्मुख था, युद्ध को टालने के समस्त उपाय निष्फल हो चुके थे। पाण्डवों का पक्ष सत्य का पक्ष था, सब प्रकार से समर्थ होते हुए भी पाण्डव अन्याय, अत्याचार एवं उपेक्षा को ही प्राप्त होते रहे, युधिष्ठिर के रूप में धर्म, भीम के रूप में बल, अर्जुन के भेष में बुद्धि उनके पास थी। क्षत्रिय होते हुए भी अर्जुन संन्यासी की तरह प्रतीत होता है। कौरव पक्ष का दुर्योधन बुद्धिहीनता एवं विवेकहीनता का प्रतीक है। कुरूक्षेत्र के मैदान में कौरवों व पाण्डवों के अतिरिक्त एक तीसरा पक्ष श्री कृष्ण के रूप में उपस्थित है। जीवन अनेक विरोधी परिस्थितियों की श्रृंखला है, मानव का व्यवहार इन प्रतियोगी परिस्थितियों से प्रभावित होता है, उसे सामाजिक वास्तविकता को ध्यान में रखकर सामाजिक स्वीकृति प्राप्त करनी होती है। कुरूक्षेत्र के मैदान में उपस्थित कौरव पक्ष मनोविज्ञान के इदम् (Id) का प्रतीक है, इदम स्वार्थी एवं राक्षसी प्रवृत्तियों के लिए होता है जो कि समाज के लिए विध्वंसात्मक है, दूसरी ओर पाण्डव पक्ष परम् अहम् (Super Ego) का प्रतिनिधित्व करता है यही कारण है इनमें नैतिक चिन्ता उत्पन्न होती है, परमअहम् देवी सम्पदा से युक्त है इसमें सृजनात्मकता होती है, कुरूक्षेत्र का युद्ध इदम् व परम् अहम् के मध्य का युद्ध है जो सभी मनुष्यों में अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न करता है।

एक तीसरा पक्ष श्री कृष्ण के रूप में कुरूक्षेत्र के मैदान में उपस्थित है जो अहम् (Ego) का प्रतिनिधित्व करता है। श्रीमद्भगवत गीता में मनोवैज्ञानिक ज्ञान से ओत–प्रोत गुरू कृष्ण द्वारा अर्जुन के दुविधाग्रस्त चित्त का सफलता पूर्वक मनोविश्लेषण किया गया है, श्रीकृष्ण ने जान लिया कि अर्जुन न तो साधु है न ही अहिंसक मनुष्य, स्वजनों को देखकर उसके मन में अपनत्व का मनोविकार उत्पन्न हो गया है स्वजनों का समाज धर्म को नष्ट करने वाला आचरण मोह की ओट में गौण प्रतीत हो रहा है, इसी कारण वह भ्रान्त तर्क देकर युद्ध से पलायन करना चाहता है उसके विषाद अहिंसक प्रवृत्ति के कारण नहीं वरन् ममत्व के कारण है, शिथिल हुए अर्जुन की आन्तरिक मनःस्थिति के साथ श्रीकृष्ण का संवाद उसकी चित्तवृत्ति का मनोवैज्ञानिक उपचार कर उसके रूग्ण मस्तिष्क को स्वस्थ व्यक्ति के मानसिक धरातल पर स्थापित करने का प्रयास है। श्रीमद्भगवद्गीता के उपदेश से अर्जुन के दुविधाग्रस्त चित्त को संकल्प स्थापित करने में सहायता प्राप्त हुई, श्रीमद्भगवद्गीता में पहले सभी विकल्पों का स्पष्टीकरण किया, परिणामों का विश्लेषण प्रस्तुत किया तथा मूल्यांकन कर अर्जुन के समक्ष प्रस्तुत किया।

स्थाई व्यक्तित्व संकलन के लिए श्रीमद्भगवद्गीता में आध्यात्मिक रूपान्तरण की आवश्यकता बतलाई गई है, श्रीमद्भगवतगीता में आदर्श व्यक्ति को स्थितप्रज्ञ माना गया है। व्यवहार संवेगात्मक नहीं होता, वह उद्वेग सहित होता है, वह **'सुखे दुःखे समे कृत्वा लाभ लाभौं जया जयो'** के भाव से विभूषित होकर निर्लिप्त दिखाई पड़ता है। श्रीमद्भगवद गीता में स्थितप्रज्ञ बनाने हेतु इन्द्रियों तथा उसके स्वामी मन को विषयों से हटाने का भी निर्देश है, मन द्वारा विषयों का चिन्तन करते रहने से व्यक्ति के अन्दर संघर्ष उत्पन्न होता है, जो उसके एकाग्रचित व्यक्तित्व में बाधक है, श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है :–

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।। 12/62

मनुष्य के पतन के क्रमिक आधार का श्रीमद्भगवदगीता में युक्ति युक्त मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है, श्रीमद्भगवद्गीता में मानव संवेगों का उसके व्यवहार पर प्रभाव सम्बन्धी विवेचना आधुनिक पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों की अपेक्षा अधिक गहन विवेचन करने में समर्थ है। काम भावना के विषय में श्रीमद्भगवद्गीता के विचार मनोविश्लेषवादी फ्रायड आदि चिन्तनों में श्रेष्ठ है। श्रीमद्भगवद्गीता में काम भावना के महत्व के साथ–साथ उसे वश में करने के उपाय भी बतलाये गये हैं।

मानसिक सन्तुलन प्राप्त करने की आवश्यकता भी गीता में दर्शाई गई है, इसी कारण श्रीमद्भगवद्गीता में युक्ताहार, आसन, प्राणायाम, शुचिता की सहायता से शरीर को सन्तुलित कर मन पर नियन्त्रण की आवश्यकता दर्शाई गयी है। श्रीमद्भगवद्गीता के निष्काम कर्म को मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान करते हुए मनुष्य को देवी प्रेरणा से कर्म करने का आदेश दिया गया है, श्रीमद्भगवदगीता को निष्प्रयोजन कर्म में साधारण मनुष्य की अरूचि का भान था, श्रीमद्भगवद्गीता व्यक्ति की वैयक्तिक विभिन्नता को ध्यान में रखते हुए उनमें रज, सत्व तथा तम के गुणों के आधार पर विभेद करती है तथा उनके मनोनुकूल मार्गों की ओर इंगित करती है। श्रीमद्भगवद्गीता मानसिक आरोग्य के विषय में गहन अर्न्तदृष्टि प्रस्तुत करती है।

भारतीय चिन्तनकर्ताओं ने मन से ऊपर आत्मा की कल्पना की आत्मा मन से परे है, श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है कि **'मनस्तु परे बुद्धि बुद्धे परस्तु सः'** अर्थात मन से परे बुद्धि और बुद्धि से परे आत्मा होती है। इस प्रकार भारतीय मनोविज्ञान आत्मा का तथा आत्म साक्षात्कार का मनोविज्ञान है, भारतीय मनोवैज्ञानिकों ने पुर्नजन्म, विभूतियों, आध्यात्मिक साधना, मनुष्य के अतीन्द्रिय अनुभव, यौगिक साधनाओं आदि अति सामान्य तत्वों के बारे में महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक ज्ञान उपलब्ध कराया है, मानव व्यवहार मानसिक और शारीरिक की अपेक्षा मनोशारीरिक होता है। पश्चिम के चेतना के तीन स्तरों के विपरीत भारत में चेतना के चार स्तर जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय माने गये हैं, भारतीय मनोवैज्ञानिकों द्वारा मानवीय आत्मा में पंचकोषों तथा सूक्ष्म एवं कारण शरीर की भी कल्पना की गई है। मानव व्यक्तित्व की संरचना पाँच कर्मेन्द्रियों, उससे ऊपर मन, मन से परे बुद्धि तथा सर्वोपरी आत्मा, पुरूष अथवा जीव से होती है, मानव के व्यक्तित्व के संकलन के लिये इन्द्रियों, मन तथा बुद्धि को आत्मा से, आत्मज्ञान से शासित करना होगा। भारतीय दर्शन के अनुसार श्रीमद्भगवद्गीता में उपनिषदों का सारतत्व निहित है श्रीमद्भगवदगीता में आत्मविकास के साधनों की चर्चा की गई है। आध्यात्मिक जीवन के लिये अर्न्तमुखी प्रवृत्ति आवश्यक है। श्रीमद्भगवद्गीता के मनोविज्ञान के अनुसार अर्न्तमुखी होने के लिए इन्द्रियों व मन को बाह्य विषयों से हटाना आवश्यक है। ऐसा करने के पश्चात् आत्मशुद्धि आवश्यक है। भारतीय

मनोविज्ञान में आत्मलाभ प्राप्त कर चुके गुरू को मनोवैज्ञानिक ज्ञान से युक्त व्यक्ति को ही शिष्य के पथ प्रदर्शन में समर्थ माना है। मनोविज्ञान केवल मानव व्यवहार के शारीरिक पक्ष का अध्ययन ही नहीं करता मानव व्यवहार में उसके मनोभावों, इच्छाओं, अनुभवों विचारों आदि का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है। मानव व्यवहार को समझने के लिए व्यक्ति के मानसिक व शारीरिक पक्षों का विवेचन आवश्यक है मानव व्यवहार में मुख्यतः दो रूप होते हैं। सामान्य व्यवहार तथा असामान्य व्यवहार मानवीय व्यवहार के विवेचनार्थ मनोविज्ञान का ज्ञान आवश्यक होता है शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने वाले व्यक्तियों के लिए मनोविज्ञान का ज्ञान परमावश्यक है। मनोविज्ञान शिक्षक शिष्य की प्रकृति शक्तियों, प्रवृत्तियों, योग्यताओं, इच्छाओं, रूचियों को ध्यान में रखते हुए उचित वातावरण एवं परिस्थिति के अनुकूल विषय का चयन करने के उपरान्त शिक्षा प्रदान करता है। शिष्य अर्न्तमुखी होकर आत्म प्रक्षालन के उपरान्त सद्गुरू के समक्ष जा कर अपनी समस्त जिज्ञासाओं का निराकरण करने के उपरान्त ही आत्मोक्ति की ओर अग्रसर हो सकता है, आत्मोक्ति के लिए सांसारिकता से स्वयं को हटाकर समत्व बुद्धि प्राप्त करने के लिए योगाभ्यास करना होगा :–

क्रोधाद्भवति संमोहः सम्मोहात्स्मृति विभ्रमः।
स्मृतिभ्रशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।। 112/63

श्रीमदभगवद्गीता मनोविज्ञान का अध्ययन पाठक में आत्मगौरव तो उत्पन्न करता ही है। साथ ही बाह्यचार से मुक्त कर समत्व बुद्धि मार्ग दिखलाते हुए परमानन्द की अनुभूति में सहायक होगा।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 110–115

The Feminine Divine in Khajuraho : A Study of Apsarases and Their Association with Fecundity, Beauty, and Love

Dr. Sudhakar Deo
Guest Lecturer, Government College Chhapiheda, District – Rajgarh (M.P.)

Abstract :

The Khajuraho temples, known for their extraordinary artistic depictions of the divine, provide a rich tapestry of symbolism, particularly in their portrayal of apsarases. These celestial nymphs are central figures in Hindu and Jain iconography, embodying ideals of femininity, fertility, beauty, and love. This paper explores the representation of apsarases in the temples of Khajuraho as manifestations of the feminine divine. Going beyond their aesthetic appeal, apsarases serve as spiritual symbols intricately linked to concepts of fertility, beauty, and love. Employing an interdisciplinary approach that combines iconographic analysis, religious studies, and feminist theory, this paper examines how celestial nymphs embody sacred femininity and serve as cultural expressions of human desire, divine grace, and cosmic harmony in the medieval Indian temple tradition. This research explores the role of apsarases in Khajuraho's art, examining their representation of these divine feminine themes. Through an analysis of their form, symbolism, and contextual role in temple architecture, this paper investigates how apsarases bridge the earthly and the divine, acting as intermediaries between physical beauty and spiritual transcendence.

Keywords : Apsarases, Khajuraho Temples, Feminine Divinity, Sacred Femininity, Fertility Symbolism, Tantric Aesthetics, Spiritual Eroticism.

Introduction :

The temples of Khajuraho, built between the 10th and 12th centuries CE under the Chandela dynasty, are celebrated for their exquisite sculptures, many of which depict celestial female figures known as apsarases. These figures encompass both religious and secular life. Among these sculptures, the depiction of apsarases or celestial nymphs known for their beauty, grace, and association with

fertility, plays a significant role. These figures are more than decorative motifs; they are metaphysical symbols, linking the sensual and the spiritual, the earthly and the divine. In Hindu mythology, apsarases are divine beings who entertain gods and humans alike, symbolizing the epitome of femininity, love, and fertility. In Hindu and Jain traditions, apsarases are often seen as embodiments of ideal beauty, pleasure, and fertility. At Khajuraho, their presence weaves a narrative that celebrates life, love, and divine femininity. The Khajuraho temples immortalize these apsarases in stone, creating an enduring representation of the feminine divine (Dehejia 88).

This paper examines the portrayal of apsarases in the art of Khajuraho and their connection to themes of fertility, beauty, and love. By contextualizing these figures within the broader religious and cultural framework of the period, the research seeks to understand their role in temple iconography and their significance as embodiments of divine femininity.

Mythological Foundations of Apsarases :

Apsarases originate from the Vedic and Puranic traditions, where they are portrayed as celestial dancers and consorts of the gods. They emerge from the churning of the cosmic ocean (Samudra Manthan), a myth that itself represents a symbolic union of opposites to generate life and order.

In Hindu cosmology, apsarases are associated with Indra's court, embodying both desire and excellence. As Radha Chakravarty explains, apsarases show the conflict between spiritual discipline and worldly desire, which is a key theme in indian philosophy (Chakravarty 87). This duality is not merely narrative but also visually embodied in temple art, particularly at Khajuraho.

Apsarases in Hindu and Jain Iconography :

Apsaras have a long-standing presence in Indian religious tradition, particularly in Hinduism, where they are described in Vedic and Puranic texts. In these stories, apsarases are often depicted as beautiful, seductive women who dwell in the heavens and are sent to distract sages or mortals. Their association with water, fertility, and seduction links them to the life-giving and nurturing qualities of the feminine divine (Sundararajan and Mukerji 34).

In Jain iconography, apsarases are similarly depicted, representing spiritual beauty and purity (Sharma 49). In the context of Khajuraho, the apsarases are more than divine entertainers; they represent the life-giving forces of nature and the connection between human love and spiritual paramountcy. Their presence in the temples reflects the celebration of both the material and spiritual aspects of life, blending the physical beauty of the feminine form with deeper religious symbolism.

Apsarases as Visual Embodiments of Fertility :

At Khajuraho, apsarases are often shown in association with water, a potent symbol of fertility and creation in Indian culture. Their graceful postures and flowing garments echo the life-giving

properties of water, which was central to agricultural societies like the Chandela kingdom (Kramrisch 57). Many apsarases are portrayed as emerging from or standing beside water, underscoring their role as symbols of fertility.

The apsarases association with fertility is not only physical but also spiritual. In Hindu cosmology, fertility is not limited to the procreation of human life; it also symbolizes the creative force of the universe. Apsarases, as embodiments of this creative energy, bridge the earthly need for fertility with the divine act of creation. Their presence in Khajuraho temples suggests an glorification of this divine fertility, a wish for abundance and prosperity for the region and its people (Michell 102).

Khajuraho's apsarases often appear in tribhanga poses, adorned with lush ornamentation and framed by natural motifs like lotus flowers and creepers, which symbolize fertility and regeneration. These visual cues align the apsarases with prakriti, the life-giving force of nature in Hindu thought.

Their placement near or within garbhagrihas (sanctum sanctorums) or as part of larger narrative panels suggests that they sanctify the space, preparing it for union, both physical and spiritual. As Devangana Desai argues, "the eroticism of these figures is not profane, but part of a larger spiritual symbolism that celebrates the creative energy of the cosmos" (Desai 45).

The Aesthetic Theology of Apsarases :

In Indian aesthetics, the concept of rasa (emotional flavor) is crucial. The apsarases at Khajuraho embody s?ingara rasa—the mood of romantic and erotic love. Their sculpted forms, often caught in acts of bathing, adorning themselves, or dancing, represent idealized feminine beauty. Yet this beauty is not superficial; it serves a didactic and devotional purpose.

According to Kapila Vatsyayan, "The apsara is a metaphor for the inner beauty of the soul, which is revealed through art, devotion, and surrender" (Vatsyayan 112). By invoking pleasure and desire, these figures lead the devotee inward, guiding them through sensual appreciation toward spiritual elevation.

Beauty is not only a key theme in the portrayal of apsarases but also a spiritual metaphor. These celestial nymphs are shown in various graceful postures, performing everyday activities like applying makeup, adjusting jewelry, or playing with their hair. Such depictions align with the ancient Indian aesthetic tradition where outer beauty is seen as a reflection of inner harmony and spiritual perfection (Dehejia 91).

The apsarases beauty, however, is not merely ornamental; it functions symbolically. In Hindu philosophy, the material world, with all its beauty, is considered a reflection of divine perfection (satyam, sivam, sundaram—truth, goodness, beauty). By depicting apsarases as paragons of beauty,

the sculptors of Khajuraho highlight the connection between the physical and the metaphysical. The beauty of the apsarases thus becomes a reflection of the divine, illustrating the idea that true beauty lies in the harmony between body, mind, and soul. The apsarases, therefore, serve as aesthetic guides who draw the devotee toward higher truths through visual delight (Sundararajan and Mukerji 38).

Moreover, the depiction of apsarases in acts of self-adornment may represent the preparation of the soul for spiritual union. Just as the apsarases adorn themselves for the gods, the soul must be purified through devotion and spiritual practice to achieve union with the divine.

Love and Feminine Spirituality :

At Khajuraho, the presence of apsarases alongside mithuna (loving couple) sculptures reinforces the idea that love and union are sacred acts. Love, in its various forms, kama (desire), bhakti (devotion), and maitri (compassion), is celebrated as a path to moksha (liberation).

The temples do not isolate eroticism from religion; rather, they integrate them into a holistic spiritual worldview. As Stella Kramrisch notes, "The erotic imagery is symbolic of the blissful union of the soul with the Divine, a central concept in Tantric traditions" (Kramrisch 67). The apsarases thus become intermediaries, reflecting the Tantric idea that the body is a vessel for spiritual experience.

The apsarases at Khajuraho function as multifaceted symbols of love, encompassing physical desire, emotional intimacy, and divine union, reflecting a holistic conception of sacred femininity in temple art. Their eroticized representations in the Khajuraho temples are a testament to the Tantric influences that permeated the religious and artistic culture of medieval India. In Tantra, the body and its desires are not seen as obstacles to spiritual progress but as potential pathways to enlightenment. The eroticism of the apsarases reflects this Tantric worldview, where love and sensuality are understood as sacred experiences that can lead to spiritual awakening. Thus, the eroticized representations in the Khajuraho temples reflect the influence of Tantric thought, where sensual experience is a legitimate and even essential means of attaining spiritual realization (Kramrisch 63).

In many of the sculptures, apsarases are shown in intimate interactions with other figures, highlighting the theme of love and union. These scenes suggest that love, in all its forms, physical, emotional, and spiritual, is a fundamental part of the human experience and a key element in the journey toward divine understanding. These scenes are reinforcing the idea that love is a sacred bridge between the physical and the metaphysical. The sensuality of these figures is not in conflict with their spirituality; rather, it is an expression of divine love and unity (Sharma 58).

The temples of Khajuraho, through their depiction of apsarases, invite devotees to see love as a bridge between the earthly and the divine. By celebrating the beauty and sensuality of the feminine form, the sculptures encourage viewers to recognize the sanctity of love in its many dimensions.

Apsarases in the Architectural Context of Khajuraho :

The placement of apsarases within the architectural framework of the Khajuraho temples is also significant. They are often found on the outer walls of the temples, acting as transitional figures between the secular and the sacred and symbolizing the transition from the physical to the spiritual realms. As devotees enter the temple, they pass through layers of meaning, with the apsarases serving as guides from the material world of beauty and sensuality to the inner sanctum, where the divine resides. This outer layer, filled with scenes of beauty and desire, is meant to prepare the devotee for the inward journey toward the sanctum (Michell 118).

This progression mirrors the spiritual journey of the devotee, who must first appreciate and understand the material world before transcending it to achieve spiritual union. The apsarases, in this sense, act as intermediaries between the human and the divine, inviting devotees to embrace both the physical and the spiritual aspects of their existence. The apsarses function in this spatial design reflects the metaphysical idea that understanding and transcending material reality requires first engaging with it. As visual and symbolic agents, these figures embody the Tantric principle wherein the corporeal form becomes a means of transcending material existence, illustrating the spiritual potential inherent in embodied experience (Sundararajan and Mukerji 41).

Feminist Interpretations of Apsarases :

Conventional interpretations frequently cast apsarases as passive subjects of the male gaze. Contemporary feminist scholarship has increasingly re-evaluated their representation, positioning them instead as embodiments of female agency and cosmic potency. The assertive postures, self-possessed expressions, and prominent placement of these figures within temple iconography resist reductive readings and instead suggest their active participation in the sacred and metaphysical dimensions of temple life.

In this perspective, apsarases may be interpreted as manifestations of Shakti. Shakti means the vital, dynamic feminine energy that animates the cosmos in Hindu philosophy. Far from being ornamental or peripheral, they emerge as active, sensual, and divinely empowered figures as creators, enchantresses, and agents of spiritual force.

Conclusion :

The apsarases of Khajuraho are more than just beautiful celestial nymphs; they are powerful representations of the feminine divine. Their presence reflects an integrated worldview in which sensuality is not a distraction from the spiritual but a gateway to the divine. Their associations with fertility, beauty, and love are deeply symbolic and spiritually charged. Through their depiction in the temple art, these figures embody the divine feminine in all its complexity, representing both the

material and spiritual dimensions of life. Their connection to fertility highlights the life-giving forces of nature, while their beauty serves as a reflection of divine harmony. The sensuality of the apsarases, far from being a mere indulgence, is portrayed as a sacred expression of love, linking the earthly and the divine.

The integration of these celestial figures into Khajuraho's architectural and spiritual narrative affirms a worldview in which the material and the spiritual are deeply interconnected. By celebrating both the physical and spiritual aspects of femininity, the apsarases remind us that beauty, love, and fertility are not separate from the divine but are essential components of it. The feminine form, celebrated through the apsarases, becomes a site of devotion and revelation, offering insight into an Indian aesthetic where the sacred is encountered not by renunciation of the world, but through its deepest pleasures and truths. In this way, the art of Khajuraho continues to inspire and inform our understanding of the sacredness of life and the divine feminine.

References :

1. Chakravarty, Radha. (2008). *Feminism and Contemporary Indian Women's Writing.* London: Routledge.
2. Dehejia, Vidya. (1997). *Indian Art.* London: Phaidon Press.
3. Desai, Devangana. (1985). *Erotic Sculpture of India: A Socio-Cultural Study.* Delhi: Munshiram Manoharlal.
4. Kramrisch, Stella. (1946). *The Hindu Temple.* 2 vols. Delhi: Motilal Banarsidass.
5. Michell, George. (1992). *The Hindu Temple: An Introduction to Its Meaning and Forms.* Chicago: University of Chicago Press.
6. Sharma, Sunita. (2007). *"The Apsarases of Khajuraho: Art, Myth, and Devotion."* Journal of Indian Art History 19 (3): 45–68.
7. Sundararajan, K. R., and Bina Mukerji. (2003). *Tantric Visions of the Divine Feminine : The Ten Mahavidyas.* Albany : State University of New York Press.
8. Vatsyayan, Kapila. (1997). *The Square and the Circle of Indian Arts*. New Delhi: Abhinav Publications.

Email- sudhakardeobhu@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 116–123

From Fortune to Freedom : The Transformation in Anton Chekhov's 'The Bet'

Dr. Chitralekha
Associate Professor and Head, Department of English,
Maharaja Agrasen P.G. College for Women, Jhajjar-124103, Haryana

Abstract :

Anton Chekov's short story 'The Bet' presents a profound exploration of human values contrasting materialistic pursuits with the transformative power of knowledge leading to spiritual enlightenment. The narrative serves a powerful critique of materialism and the flawed belief that wealth can equate to happiness. Through the conflicting journeys of a banker and a lawyer, the story reveals how isolation, suffering and introspection leads to spiritual awakening. To decide whether capital punishment is humane or life imprisonment is a better option for crime and punishment, a young materialistically motivated lawyer lives in solitary confinement for fifteen years to wing two million rubbles from a rich banker. With passage of time, the banker deteriorates under the weight of material greed which leads him to contemplate murder, a testament to his complete moral degeneration.

But the lawyer undergoing a journey through reading of deep philosophical, religious, and classical texts sees the futility of wealth and embraces a life of spiritual liberation. 'The Bet' serves as a poignant critique of materialism, illustrating its capacity to corrupt and dehumanize. Conversely, it champions spiritualism as a path to true understanding and inner peace. The lawyer's spiritual liberation, through close reading and critical analysis reveals how Chekov critiques societal emphasis on wealth and portrays spiritual wisdom as the ultimate triumph of human consciousness. By critically examining the fates of the banker and the lawyer in the story 'The Bet', this paper presents a powerful philosophical and psychological aspects of transformation from materialism (money, pride, and competition) to the enduring power of spiritual enlightenment (personal growth and inner fulfilment). The manuscript accentuates the potential of an individual's rebirth by shedding of worldly attachments in favour of spiritual enlightenment.

Keywords : Isolation, wealth, moral decay, awakening, self-realization, philosophy

Introduction :

In this fast-developing society with increasing economic activities, it is the general perception that material goods and worldly possessions have significant impact on life satisfaction and are the source of our accomplishment and pleasure. "Materialism reflects the importance a consumer attaches to worldly possessions. At the highest levels of materialism, such possessions assume a central place in a person's life and are believed to provide the greatest sources of satisfaction and dissatisfaction in life" (Belk, 2001). This often leads the people to prioritize extrinsic goals such as fame, success, and recognition over intrinsic goals like personal growth, meaningful relationships, and contribution towards the society. The negative outcome of materialism in the form of envy, loneliness and social isolation cannot be ignored. It is very true that possession of worldly objects cannot give permanent and real-life satisfaction, the key to happiness (Nickerson et al., 2007; Pieters, 2013; Aftab et al., 2023). Materialism represents the possession or power to acquire things irrespective of it gives a true pleasure or not. A materialistic existence is short and unfulfilling.

Materialistic life is completely divergent from spiritualism. Spiritualism has a fundamental philosophical shift away from materialism towards a holistic view of happiness and life-satisfaction. This shift underscores the significance of balancing physical, emotional, and spiritual needs. Spirituality gives self-assurance and assists in fostering positive relationships with one's inner self and society with a feeling of harmony, reason, and pardon.

The emptiness of the life centred around material possessions and the true happiness of self-awakening leading to spirituality has been beautifully illustrated in the short story 'The Bet' (1889) written by a Russian author Anton Chekov. The story offers a compelling narrative that challenges conventional perceptions of value and meaning of life in a society where material wealth often defines success. The story is about the bet between a wealthy banker who argues that the death penalty is more humane and a lawyer who asserts that life imprisonment is the better option. The banker stakes two million rubles that the lawyer cannot endure fifteen years of imprisonment in solitary confinement.

The lawyer accepts the bet. The lawyer initially suffers from loneliness and even regrets the bet. But later he moves to study literature, philosophy, Gospel and theology. In the company of books, the lawyer undergoes a deep spiritual transformation, rejecting material wealth and worldly pleasures. As the bet is approaching its end, the banker loses all his fortunes and resolves killing the lawyer to avoid paying the bet which shows the decay of his morality. The lawyer leaves the lodge five minutes before the bet concludes, thereby forfeiting his claim to the money. The story portrays two contrasting journeys: the banker's descent into moral and financial decay and lawyer's ascent into spiritual enlightenment. The present study revisits 'The Bet' to explore the psychological and existential

consequences between the empty materialism and the enduring peace of spiritual realization. The work revolves around the themes of self-discovery, identity formation, and self-realization.

Analysis :

The Lawyer's and The Banker's Materialism

Chekhov's 'The Bet' presents a realistic view how pleasure for wealth affects our life. The story begins with a debate on capital punishment and life imprisonment which is a better option for punishment, where the young lawyer claims,

"To live anyhow is better than not at all" (*The Bet*, I).

The wealthy banker, out of anger and pride wagers two million rubles that the lawyer cannot live in solitary confinement for fifteen years. The young lawyer accepts the bet declaring:

"Agreed. You stake two millions, I stake my freedom," (*The Bet*, I).

At the start of the story, both the banker and the lawyer are governed by materialistic enthusiasms—one seeking wealth, the other demonstrating absolute power of wealth. The lawyer's acceptance of the bet and voluntarily subjecting himself to fifteen years of confinement reveal the fascination with the benefits that wealth could bring overshadowing the value of life. It shows the obsession for the money ignoring the cost. The story questions the pursuit of wealth over the freedom and life. Though the narrative is more than a century old but the myth that wealth equates happiness is relevant even today. Modern youth is taught to enjoy the life to the fullest but never guided how to lead a meaningful and purposeful life. The narrative motivates the readers to pursue meaningful goals and ambitions that align with their values and passions, rather than rushing after material goods for the sake of status. Through the lawyer's immediate proceeding for the bet, Chekov illustrates the folly of youth. The attorney would never have agreed so hastily if he had been older and wiser. The rich banker wagers frivolously asserting dominance of his wealth. Apart from materialism, 'The Bet' also reflects the power tussle between the rich and the poor. This power dynamic in the present-day society is prevalent in the form of social and wealth inequalities, racial and gender discrimination, and limited opportunities available for marginalized groups.

The Banker's Ethical and Financial Decline :

Parallel to the lawyer's ascent is the banker's decay. The banker remains captivated by his greed and materialism. But due to reckless speculation and gambling his vast fortune is vanished over the fifteen years and is now on the verge of bankruptcy. In despair, the banker contemplates murder to evade honouring the bet, a testament how materialism erodes morality and how his identity and self-worth are inextricably tied to his wealth. His internal turmoil is evident when he says:

"He will take away my last farthing, marry, enjoy life, gamble on the Exchange, and I will look

on like an envious beggar and hear the same words from him every day: 'I'm obliged to you for the happiness of my life. Let me help you.' No, it's too much! The only escape from bankruptcy and disgrace—is that the death of this." (The Bet II)

"If I had the pluck to carry out my intention," thought the old man, "suspicion would fall first upon the watchman."

Presenting the decay of the banker, Chekhov illustrates the futility of wealth and moral emptiness of the life centred solely around material possessions. The author again urges the readers to question the true source of happiness in a world dominated by materialism.

Intellectual and Spiritual Progression of the Lawyer :

Chekhov meticulously details the stages of the lawyer's transformation from valuing money to renouncing it completely. The journey reflects a shift in his values and priorities with the progress of his imprisonment. Initially, the lawyer indulges in materialistic pleasure and comfort. He asks for books of a light character stories of crime and fantasy, comedies, and so on. Chekhov notes :

"In the first year… he suffered from loneliness and depression… then he took only to eating and reading." (The Bet I)

At first, the lawyer is abstaining from wine and tobacco but in the fifth year, he starts drinking wine and playing music. He is often seen talking angrily to himself and weeping. The narrative illustrates that living in isolation away from the society has its own adverse effects also. From the mid of sixth year of the imprisonment, the lawyer's reading habits shifts to philosophy, history, and science.

"In the sixth year, the prisoner began zealously studying languages, philosophy, and history."

In the space of four years, he has gone through about six hundred volumes and learnt six languages. The banker received the letter from the prisoner mentioning: "My dear gaoler, I am writing these lines in six languages" (The Bet I).

Gradually, he turns inward, focusing almost exclusively on theology:

"In the last two years of his confinement the prisoner read an immense quantity of theology."

The learnings make him to renounce material possessions and earthly pleasures, culminating in the letter where he declares :

"I despise freedom and life and health, and all that in your books is called the good things of the world… I renounce the two million" (*The Bet*, II).

The lawyer's fifteen years of solitude lead him to profound introspection and self-discovery. He is proficient in 6 languages, studies theology, and understands human thought and civilization's greatest achievements. In his intellectual journey the lawyer seeks knowledge, wisdom, profound inner freedom and spiritual enlightenment rather than longing for physical pleasures or material goods.

He asserts that the knowledge he has earned has exposed the illusory nature of material possessions. He voluntarily subjects himself to fifteen years of isolation, only to emerge with a deep disdain for the money he once coveted. His voluntary confinement which is initially driven by the promise of immense, wealth a means to achieve happiness, becomes a vehicle for self-discovery rather than punishment, motivating the human kind to find higher meaning of life beyond material satisfaction. His time in confinement allows him to explore the depths of human knowledge and spirituality, ultimately leading him to the realization that material wealth is hollow and insignificant compared to the richness of intellectual and spiritual fulfilment.

The culmination point of the story is the lawyer's leaving of the confinement just before winning the bet and renouncing his reward. This voluntarily forfeit of the bet at the story's end symbolizes the rejection of greed, emphasizing the value of spiritual and intellectual freedom over material gain. The spiritual fulfilment of the lawyer positions him morally superior figure compared to the banker, who, in contrast, has become a desperate and corrupted individual clinging to his dwindling fortune. A wise person in his situation would likely renounce the bet, as the lawyer does, to demonstrate that true enlightenment and contentment cannot be bought or measured by monetary gain. This evolution reflects Chekhov's belief that inner spiritual development holds far greater importance than external wealth.

Through the story The Bet, Chekhov's presents the high cost of attaining self- knowledge. The lawyer spends 15 years of his youth to decide if imprisonment is ethically worse than death, but the banker risks only 2 million. In other words, the confinement is a kind of investment for the lawyer to acquire self-awareness. His bony skeleton and dreadful appearance looking much older than his age shows how much this exploration has cost him. Interpreting Chekhov, Borny (2006) also contends that humanity is both amazing and tragic.

In the end after reading lawyer's letter kept on the table, the banker has also the feelings of scorn and weeps :

"Tears and remorse, mingled with shame, oppressed his heart."

Literary Devices and Themes :

The following literary devices were used by the author to emphasize these different themes:

- The Bet: Represents materialistic obsession but failing to provide inner peace and self-awareness
- Books: true companion, source of knowledge, wisdom and spiritual enlightenment during lawyer's isolation
- The Cell: symbolizes place for confinement not as a punishment but to attain self-realization

of the lawyer

- Isolation and Self-awareness: isolation in confinement provides the lawyer an opportunity for self-introspection and self-awareness
- Imagery: lawyer's heath deterioration, shedding of earthly attachments reflecting cost for spiritual transformation
- The Letter: Represents renunciation of materialism and embrace of spiritual enlightenment

Discussion :

"Man is what he believes." This famous line by Anton Chekov captures the essence of his short story the Bet, where belief, suffering and self-discovery lead to profound transformation from materialism to spiritualism emphasizing the transient nature of material wealth and enduring significance of intellectual and spiritual pursuits. One needs space, time and alienation form the society to attain knowledge, wisdom and self-awakening. In the story The Bet, solitude provides the required necessary space and isolation to the solicitor for self-realization and spiritual growth permitting him to shed away his previous bearings and belief and challenge the deeper truths of his existence. Lord Buddha could also achieve spiritual enlightenment living in isolation. Detaching yourself from *all* thoughts and worldly objects create a state of tranquillity which is conducive to ultimate self-understanding or enlightenment. Buddhist teachings also stress on self-purification to attain enlightenment (bodhi) and liberation (nirvana). The mind is the primary tool for this process. through the cultivation of mind. Equanimity and cultivation of mind with virtue, concentration, and wisdom result in overcoming the negativity and achieving eternal peace and transcends happiness. Research has shown that meditation and being more 'mindful' has beneficial effects for a range of conditions. Shalghin (2025) underscores the dual nature of isolation. Isolation leads alienation, despair, and a loss of human connection but is capable of fostering self-discovery and spiritual enlightenment.

Chekhov's "The Bet" can be interpreted in the light of intertextuality of Holy Kuran especially in the lawyer's letter abandoning the bet money (Abdollahvand, 2022). "The bet serves as a metaphor for the human condition, questioning the very foundations of what it means to live a meaningful life" (Smith, 2017). Sweeti and Sharda (2024) illustrates that inadequacy of wealth for achieving happiness and fulfilment portrays the isolation, disillusionment, and existential crises that often accompany the relentless pursuit of material success. The lawyer's rejection of materialism and consequent spiritual enlightenment aligns with the basic philosophy found in almost all religions and holy books. Moreover, his transformation and deep insights remind us figures like Jesus Christ, emphasizing the redemptive power of suffering and introspection. Goswami Tulsi Das has also described that contentment is far superior than possession of worldly objects. गो धन गज धन बाजी धन और रतन धन खान जब आवे

संतोष धन सब धन धूरि समान "Cow wealth, elephant wealth, horse wealth, and a mine of jewels; when contentment arrives, all wealth is like dust."

The character of lawyer reveals the emptiness of worldly desires and the enduring power of spiritual enlightenment. Through lawyer's voluntary renunciation of wealth and the banker's moral collapse, Chekov shows that true fulfilment lies not in possessions but in the growth of the spirit. The narrative offers a powerful reflection on the deeper meanings of life and challenges the readers to reconsider the true value of wealth and the human cost of materialism.

The intellectual pursuits, personal fulfilment, and power dynamics are the issues that continue to challenge and shape the lives of young people today (Bagui and Kumari (2023).

The author has kept the story open-ended and leaves for the reader to consider the ramifications of the acts of the banker and the lawyer. Does the lawyer after spiritual awakening spend his days in happiness? Is the banker not feeling remorseful about robbing a young lawyer of so many years? Does the banker live a guilt-free life and realize the emptiness of materialism?

Conclusion :

Anton Chekhov's "The Bet" is a powerful narrative in which suffering and solitude lead to spiritual awakening. The lawyer enters the bet motivated by material gain but renouncing world objects emerges spiritually transformed while the banker, clinging to wealth, is left morally bankrupt. By juxtaposing the moral trajectories of the banker and the lawyer, Chekhov reveals a perpetual truth that the material possessions are futile and temporary compared to the enduring wealth of the mind and spirit. The story critiques the values of a materialistic society and presents spiritual as the highest achievement of human existence. "The Bet" remains contemporary encouraging the readers to search for the essence of a meaningful life beyond mere material success.

References :

1. Aftab, R., Khattak, S.G., Fernandes, L.P. and Thomas, A. (2023). The role of materialism in life satisfaction: An empirical investigation of university students. *Journal of Survey in Fisheries Sciences* **10** (4S): 2503-2510.
2. Bagui, D. and Kumari, V. (2023). Plight of the Youth in Anton Chekhov's "The Bet". *The Literary Herald* **9** (1): 28-33.
3. Belk, R. W. (2001). Materialism and you. Journal of Research for Consumers. Issue1: 1-14. https://jrconsumers.com/academic_articles/issue_1/Belk_.pdf
4. Borny, G. (2006). Interpreting Chekhov. ISBN 1 920942 67 X (pbk.). ISBN 1 920942 68 8 (online) Published by ANU E Press, The Australian National University, Canberra ACT 0200,

Australia.

5. Chekhov, A. (1979). The Bet (C. Garnett, Trans.). In R. E. Matlaw (Ed.), Anton Chekhov's short stories (pp. 131 138). Norton. (Original work published 1889) https://ga01000549.schoolwires.net/cms/lib/GA01000549/Centricity/Domain/1545/The%20Bet.pdf
6. Chekhov, A. (1915) The Bet and other stories (S. Koteliansky and J.M. Murry, Trans.) John W. Luce & Co. BOSTON https://www.gutenberg.org/cache/epub/55283/pg55283
7. Karlinsky, S. (1997). Anton Chekhov's Life and Thought: Selected Letters and Commentary. Northwestern University Press, https://nupress.northwestern.edu/9780810114609/anton-chekhovs-life-and-thought/
8. Magarshack, D. (1953). Chekhov: A Life. Grove Press, New York. ISBN 0-8371-4095-1 https://archive.org/details/chekhovlife0000maga/page/6/mode/2up
9. Nickerson, C., Schwarz, N. and Diener, E. (2007). Financial aspirations, financial success, and overall life satisfaction: who? and how? *Journal of Happiness Studies* **8**: 467-515.
10. Pieters, R. (2013). Bidirectional dynamics of materialism and loneliness: Not just a vicious cycle. *Journal of Consumer Research* **40**: 616-631, doi.org/10.1086/671564.
11. Shalghin, A. (2025). Isolation, Loneliness and Identity: A Literary Exploration. *World Journal of English Language* **15** (4): 301-316.
12. Smith, J. (2017). Isolation and Honor in Chekhov's 'The Bet'. *Russian Literature Review* **9** (1): 92-98.
13. Sweeti, M. and Sharada, Y.S. (2024). Chasing shadows: The futility of wealth in Chekhov's The Bet and Etgar Keret's The Birthday of a Failed Revolutionary. *Journal of Emerging Technologies and Innovative Research* **11** (9): a563-a567.
14. Zahra, A. (2022). Intertextuality of Chekhov's "The Bet" with the Quran. *International Journal of Applied Linguistics and Translation* **8** (1): 24-30. doi: 10.11648/j.ijalt.20220801.14

Chitralekha1969@gmail.com
9811481358

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 124–127

Dastangoi : Oral Storytelling in Contemporary Theatre

Rakesh Ojha
Research Scholar, Department of Indian Theatre, Panjab University, Chandigarh.

Abstract :

Dastangoi is the art of Urdu storytelling. Its origins are in the Persian epic tradition, and it has flourished in the Indian subcontinent in various royal courts before its decline in the 20th century. This paper is centered on the revival of dastangoi in the contemporary Indian theatre by artists such as Mahmood Farooqui and Danish Husain. It offers a brief, historical view of the dedicated dastangoi festivals and spaces in the contemporary indian theatre. Issues regarding fusion and heritage of the Urdu literary tradition are mentioned. The paper concludes with the future of dastangoi as a distinctive and emergent Indian performative tradition.

Keywords : dastangoi, storytelling, oral tradition, Urdu literature, Indian theatre

Introduction :

Dastangoi is a performative art that has undergone a revival in 21st-century Indian theatre. Meaning “to tell a dastan (epic tale)", dastangoi is an Urdu form of long storytelling, the tradition of which has its origin in Persia and came to the Indian subcontinent centuries ago. Thriving in various Indian courts for centuries and acquiring its specific Indo-Persian character, dastangoi in the wake of Indian independence, became a dying art. Nonetheless, the early 2000s witnessed attempts at reviving this evocative art form by Indian theatre practitioners such as Mahmood Farooqui and Danish Husain. Their revivalist dastangoi shows across the metros played a pivotal role in reigniting interest in the oral tradition, and they have gone on to train a new generation of artists as well as take the tradition forward, exploring new content and fusions.

While centering this research on dastangoi’s trajectory in the context of modern theatre, it is important to briefly on its historical evolution and structural essentials. A look at the themes, the artists, and the spaces supporting dastangoi today makes it clear why it remains a figure of the imagination. The study consequently also explores the future promise and trials of the dastangoi

revivalist movement in the midst of contemporary Indian performing arts in the 21st century.

Historical arc of dastangoi :

Dastangoi has its roots in a Middle Eastern tradition of storytelling that was transferred to the Indian subcontinent by the conquering Persians in the early 13th century. These epic oral performances of the bards entertained various courts with stories of episodic heroes, either historically based, mythological, or romantic, in a large variety of stories from Persian epics called Dastan, roughly similar to a "grand epic". The Persian element entered Indian poetic stylistic traditions and mixed with local elements under the Delhi Sultanate and in the Mughal courts.

Mughal emperors, such as Akbar, were benefactors of such storytelling, and performances could last for several nights(Pritchett, 2000). Leading Urdu poet Mir Taqi Mir notes in his 18th-century memoirs that when professional dastangos appeared in the courts of noble houses, they would read stories dressed in resplendent robes and recount tales like “Tilism-e-Hoshruba” (Enchantment of Senses), holding court audiences fascinated (Sajjad, 2014).

In the post-independence period in India, when Urdu lost state patronage, Muslim royal patronage also ceased to exist for arts like dastangoi, and it rapidly went into decline. Dastans, that one was a theatre of the people, moved to the old Muslim quarters, which were pushed to the back alleys of urban centres for lack of patrons after independence. Without courts to serve, professional storytellers found themselves on the radio or in new jobs in independent India due to a lack of listeners.

Contemporary art and literature scholar Mahmood Farooqui’s seminal 2006 essay ‘Field Notes on Dastangoi’ states that during this time, dastangoi was being treated as ‘low art’ with a handful of persistent practitioners who were with limited shows at Id festivals or Urdu conferences being put on for buildings full of nostalgic audiences(Farooqui, 2006). The once-appreciated art form found its elite patrons vanishing, as did the diasporic listeners, while Urdu itself faced an identity crisis after Partition.

Dastangoi in Contemporary Theatre :

The 21st-century revival of dastangoi by Mahmood Farooqui and Danish Husain has managed to attract support from renowned cultural institutions for mounting performances, archival projects, and special training workshops. Literary Festivals such as Jaipur Literature Festival, Galle Literary Festival have programmed special dastangoi sessions, threading it into mainstream Indian theatre programming. India International Centre, which had invited revival shows in the past, however has thrown open its gates for young exponents to stage full evenings of dastangoi for member audiences. Even state cultural institutions like the Sahitya Kala Parishad offer infrastructure support for special productions (like a dramatic portrayal of the life of poet Ghalib).

Students of Farooqui and Husain's intense training workshops have cemented dastangoi in a higher league, via the creation of collectives such as Karwan-E-Adab, The Dastangoi Collective, and summer youth clubs. They use social media for a specific event-related promotion and share digital recordings to effectively reach a larger audience. Special themed productions, such as supernatural tales or adventure sagas, cater to fans of those genres, and writing workshops bring the next generation of talent into the performance content creation field.

However, after independence, dastangoi dwindled when courtly patronage ceased and mass audiences changed, and the form took a rapid nosedive. By the 21st century, a little-known fading folk art reappeared in remnants at Urdu conferences, with few elderly practitioners living in Delhi. This is why the committed revival efforts of writer-directors Mahmood Farooqui and Danish Husain are valuable for the resurrection of dastangoi's theatrical plenitude. After years of archival scholarship and training from ustads, they developed modern adaptations that communicate the potent emotional effects of this oral tradition.

Conclusion :

The paper has mapped the spaces where dastangoi's revival is being sustained along the contemporary arts scene, from festivals to dedicated clubs that facilitate young talent. Practitioners are actively changing vocabulary and styling to try to pull in broader audiences beyond the niche aficionados. Critical analysis, however, foregrounded the on-ground realities: around access barriers, communal perceptions, and economic obstacles that continue to restrict dastangoi's horizons of mass spread. With systematic learning at the feet of ustads and intense archival research, the new wave of performers is creating contemporary presentations that explode the emotive potential of this oral mode. At this critical juncture in our democracy and civilizational existence, we can say that Dastangoi finally symbolizes how artistic collaborations nourished by progressive solidarity will always keep pulsating India in the throes of its civilizational syncretism.

References :

1. Farooqui, M. (2006). Field Notes on Dastangoi. Economic and Political Weekly, 41(18), 1747-1752.
2. Farooqui, M., & Kazim, M. (2012). Daastangoi. Rajkamal Prakashan.
3. Jahan, I. (2021). Orality and Performance: A Study of the Revival of Dastangoi. Notion Press.
4. Pritchett, F.W. (2000). Nets of Awareness: Urdu Poetry and Its Critics. University of California Press.

5. Sajjad, S. (2014). Dastanoviyan-i Delhi: The Storytellers of Delhi and the Re-invention of Dastangoi under British Rule (c.1803-1947) (Doctoral dissertation, University of Warwick).
6. Scholes, R. (2011). The Crafty Reader. Yale University Press.
7. Shankar, U. (2000). Meri Awaaz Suno. Harper Collins.

Mob. 9988125805

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 128–131

हिन्दी कहानी में स्त्री सरोकार : इक्कीसवीं सदी के परिप्रेक्ष्य में

डॉ रम्या एल.
असिस्टेंट प्रोफसर, श्री अय्यप्पा कॉलेज, इरमल्लिक्करा।

साहित्य के विभिन्न विभागों में सर्वाधिक लोकप्रिय और महत्वपूर्ण विधा है कहानी। कहानी में जीवन का कठिन यथार्थ ही प्रतिबिंबित नहीं होता बल्कि टूटते मानव मन की उन अजनबी दुनिया से भी हम परिचित होते हैं जो अमूमन दिखती नहीं। आज हम समय के उस मोड़ पर है जब जीवन के पुराने सारे प्रतिमान तेजी से या तो बदल रहे हैं या बिगड़ रहे हैं। बदलते समय में कहानी का सच भी बदला है और शिल्प भी। इसका उत्स भी बदला है और आधार भी। इक्कीसवीं सदी के हिंदी कहानीकारों ने समय की मांग के अनुसार हिंदी कहानी का रूप रंग बदल दिया है। कहानी की इस विकास यात्रा में महिला कहानीकारों का योगदान स्मरणीय हैं। नमिता सिंह, अल्पना मिश्रा, वंदना राग, कविता, नीलाक्षी सिंह, मनीषा कुलश्रेष्ठ, शर्मिला बोहरा जालान आदि हिंदी कहानी साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर हैं।

समकालीन महिला कहानीकारों में अल्पना मिश्रा का नाम विशेष उल्लेखनीय है। 2006 में प्रकाशित उनका कहानी संग्रह 'छावनी में बेघर' काफी चर्चित हुई है। उनकी कहानियों में स्त्री की अनकही वेदना, अनकहा सुख बड़ी गहराई से उतरता है। कहानियों की बुनावट, भाषा की कसावट और कम कहकर अधिक समझा देने की कला अद्भुत है। पुरुष मानसिकता की सूक्ष्म विवेचना से अल्पना जी उन पुरुषों के मुखौटे उतार लेती है जो स्त्रियों की स्वतंत्रता और उड़ान को स्वीकार नहीं कर पाते हैं। उनकी स्त्री कहानियाँ स्त्रियों की जद्दोजहद, उनकी स्थितियां–परिस्थितियां, उनके सुख–दुःख और उनके हक की लड़ाई के लिए विशेष समर्पित हैं। स्त्री की बात करते हुए अल्पना जी उसमें पूर्णतः डूब जाती है, चाहे वह छोटी उम्र की हो या बड़ी उम्र की। बेटियों से स्पष्ट बातें कहने का अस्पष्ट तरीका उनकी उल्लेखनीय शैली को एक विशिष्टता प्रदान करती है। उन्होंने अपनी कहानियों में सब कुछ स्पष्ट नहीं करते लेकिन उनसे सब कुछ स्पष्ट होते हैं। उनके शब्दों में 'सब कुछ कहा नहीं जाता, बहुत कुछ अंडरस्टुड होता है। स्त्रियों की जिंदगी की छोटी–छोटी बातें उनके भावनात्मक संसार की कितनी बड़ी–बड़ी बातें हुआ करती हैं, यह उनकी कहानी में चित्रित होता है। इसका उदाहरण है उनकी कहानी 'मुक्ति'।

लेखिका की कहानियाँ आम जीवन के बीच से आती हुई आम कहानियाँ हैं। इन कहानियों की खास बात भी बिल्कुल आस है कि ये हमारे ही आमने–सामने, पास पड़ोस और हमारे ही बीच की कहानियाँ हैं। इन

कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनमें जीवन की विद्रूपताऐं चित्रित की गयी है। ये विद्रूपताएँ जीवन का अभिन्न अंग है, जिनके साथ हमारी जिजीविषा अपना स्थान निर्धारित करके निर्बाध रहती है। वे सिर्फ 'स्त्री विमर्श' का झंडा लेकर नहीं चलतीं। आस–पास की जिंदगी, सामाजिक सरोकारों के प्रति भी उनका चिंतन व्यक्त होता है। 'मिड डे मील', 'तमाशा', 'लिस्ट से गायब' आदि इसी श्रेणी की कहानियाँ हैं। मिड–डे–मील सामाजिक विद्रूपताओं को उकेरती हुई एक मर्मस्पर्शी कहानी है। यह किसी एक विद्यालय की कथा नहीं है। लगभग सभी सरकारी स्कूलों और सभी मिड डे मील की दुर्व्यवस्था है। सरकारी स्कूल और सरकारी अस्पताल की पोल खोलती यह कहानी सच की जमीन पर खड़ी हो जाती है। गंदगी से भरा हुआ जनरल वॉर्ड, जानवरों की तरह मरीजों एवं उनके संग आये बीमारियों के साथ दुर्व्यवहार आदि सरकारी प्रयासों को बेनकाब करते हैं। इस तरह अव्यवस्थित तरीके से स्कूल चलाया जा रहा है और गरीबी से जूझते लोगों द्वारा बच्चों को पढ़ाना या आकस्मिक दुर्घटना से जूझना कितना कठिन है इन सब का चित्रण कहानी में है।

'तमाशा' में अल्पना जी ने एक महिला कॉलेज के प्राइवेट परीक्षार्थियों के वाइवा का चित्रण किया है। कहानी में औरतों का जीवन चित्रित हो गया है। उन औरतों का जो परीक्षार्थी हैं. उन औरतों का जो परीक्षिकाएँ हैं। स्त्री के आगे बढ़ने की जद्दोजहद को चित्रित करती हुई अल्पना जी यह बताती हैं कि औरत होने की परेशानी और फायदे किस तरह एक साथ चलते हैं। साथ ही उघड़ता है परीक्षकों का चेहरा, परीक्षा व्यवस्था की खामियां और अंक दिए जाने की प्रचलित कुप्रथा। एक औरत की महत्वाकांक्षा और अस्मिता की स्थिरता के लिए किए जा रहे प्रयास को रेखांकित करती 'लिस्ट से गायब' कहानी औरत होने के सच से, औरतों को घर में दिए जाने वाले त्रास से भी रू–ब–रु करती हैं और नौकरियों के लिए साक्षात्कार में चलने वाले खेल को भी उघाड़ती है।

छावनी में बेघर उनकी बेहतरीन कहानियों में से एक है। युद्ध की तनावपूर्ण और निराश मन स्थिति में एक सैनिक पत्नी के मानसिक त्रास, असुरक्षा और विवशता का चित्रण लेखिका ने बहुत बारीकी, सुघड़ता और मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है। यह कहा जा सकता है कि स्त्री भावों मनोभावों की मनोवैज्ञानिक पकड़ अल्पना की कलम को है। छोटे–छोटे वाक्यों, संक्षिप्त कथन द्वारा विस्तृत अभिव्यक्ति कल्पना की कहानियों की विशिष्टता है। यह शैली उनकी कथा को एक मजबूत कसावट प्रदान करता है।

हिन्दी की वर्तमान महिला कहानीकारों में कविता का नाम उल्लेखनीय हैं। उनका कहानी संग्रह 'उलटबाँसी' जीवन में आए आधुनिक परिवर्तन को शिद्दत से रेखांकित करता है। जीवन के कठिन यथार्थ, पीढ़ियों के वैचारिक मुठभेड़ को इस संग्रह में देखा जा सकता है। बदलते समय में स्त्रियों की भूमिका बदल रही है। आज हालात इतने तो यकीनन बदले हैं कि स्त्रियों ने वक्त से लड़ना सीख लिया है। लेकिन वक्त का नया चेहरा भी स्त्रियों के लिए सगा नहीं है। बहरहाल, स्त्री विमर्श के कुछ नए मोर्चे कविता की कहानियों में खुलते हैं। संग्रह की प्रतिनिधि कहानी 'उलटबाँसी' जो मूल्य सम्प्रेषित करती है, भारतीय पारिवारिक संदर्भ में वह आज भी सनसनी जैसा लग सकता है। भारतीय पारिवारिक परिवेश में माँ सबकी खुशी बनकर जीती हैं। माँ आज भी बच्चों की खुशी में खुद को भूलकर जीती है। लेकिन जब वह खुद जीना चाहती हैं, तब एक माँ की पारंपरिक शहीदी छति जरूर टूटती है। अकेलेपन से ऊबी, टूटी माँ की सिसकी घर–घर से सुनी जा सकती है। उपेक्षा, अपमान और अकेलेपन की त्रासदी जब असह्य हो जाती है तब माँ का अशेष धैर्य यहाँ शेष हो जाता है। इस परिवेश पर कहानी की रचना की गई हैं।

संग्रह की अन्य कहानी 'आशियाना' आधुनिक समाज की वैचारिक, व्यावहारिक विसंगतियो को लेकर बुनी गई हैं। घर टूटने से पहले घर की औरतें टूटती हैं। 'घर' दरअसल, स्त्री की आकांक्षाओं और अभिलाषाओं का ठिकाना होता है। इसे वह हर हाल में बचाना चाहती है। परिवर्तन के इस दौर में परिवार का स्वरूप निस्संदेह बदल रहा है। 'लिव इन रिलेशनशिप' की अवधारणा भारतीय पारिवारिक संदर्भ में नवीन हस्तक्षेप है। 'आशियाना' कहानी इस फैमिली कॉन्सेप्ट को लेकर लिखी गई है। आधुनिकता और प्रगतिशीलता के इस समय में बिना शादी किए साथ रहना कोई अजीब बात नहीं है। महानगरी जीवन का यह सच विडंबनाओं और विदुपताओं से घिरा है। सीमा और मुकुल बगैर शादी के साथ–साथ रहते हैं, लेकिन हर पल इस रिश्ते को ऐसी चुनौती मिलती है कि इसका वजूद थरथरा उठता है। आसपास की निगाहों से उठते शक और सवाल आजीवन इनका पीछा करते हैं। इनकी विवशता यह है कि किराये का मकान प्राप्त करने के लिए इन्हें किसी न किसी को साथ रखना पड़ता है। संकीर्ण क्षुद्र मानसिकता से हर पल ये बिंधते रहते हैं, जूझते रहते हैं।

आज प्रेम की मौलिकता खतरे में है। स्वतंत्रता की बात जितनी होती है, प्रेम पर पहरा उतना ही अधिक होता है। भौतिकता की आंधी से प्रेम की नैसर्गिक शक्ति को बार–बार चुनौती मिली है, लेकिन प्रेम हर चुनौती से उभर जाता है। जब जब इसे सीमा में बांधा गया, समस्याएं पैदा हुई हैं। 'जिरह : एक प्रेम कथा' और 'डर क्यों लगता है' दोनों प्रेम को विषय बनाकर लिखी गई कहानियाँ हैं। पहली कहानी में टुकड़ा–टुकड़ा हुआ प्रेम का चित्रण है। इसमें प्रेम का मुकम्मल रूप प्रकट नहीं हो पाता है। दूसरी कहानी में प्रेम का अलग रूप प्रकट होता है। दानिश प्रेम में डूबा वह इंसान है जो प्रेम को एक नई ऊंचाई देता है। वह प्रेम के एक ऐसे सरोकारों में जीता है जो उसे वाकई ऊंचा उठा देते हैं।

'बिंदी री बिंदी, दरकते टूटते प्रेम और विश्वास की व्यथा कथा है। प्रेम, जाति और धर्म से परे है। लेकिन जब प्रेम का नैसर्गिक स्वरूप बिखर जाता है तब प्रेम पर सवाल उठने लगते हैं। इस कहानी में राहुल और आयशा प्रेम की सभी दीवार लांघकर एक होते हैं, लेकिन अंततः दोनों के बीच कई–कई दीवार खड़ी हो जाती हैं। आयशा शादी के बाद मायके से दूर हो जाती है और ससुराल में चाह कर भी लोगों के करीब नहीं हो पाती है। इसके बावजूद राहुल उसे फर्ज निबाहने की बात करता है तो वह फट पड़ती है और वह भी किस हौसले से मैं सारे फर्ज निभाऊं। पापा जी ने आज तक मेरा दिया दूध या पानी का गिलास नहीं हुआ। माँ का पूजा घर आज भी मेरे लिए नो मैन्स लैंड ही है। रिश्तेदारों–पड़ोसियों की कनफूसियाँ आज भी मुझे देखकर बंद नहीं होती। साफ–साफ कहूं तो हर रिश्ते में एक फांक है, अकेली में कैसे भर पाऊंगी इसे?' विकास के इस अनहद शोर में हम अपने मन की बात नहीं सुन पाते हैं। यह एक संकट है।

कविता की कहानियाँ आज के समय की विडंबनाओं और विद्रूपताओं को संवेदनशीलता से उठाती हैं। आज के समय में हम भावात्मक रूप से किस तरह बॉटे बिखरे हैं, यह इन कहानियों का मुख्य दर्द है। व्यक्तिगत अहं का विस्तार और सोचने की हद का निरंतर सिमट जाना आज के दौर की बड़ी त्रासदी है। संग्रह की सभी कहानियों में कविता ऐसे सवालों से टकराई हैं जो वर्तमान जीवन का सच है।

वंदना राग इक्कीसवी सदी की एक महत्वपूर्ण कथाकार हैं। 2010 में प्रकाशित उनका कहानी संग्रह है 'युटोपिया'। प्रस्तुत कहानी संग्रह नए मूल्य और मान्यताओं के साथ मानव मन के अन्तर्द्वन्द्वों, अंतःसंघर्षों को सामने लाता है। संग्रह की शीर्षक कहानी बिल्कुल प्रासंगिक है। सांप्रदायिकता समाज की सारी रचनात्मक सोच

और शक्ति निचोड लेती है, लिहाजा समय की जड़ता और बर्बरता बढ़ जाती है। 'यूटोपिया' कहानी इस बर्बरता का गवाह है। संग्रह की 'कबिरा खड़ा बाजार' में कहानी में शिल्पगत नवीनता के साथ विभिन्न धर्मों की सिमटते वैचारिक हदों को बड़ी बारीकी से दिखाया गया है। धर्म के निरंतर संकीर्ण सीमित होते दायरे मनुष्यता को विकसित नहीं होने देते। कहानी में एक मृत औरत के अंतिम संस्कार को लेकर इस कारण विवाद शुरु हो जाता है कि उसकी जातिगत पहचान संदिग्ध है। हिंदू और मुस्लिम दोनों कौम के लोग उसे कुछ प्रमाणों के साथ अपने कौम का साबित करते हैं। वर्तमान समाज में जो सांप्रदायिकता कायम है, उस पर पर्याप्त प्रकाश डालने में कहानी सफल हुई है।

'शहादत और अतिक्रमण' कहानी में समय के साथ नए पारिवारिक मूल्यों के सृजन का सुखद एहसास है। कथानायिका मुन्नीसिंह की आबाद जिंदगी उस वक्त तबाह हो जाती है जब उसका फौजी पति कारगिल में शहीद हो जाता है। विधवा मुन्नी सिंह को अपने पति के द्वारा बनाए गए एकमात्र नॉमिनी और सरकारी सहायता के रूप में प्राप्त होने वाली राशि को लेकर परिवार में जो तनावपूर्ण स्थिति उत्पन्न होती है, उससे वह सहज रूप में स्वीकार नहीं कर पाती। जीती जागती मुन्नीसिंह कठपुतली बना दी जाती है। लेकिन वह कठपुतली बनते–बनते भी खुद को तलाशती है। परिवारवालों से उनकी स्वार्थपरता और धन लोलुपत्ता को देखकर इस कदर नाराज हो जाती है कि वह न चाहते हुए भी अपने गांव के एक युवक रमेश सोनाने के साथ अपने श्वसुर का घर छोड़कर चली जाती है। वैधव्य मुन्नीसिंह के मन में भौतिकता के प्रति एक विराना पैदा करता है, लेकिन मुन्नीसिंह खुद के पति एक राग पालकर चलती है जो अंततः उसे एक निर्णायक मुकाम तक से जाता है। जिंदगी की एकरसता से ऊबकर मुन्नीसिंह ऐसा रास्ता ढूंढती है जहाँ वह खुलकर सांस ले सके और खुद को जी सकें। यह कहानी स्त्री मन के विविध आयागों को खोलती हैं।

अपनी कहानियों में वंदना ने उन विषयों पर भी दृष्टिपात किया है, जो अक्सर समाज का एक महत्वपूर्ण हिस्सा होने के बावजूद लेखकीय उपेक्षा का शिकार हो जाते हैं। ऐसी कुंठित, वैचारिक द्वंद्व और पारिवारिक संबंधों में आने वाले तनाव को शब्दबदध करने में वंदना को महारत हासिल है। इस संग्रह की 'नमक', 'नक्शा और इबारत' 'टोली', 'छाया युद्ध' और 'झगड़ा' आदि कहानियाँ इसका प्रमाण है। संग्रह की कहानी 'तस्वीर' समाज के प्रति लेखक के दायित्व को उजागर करती है। इस कहानी का प्रमुख पात्र पास्कल एक शिक्षक है। वह एक भीख मांगने वाले लड़के को अपने घर में रखता है और उसे पढ़ना लिखना भी सिखाता है। समीक्ष्य संग्रह की एक कहानी 'कान व्यंग्य का सुंदर नमूना पेश करती है। 'नमक', 'छाया युद्ध' जैसी कहानियाँ मनुष्य के विभिन्न मानसिक अर्न्तद्वंद्वों, उलझनों, कमियों, कमजोरियों को लेकर बुनी गई हैं। प्रस्तुत कहानी संग्रह बदलते समय का साक्ष्य है।

21वीं सदी में लिखी गई अन्य कहानियों में नीलाक्षी सिंह की कहानी 'परिंदे का इंतजार सा कुछ', मनीषा कुलश्रेष्ठ की 'कठपुतलियां', शर्मिला बोहरा जालान की 'बूढ़ा चंद', 'मोल मून', सूप आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 132-137

"తిక్కన మహా భారత రచన -తెలుగుదనం"

Dr. PSUPULETI NAGA MALLIKA
డా.పసుపులేటి నాగమల్లిక తెలుగు అధ్యాపకులు, ASD ప్రభుత్వ మహిళా డిగ్రీ కళాశాల(అ), కాకినాడ.ఆంధ్ర ప్రదేశ్.

తిక్కన కవి పరిచయం :

సంస్కృతంలో వ్యాస విరచితమైన మహా భారతాన్ని తెలుగు భాషలోకి కవిత్రయం వారు అంధ్రీకరించారు. వారు ఆదికవి నన్నయ్య, మహాకవి తిక్కన, ప్రబంధ పరమేశ్వరుడు ఎర్రన. పేరుకు ద్వితీయుడైనా మహాభారత రచనలో అద్వితీయుడై మన్ననలొందినవాడు తిక్కన్న.

తిక్కన కాలము క్రీశ 13వ శతాబ్ది. నెల్లూరును పాలించిన మనుమసిద్ధి ఆస్థాన కవి. అంతేకాక మంత్రిగా పదవిని అలంకరించిన గొప్ప రాజనీతజ్ఞుడు. తిక్కన తల్లిదండ్రులు అన్నమ, కొమ్మనామాత్యులు. అతని తాత మంత్రి భాస్కరుడు. తిక్కన తన నిర్వచనోత్తర రామాయణంలో తన తాతగారైనా మంత్రి భాస్కరుని

" గుంటూరి విభునిగ, 'సార కవితాభిరామునిగ" పేర్కొన్నాడు.

తిక్కన తండ్రి కొమ్మన మనుమసిద్ధి వద్ద దండనాధుడుగా వర్ధిల్లాడు. తిక్కన శిష్యుడు కేతన తిక్కన వంశ చరిత్రను తన దశకుమార చరిత్ర గ్రంథంలో వివరించాడు. ఈ గ్రంథాన్ని తిక్కనకి

అంకితమిచ్చాడు. తిక్కనను 'మామ" అని ముద్దుగా పిలిచి కావ్యకన్య నిమ్మని అడగగా నిర్వచనోత్తర రామాయణాన్ని రచించి అంకితమిచ్చి కృతి భర్తని చేశాడు.

తిక్కన మహా భారత రచనకుపక్రమించుట :

తన కాలం నాటి సాంఘిక, మత పరిస్థితులు వలన శైవ, వైష్ణవ భేదాలు తీవ్రరూపం దాల్చసాగాయి. కవి అయిన వాడు తన సాంఘిక బాధ్యతల్ని తప్పించుకోలేడు. అదే పరిస్థితి తిక్కనకు ఎదురు పడింది. అప్పటి కొందరు కవులు తమ కవిత్వం ద్వారా సంఘాన్ని రెండుగా చీల్చే ప్రయత్నం చేయగా శైవ, వైష్ణవ మత భేదాలేర్పడి అంత: కలహాలకు దారితీశాయి.

ఈ కలుషిత సమాజాన్ని చూసిన తిక్కన తన రచన ద్వారా సమాజాన్ని ఉద్ధరించాలని తన ప్రతిభనూ, తన కవితా శక్తిని ధారపోసి మహా భారతాన్ని ధర్మాద్వైతనిధిగా రచించ పూనుకొన్నాడు. అంతేకాకుండా సామాన్యులకు అర్థమయ్యేరీతిలో ఒక అపూర్వ దైవ శిల్పాన్ని అంతశ్చక్షువులతో మలిచాడు. ఆ రూపమే "హరి హర నాథ తత్త్వము". శివకేశవ అభేదాన్ని చాటిన రూపము.

"శివాయ విష్ణురూపాయ శివరూపాయ విష్ణవే!" అంటూ మతముల వైషమ్యాన్ని తొలగించడానికి హరిహరనాథ తత్వాన్ని మహాభారత రచనతో అనుసంధానించి సమాజానికి అందించి ఆ స్వామికే అంకితమి చ్చాడు.

మహాభారత రచనా కాలంనాటికి తిక్కనకు పరిణతి వచ్చిందనీ

అందుకే "నా నేర్చు విధంబున" రచిస్తానని చెప్పాడనీ అంటారు. మహాభారత రచన చేయడటం కష్టమని తెలిసినా తన ఉద్దేశం ఇలా ప్రకటించాడు:

"కావున భారతామృతము కర్ణపటంబుల నారి గ్రోలియాం

ద్రావళి మోదముంబొరయు..... మహాకవిత్వ దీ

క్షా విధి నూని పద్యముల గద్యములన్ రచియించెదన్ కృతుల్."

అని భవ్య కవితావేశంతో తిక్కన ఆంధ్ర మహాభారతానికి శ్రీకారం చుట్టాడు.

తిక్కన భారత రచన - తెలుగుదనం :

మహా భారత రచనలో తిక్కనకు నన్నయ్య మార్గదర్శకుడు. నన్నయను ఆంధ్ర కవిత్వ విశారదుడుగా, మహితాత్మునిగా తిక్కన కొనియాడాడు. నన్నయ్య భారత రచన కథనాత్మక శైలిలో నడిస్తే, తిక్కన తన భారతాన్ని నాటకీయ శైలిలో పాత్రలన్నీ మన కళ్ళముందే కదలాడుతున్నట్లుగా రచించాడు. నన్నయ 18 పర్వాల భారతంలో ఆది, సభా పర్వాలను,అరణ్య పర్వంలో కొంత భాగాన్ని మాత్రమే రాయగా తిక్కన మాత్రం విరాట పర్వం నుండి స్వర్గారోహణ పర్వం వరకు ఒక్క చేతు మీదుగా రచించిన ఘనుడు. నన్నయ వదిలిన అరణ్య పర్వాన్ని పూరించుకపోవడానికి అనేక కారణాలను సాహితీ విమర్శకులు చెప్తారు.

తిక్కన భారత అనువాదంలో నన్నయ అనుసరించిన పద్ధతుల్నే అనుసరించాడు. మూల భారతంలోని కొన్ని అంశాల్ని తగ్గించడం, కొన్నింటిని పూర్తిగా వదిలేయడం, కొన్ని చోట్ల పెంచడం, కొత్త ప్రకృతి వర్ణనలు చేయడం, పాత్ర చిత్రణా వైవిధ్యాల్ని, మనస్తత్వ చిత్రీకరణలో పొందు పర్చటం, ఆయా సన్నివేశాలకు సంబంధించిన సంభాషణల్ని, రస పోషణల్ని నిర్వహించడం లాంటి అనేక అంశాల్లో 'తెలుగుదనం' ఉట్టిపడేలా తిక్కన భారత రచన చేశాడు.

తిక్కన రాసిన మహా భారత పర్వాలు సంఖ్య 15.

అవి :

1. విరాట
2. ఉద్యోగ
3. భీష్మ
4. ద్రోణ

5. కర్ణ

6. శల్య

7. సౌప్తిక

8. స్త్రీ

9. శాంతి

10. అనుశాసనిక

11. అశ్వమేధ

12. ఆశ్రమ వాస

13. మౌసల

14. మహాప్రస్థాన

15. స్వర్గారోహణ

తిక్కన 15 పర్వాల భారతాన్ని ''మహా కవిత్వ దీక్షా నిధి నొంది", "ఆంధ్రావళి మాదముంబొరయనట్లుగ" బుధు సంతోషంబు నిండారగ రచించినాడు. తిక్కన స్వయంగా రాయబారాలు నడిపి యుద్ధ తంత్రాలు, రాజనీతిజ్ఞత కలిగిన అనుభవజ్ఞుడు అవ్వటం చేత భారత రచనలో సంజయ రాయబారం, శ్రీకృష్ణరాయభార ఘట్టాలలో రాజనీతి చాతుర్యం బాగా వెల్లడించి,తెలుగుదనంతో రక్తికట్టించాడు.

తిక్కన భారతం అనువాదంలా కాక స్వతంత్ర కావ్యంలా భాసిస్తుంది. తెలుగుదనం ఉట్టిపడుతుంది. కావ్యంలో తెలుగుభాష, సంస్కృతి సాంప్రదాయాలకి గౌరవం కల్పించి భారతంలోని పాత్రల్ని తెలుగువారికి సన్నిహితం చేసి చరిత్రలో అఖండ కీర్తి గాంచాడు.

భారత కథకు నాయక శిరోమణియైన ధర్మరాజు పాత్రను ధర్మమూర్తిగా ధీరో దాత్తునిగా, సద్గుణమూర్తిగా తిక్కన చిత్రీకరించాడు. విరాట పర్వంలోని..

"ఎవ్వాని వాకిట నిభమద పంకంబు రాజభూషణ రజో రాజి నడగు ... కేవల మర్త్యుడే ధర్మ సుతుడు"

అని ద్రౌపది భీమునితో ధర్మజుని గూర్చి తెలిపే సీస పద్యం ధర్మరాజు కీర్తికి ఆణి ముత్యంగా రచించాడు.

తిక్కన ద్రౌపదిని బేలగా కాక , పతవ్రతా శిరోమణిగా, ధర్మ వేత్తగా, ప్రతీకార వాంఛ పరాయణిగా, ఆదర్శ భారత నారీమణిగా,తలుగింటి ఆడబిడ్డగా తీర్చిదిద్దాడు. విరాటుని కొలువులో సైరంధ్రిగా కీచకునితో..

"దుర్వారోద్యమ బాహు విక్రమ రసాన్తోక ప్రతాపస్ఫుర ద్ధర్వాంధ్ర! ప్రతివీర నిర్మధన విద్యా పారగుల్ మత్పతుల్ ....." అని పలికించాడు.

ధర్మ బద్దం కాని కామము వినాశనకరమనే సందేశానికి ప్రతినిధిగా కీచకుని పాత్రను వర్ణించాడు. ఇంకా కుంతీ దేవి తెలుగు వారి మాతృమూర్తిగా భాసిస్తుంది. తిక్కన భారతంలోని ధృత రాష్ట్ర, భీష్మ, ద్రోణ, దుర్యోధన, కర్ణ , కృష్ణ,సంజయ, అర్జున, విదురాది పాత్రలన్నీ మన కళ్ళకు కట్టినట్లుగా సహజ సుందరంగా తెలుగుదనంతో తిక్కన తీర్చిదిద్దాడు.

ఈ విధముగా 15 పర్వాల భారతాన్ని అద్వితీయంగా రచించి "తన కావించిన సృష్టి తక్కొరుల చేతం గాదు" అని ఎర్రనిచే స్తుతింపబడి, "పరిమళించే తెలుగు తోట" గా విశ్వనాథ వారిచే కొనియాడబడినాడు.

పై విశేషాలను బట్టి తిక్కన మహా భారత రచన అంధ్రుల హృదయాహ్లాదకరంగా, నానారసాభ్యుదయోల్లాస కారిగా,అద్భుత కావ్య కళాకాంతులతో వేదవ్యాస భారత పరమార్థ బోధకమై, విశ్వశ్రేయోదాయకమై, అలరారుతున్నదని చెప్పవచ్చును.

ఆధార గ్రంథాలు :

1. తెలుగు సాహిత్య చరిత్ర – డా. జి. నాగయ్య.

   నవ్య పరిశోధక ప్రచురణలు

   తిరుపతి,ముద్రణ 2004.

2. తెలుగు సాహిత్యం చరిత్ర – వెలమల సిమ్మన్న దళిత సాహిత్య పీఠం

   విశాఖపట్నం. ముద్రణ 2014.

3. తెలుగు సాహిత్యచరిత్ర- డా.ద్వానా శాస్త్రి విశాలాంధ్ర పబ్లిషింగ్ హౌస్

   హైదరాబాదు. ముద్రణ 2001.

4. ఆంధ్ర కవుల చరిత్రము – (ప్రథమ భాగము) కందుకూరి వీరేశలింగం పంతులు.ముద్రణ 1949.

pnmpvs14@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 138-144

हिंदी का वैज्ञानिक एवं तकनीकी पक्ष

डॉ. राज कुमार शर्मा
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
श्री गुरु नानक देव खालसा कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली–110005

शोध सार :-

विज्ञान एवं तकनीकी मानव जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं में से एक हैं। विकासवाद के इस दौर में विज्ञान के बगैर जीवन की कल्पना करना कठिन होगा। क्योंकि किसी भी व्यक्ति, समाज और देश की प्रगति बहुत कुछ उसकी वैज्ञानिक तथा तकनीकी ज्ञान की पहुँच पर निर्भर करता ज्ञान–विज्ञान को मुख्यधारा के साथ जोड़ने में भाषा की अहम भूमिका होती है। किसी भी देश की वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति उस देश की बहुसंख्यक समाज द्वारा प्रयुक्त भाषा पर निर्भर करती है। तकनीकी का माध्यम निजभाषा होगी तो वैज्ञानिक विकास द्विगुणित गति से होगा। भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो वर्षों से विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में अंग्रेजी भाषा का वर्चस्व कायम रहा है। यही कारण है कि ग्रामीण परिवेश में भाषायी कठिनता के चलते अपेक्षित वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास नहीं हो सका, सुदूर ग्रामीणांचल मुख्य धरा से कटे रहे। खैर अब परिस्थितियाँ करवट लीं हैं। हिंदी ज्ञान–विज्ञान की भाषा के रूप में स्थापित हो सुदूर ग्रामीण परिवेश को विज्ञान और तकनीकी से जोड़ने में उल्लेखनीय भूमिका का निर्वहन कर रही है।

बीज शब्द :- विज्ञान, तकनीकी, प्रौद्योगिकी, ग्रामीणांचल, मीडिया।

प्रस्तावना :-

भाषा अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है, चाहे वह अभिव्यक्ति का लिखित रूप हो अथवा मौखिक। भाषा सांस्कृतिक विरासत की संरक्षिका होने के साथ–साथ उसकी पोषक और प्रचारक होती है। संसार की समस्त भाषाओं में वहीं भाषा सर्वाधिक लोकप्रिय होती है, जो सहज, सरल और बोधगम्य होने के साथ ग्राह्य क्षमता और विविध शब्दावलियों से युक्त हो। गौर करें तो उपरोक्त समस्त विशेषताएँ हमें हिंदी भाषा में दिखायी पड़ जाती हैं। क्षेत्र वैविध्य और विकास के अनेक चरणों से गुजरने तथा अपने लचीले स्वभाव के कारण हिंदी की अपनी वृहत्तर शब्द संपदा है जैसा कि डॉ. सूर्यप्रकाश दीक्षित ने लिखा है– 'गौतम बुद्ध से लेकर मध्यकाल तक सभी शासकों, संतों व समाज सुधारकों ने जन–संपर्क के लिए जन भाषा का उपयोग किया है। बुद्ध और अशोक ने संस्कृत को अपर्याप्त समझकर जनभाषा पालि का उपयोग किया। हिंदी साहित्य का आरंभ करने वाले सिद्धों, जैनियों और नाथपंथी योगियों ने आठवीं से बारहवीं शताब्दी तक समस्त भारत में घूम–घूम कर एक ऐसी संपर्क भाषा का विकास किया जिसमें भारत की सभी भाषाओं के बहु–प्रचलित शब्दों के लिए प्रवेश द्वार खुला हुआ था। वह

संभावित भाषा हिंदी थी।'[1] संपर्क भाषा के रूप में विकसित यह हिंदी न केवल भारतीय भाषाओं, अपितु संसार की अन्य भाषाओं के प्रचलित शब्दों को हूबहू अथवा कुछ हेर–फेर के साथ अपने में समाहित कर विकास के पथ पर निरंतर अग्रसर रहते हुए संसार की दूसरी बड़ी भाषा के रूप में उभर कर सामने आती है। संवैधानिक दृष्टि से भी हिंदी को एक प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त हुआ है। भारतीय संविधन का अनुच्छेद 351 संघीय सरकार को निर्देशित करता है कि– 'जहाँ आवश्यक अथवा वांछनीय हो वहाँ उसके (हिंदी के) शब्द भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत से तथा गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करना संघ का कर्तव्य होगा।'[2]

वर्तमान समय में विश्व के लगभग 40 देशों के विश्वविद्यालयों में हिंदी एक विषय के रूप में पढ़ाई जा रही है। रूस में 7 हिंदी शोध संस्थान हैं, तो अमेरिका में पिछले दो शताब्दियों से हिंदी का अध्ययन–अध्यापन हो रहा है। अभी तक अकेले उत्तरी अमेरिका में लगभग 125 हिंदी केंद्र स्थापित हो चुके हैं। छोटे से देश सिंगापुर में लगभग 10 हजार विद्यार्थी हिंदी अध्ययन के क्षेत्र में तल्लीन हैं। कहने का आशय यह है कि आज विश्व के लगभग सौ से अधिक देशों में रोजमर्रा के व्यवहार से लेकर पाठ्यक्रम तक किसी न किसी रूप में हिंदी बोली, समझी तथा पढ़ी–पढ़ाई जा रही है।

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में हिंदी की जो व्यापक संरचना दिखाई पड़ रही है, उसमें कंप्यूटर, तकनीकी, सोशल मीडिया के विभिन्न प्रकारों – फेसबुक, ट्विटर, ब्लॉग, व्हॉट्सएप, विकिपीडिया, पॉडकास्ट तथा हिंदी की प्रमुख वेबसाइटों के उल्लेखनीय योगदानों को नकारा नहीं जा सकता है। हिंदी भाषा के विकास में विज्ञान एवं तकनीकी के इसी योगदान का निर्धारण करना ही इस शोध–पत्र का उद्देश्य है।

आज हम सभी भौतिकतावादी युग में जीवन यापन कर रहे हैं, जो विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर आधारित है। जहाँ प्रत्येक क्रिया–कलापों को विज्ञान की कसौटी पर कस कर देखा जाता है। यदि विज्ञान सम्मत हुईं तो ठीक अन्यथा नकार दी जाती हैं। विज्ञान का उपज कंप्यूटर न सिर्फ आम जनजीवन को बल्की उसकी भाषा, साहित्य, संस्कृति एवं कला को भी प्रभावित कर रहा है। वर्तमान युग में वही भाषा लोकप्रिय और सर्वग्राहय होगी जिसका व्याकरण विज्ञान सम्मत होगा। हिंदी भाषा तथा व्याकरण की मूल संरचना कहीं न कहीं विज्ञान सम्मत ही है– '21वीं शताब्दी के पहले दूसरे दशक में जब हिंदी में वैज्ञानिक विषयों पर पुस्तकों की माँग की जाती थी तो प्रायः यह सुनने में आता है कि इसके लिए आधारभूत सामग्री उपलब्ध नहीं है और हिंदी आदि भारतीय भाषाएँ आधुनिक ज्ञान–विज्ञान को अभिव्यक्त करने की दृष्टि से समर्थ नहीं है, हम यहीं स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि यह धारणा निराधार, असत्य और भ्रामक है।'[3]

हिंदी की वैज्ञानिकता के बावजूद भी तकनीकी के आगमन के आरंभिक दौर में अंग्रेजी कंम्प्यूटर व ज्ञान विज्ञान की भाषा के रूप में जानी जाती थी किंतु धीरे–धीरे जनता की अभिरुचियों को देखते हुए हिंदी माध्यम से भी सॉफ्टवेयर तैयार किए जाने लगे – 'सूचना प्रौद्योगिकी के बदलते परिवेश में हिंदी भाषा ने अपना स्थान धीरे–धीरे प्राप्त कर लिया है, आधुनिकीकरण के इस युग में भाषा का महत्वपूर्ण स्थान है। इंटरनेट पर हिंदी पढ़ना एवं प्रयोग स्वतः हिंदी को लोकप्रिय बना सकता है। माइकोसॉफ्ट ने ऑफिस हिंदी के द्वारा भारतियों के लिये कंप्यूटर का प्रयोग आसान कर दिया है। यही कारण है कि अब हिंदी न जानने वाले भी इंटरनेट के जरिये अपना काम आसानी से कर रहे हैं। समाचार, साहित्य, सूचना प्रौद्योगिकी व्यापार, ज्योतिष आदि के वेब पेज

अलग–अलग प्रकार की जानकारी उपलब्ध करा सकते हैं।'[4] यही कारण है कि आज विज्ञान से लेकर कंप्यूटर, इंटरनेट, सोशल मीडिया के विभिन्न आभासी मंचों पर हिंदी का प्रयोग दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है– 'सूचना प्रौद्योगिकी के बदलते परिवेश में हिन्दी भाषा ने अपना स्थान धीरे–धीरे प्राप्त कर लिया है। आधुनिकीकरण के इस युग में भाषा का महत्वपूर्ण स्थान है। इंटरनेट पर हिंदी पढ़ना और प्रयोग स्वतः हिंदी को लोकप्रिय बना सकता है माइक्रोसॉफ्ट ने ऑफिस हिंदी के द्वारा भारतीयों के लिये कंप्यूटर का प्रयोग आसान कर दिया है। यही कारण है कि अब हिंदी न जानने वाले भी इंटरनेट के जरिये अपना काम आसानी से कर रहे हैं। समाचार, साहित्य, सूचना प्रौद्योगिकी, व्यापार, ज्योतिष आदि के वेब पेज अलग–अलग प्रकार की जानकारी उपलब्ध करा सकते हैं।'[5] आज विज्ञान और तकनीकी के सहारे हिंदी कम्प्यूटर और इंटरनेट के क्षेत्र में सतत अग्रसर हो रही है विभिन्न उपग्रह चैनलों, रेडियो, टेलीविजन समाचार एजेंसियों द्वारा देश–विदेश के कोने–कोने में हिंदी पहुँचाई जा रही है जिसमें सरकार की अहम भूमिका को नकारा नहीं जा सकता है, किंतु अभी और प्रयास की जरूरत है– 'हिंदी को प्रतिनिधि भाषा घोषित करने में भारत का और अपना गौरव समझा है। यह निर्विवाद सत्य भी है कि जिस दिन 'हिंदी' व्यावहारिक रूप में प्रतिनिधि भाषा का रूप धारण कर लेगी और 'अंग्रेजी' का मोह भंग हो जायेगा, उस दिन हमारा देश भाषा के दृष्टिकोण से एक हो जायेगा। विज्ञान के क्षेत्र में अंग्रेजी का कार्य अनायास ही समाप्त हो जायेगा। हिंदी देश के एकता की कड़ी है। हिंदी के द्वारा ही सारे देश को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है।'[6] निश्चित तौर पर सरकारी और गैर सरकारी संगठनों और अदम्य जिजीविषा ही हिंदी को पूर्णतः वैज्ञानिक एवं तकनीकी भाषा के पद पर पदस्थ कर सकता है।

कुछ हद तक बाजारवाद भी भाषा को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है। किसी भाषा का तकनीकी और वैज्ञानिक पहुँच उस देश की सामाजिक, राजनैतिक वातावरण के साथ–साथ उसकी आर्थिक परिस्थितियों पर भी निर्भर करता है– 'हिंदी में तकनीकी विकास होना अवश्यंभावी है और वह तकनीकी कारणों की तुलना में आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक परिस्थितियों से अधिक प्रेरित है।'[7] वर्तमान भौतिकतावादी युग, बाजारीकरण और वैश्विक विलेज की संकल्पना ने भाषा, साहित्य और संस्कृति की दीवार दहाया है। आज एक देश की भाषा, संस्कृति दूसरे देश में धड़ल्ले से बोली और मनायी जा रही है। ऐसा इसलिए संभव हो पा रहा है कि विभिन्न भाषा–भाषी अपनी तकनीकी और उत्पादों को बेचने की होड़ में एक ऐसे बाजार और अर्थव्यवस्था की खोज में लगे हैं जहाँ उनके उत्पाद आसानी से बिक सकें। विकसित देशों की आवश्यकताएँ सीमित हो गयी हैं जिससे वहाँ के बाजार संकुचित होते जा रहे हैं इसलिए ये कंपनियाँ विकासशील देशों की तरफ रुख कर रही हैं। हम जानते हैं कि भारत एक विकासशील अर्थव्यवस्था वाला देश है, जो वैश्विक पप्टल पर बड़े बाजार के रूप में उभर कर दुनियाभर के उद्योग जगत को अपनी तरफ आकर्षित कर रहा है। ये औद्योगिक कम्पनियाँ भारत के बहुसंख्यक समाज की भाषा को समझकर ही अपने उत्पादों को सुगमता से बेच सकती हैं। शायद यही कारण है कि तकनीकी उपकरणों का निर्माण करने वाली संस्थाएँ सॉफ्टवेयर की भाषा हिंदी माध्यम रखने के साथ–साथ अपने कर्मचारियों को भी हिंदी में प्रशिक्षित कर रही हैं। चाइनीज जैसी कंपनियाँ इस स्थिति को पहले से ही भाँपकर छोटे–बड़े खिलौनों से लेकर मल्टीमीडिया मोबाइल तक हिंदी सॉफ्टवेयर में उपलब्ध करवा रही हैं। यथा– "आज जो देश आर्थिक दृष्टि से मजबूत हैं और जहाँ पर बाजार है, वैश्विक परिदृश्य में उसका उतना ही महत्व है।... आर्थिक ठहराव से चिंतित वैश्विक कंपनियों के लिए भारत संभावनाओं

का नया स्रोत बनकर उभरा है। उन्हें बाजार की तलाश है और हम बाजार उपलब्ध करवा रहे हैं। ऐसे में हर क्षेत्र की बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भारत की ओर आकर्षित हो रही हैं और तकनीकी कंपनियाँ इसका अपवाद नहीं हैं। सीधे शब्दों में कहें तो भारत के पास अब संख्याबल भी है और खर्च करने के लिए पैसा भी।.... बेहतर जीवनशैली की ओर उनकी यात्रा बाजार में माँग पैदा कर रही है। यह माँग तमाम क्षेत्रों में है, जिनमें तकनीकी उत्पाद और सेवाएँ भी शामिल हैं। बाजार माँग और आपूर्ति के नियम के आधार पर चलता है। माँग पैदा हो रही है तो नए उत्पाद भी आएँगे चूँकि बाजार में ग्राहक ही राजा है इसलिए आपूर्तिकर्ता को ग्राहक की जरूरतों की लिहाज से ढ़लना पड़ेगा। मैं हिंदी में तकनीकी विकास को लेकर आश्वस्त हूँ।'[8] एक्सिडेंटल ही सही धीरे–धीरे हिंदी विज्ञान और तकनीकी तक अपनी मजबूत पकड़ बना रही है।

भाषा का विकास उसकी जरूरत और उपयोगिता पर भी निर्भर करता है। एक समय था जब कंप्यूटर, विज्ञान एवं तकनीकी की भाषा अंग्रेजी हुआ करती थी किंतु आज हिंदी के बढ़ते प्रभाव और जरूरत को देखते हुए इस क्षेत्र में विकल्प के रूप में ही सही हिंदी भाषा को महत्व दिया जा रहा है। हिंदी की बढ़ती जरूरत के फलस्वरूप ही माइक्रोसॉफ्ट जैसी कंपनियाँ, गूगल, याहू जैसे सर्च इंजन, फेसबुक, ट्विटर, हवाट्सएप जैसी सोशल मीडिया, फ्लिपकार्ट, अमेजन जैसी व्यावसायिक साइटें दुनिया भर में हिंदी भाषा में सुविधाएँ उपलब्ध करवा रही हैं। इतना ही नहीं अब तो ई–मेल आईडी भी हिंदी में बनाई जा रही है। उपरोक्त परिवर्तन हिंदी की बढ़ती जरूरत, उपयोगिता और सुदृढ़ता का प्रमाण है– 'जरूरत इस बात की है कि आप इन संसाधनों का कितना उत्पादकतापूर्ण प्रयोग करते हैं। आप कितने तथा किस किस्म के सॉफ्टवेयर खरीदते हैं। अपने प्रधान कामकाज में भारतीय भाषाओं में तकनीक का किस तरह प्रयोग करते हैं, आपकी उत्पादकता में इनसे किस तरह वृद्धि होती है, शिक्षण तथा सरकारी–गैर–सरकारी सेवाओं से जुड़े तकनीकी अनुप्रयोगों में आप कितनी दिलचस्पी दिखाते हैं... चाहे जितना तकनीक विकास हो जाए, यदि उपभोक्ता उसे समर्थन नहीं देंगे तो भारतीय भाषाएं उस किस्म की तकनीकी क्षमता प्राप्त नहीं कर सकेंगी जैसी हमारी आकांक्षा है।'[9] बहुसंख्यक समाज के बीच एवं बड़े भू–भाग में प्रचलित राष्ट्रभाषा हिंदी के कारण ही भारत वैश्विक जगत में अपनी पहचान बनाये हुए है। हिंदी में सभ्यता एवं संस्कृति की वह सुगंध समायी हुई है। जिसके आकर्षण में वसुधैव कुटुम्बकम् का भाव प्रवाहित होता है। हिंदी हमारी राष्ट्रभाषा है जो पूर्व से पश्चिम, उत्तर से दक्षिण तक बोली–समझी जाती है। आर्थिक तथा प्रौद्योगिकी प्रतिस्पर्धा के इस दौर में हिंदी की भूमिका स्वतः महत्वपूर्ण हो जाती है। जनभाषाओं के साथ जितना अधिक तालमेल होगा हिंदी उतना ही अधिक समृद्ध होगी। इंटरनेट पर हिंदी, अंग्रेजी की जितना लोकप्रिय तो नहीं बन पायी है किंतु पिछले कुछ वर्षों में इंटरनेट पर हिंदी की वेबसाइटों की संख्या तेजी से बढ़ी है जिसका प्रमुख कारण है तकनीकी और इंटरनेट का छोटी–छोटी जगहों पर पहुँच बनाना तथा हिंदी भाषाभासीयों का प्रसार।

इसलिए देश–विदेश में हिंदी साइटों की आवश्यकता महसूस की जा रही है। जिसकी पूर्ति विज्ञान एवं तकनीकी के आपसी तालमेल से संभव हो पा रही है। गूगल के एक सर्वेक्षण के अनुसार डिजिटल दुनिया में हिंदी सबसे बड़ी भाषा है। गूगल, सेंसर इंडिया और आई आर एस की सर्वे रिपोर्ट को देखा जाए तो इंटरनेट पर हिंदी की लोकप्रियता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि प्रतिवर्ष तकनीकी माध्यम से हिंदी पढ़ने वालों की संख्या में 94 फीसद बढ़ोत्तरी दर्ज की जा रही है। जबकी अंग्रेजी में 17 फीसद। इस रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2023 में हिंदी माध्यम से इंटरनेट उपयोग करने वालों की संख्या अंग्रेजी की तुलना में अधिक हो

गयी थी। हिंदी के इस तकनीकी विकास में कविता कोश, गद्य कोष, हिंदी समय, गर्भनाल, सृजनगाथा, स्वर्गविभा, शब्दांकन, भारत दर्शन, अभिव्यक्ति, गीत पहल, हिंदी नेस्ट, वैश्विक हिंदी डॉम कॉम जैसी सैकड़ों वेबसाइटों के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता है।

तकनीकी विकास के परिणाम स्वरूप लेखन का एक नया रूप हमारे सामने आया जिसे हम ब्लॉग लेखन के नाम से जानते हैं। यूँ तो इसकी शुरुआत इंटरनेट के प्रचलन के साथ 1992 ई. में हो गया था जो बाद के वर्षों में उत्तरोत्तर बढ़ता गया। यह एक बड़ी वेबसाइट के छोटे हिस्से के रूप में कार्य करता है। जिस पर दैनंदिनी या डायरी की तरह कुछ समय के लिए या निरंतर लिखा जा सकता है जो संवादात्मक शैली में स्वतंत्र, चित्र या विडियो के रूप में हो सकता है, जिसके माध्यम से हम अपने पसंदीदा विषयों से विश्व के कोने–कोने को अवगत करा सकते हैं। विकिपीडिया की मानें तो ब्लॉग के लिए हिंदी में 'चिट्ठा' शब्द का प्रयोग किया जाता है, यह नाम हिंदी के प्रथम ब्लॉगर आलोक कुमार द्वारा दिया गया था। जिन्होंने 'नौ दो ग्यारह' शीर्षक प्रथम ब्लॉग लिखा था जो यथा नाम तथा गुण के अनुरूप खूब पसंद किया गया।

आज अनेक नेता, अभिनेता, डॉक्टर, इंजीनियर, प्रोफेसर, सामाजिक कार्यकर्ता, खिलाडी ब्लॉग पर हिंदी माध्यम से आत्माभिव्यक्ति और जीवन–जगत से जुड़े विविध विषयों – शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरंजन, ज्ञान विज्ञान, कला, साहित्य, संस्कृति, इतिहास, भूगोल तथा रोजमर्रा के विषयों पर लिख रहे हैं। ब्लॉग नवोदित कवियों, लेखकों की कृति व्यक्तित्व को निखारने के लिए आभासी मंच के रूप में महती भूमिका का निर्वहन कर रहा है। हिंदी भाषा में कई महत्वपूर्ण ब्लॉग लिखे जा रहे हैं जैसे– राजभाषा हिंदी, विश्व विज्ञान, प्रतिभाष, भारत विद्या, विचार वाटिका, हिंद महासागर, शब्दों का सफर, ज्ञानवाणी, सौर, गणित और विज्ञान, विज्ञान विश्व, वैज्ञानिक भारत इत्यादि ब्लॉग लेखन हिंदी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति को निरंतर आगे बढ़ा रहे हैं। यह सब तभी संभव हो पा रहा है, जब तकनीकी ने हिंदी लेखन को सुगम बनाया है। तकनीकी के बढ़ते प्रयोग ने भाषाओं और भाषा–भाषिओं के बीच की दूरी को कम किया है। आज हम क्षण भर में हिंदी या अन्य भाषाओं से संबंधित ऐसी भी जानकारी प्राप्त कर लेते हैं जिससे हमारा पाठक समुदाय अनभिज्ञ था। भाषा सीखने या सुद्धता की बात हो या फिर दुर्लभ प्राचीन ग्रंथों की उपलब्धता की सारी समस्या एक क्लिक मात्र से समाप्त हो जाती है।

विज्ञान की बारीकियों के बारे में जन–जन को शिक्षित करने के लिए आवश्यक है कि हमारे चारों ओर प्रकृति या सभ्य समाज में जहाँ भी कुछ दिखाई पड़ता है, उसमें से कुछ ऐसे विषय चुन कर उनके बारे में ज्ञात तथ्यों के आधार पर ऐसे विवरण प्रस्तुत किये जाएँ जो पढ़ने वाले को प्रबुद्ध कर सकें। निश्चित तौर पर यह प्रबुद्धता निज भाषा के माध्यम से ही संभव है और वह निज भाषा है हिंदी।

हिंदी में विज्ञान लेखन का कार्य स्वतंत्रता से पहले ही होने लगा था। किंतु वास्तविक प्रगति बीसवीं शताब्दी के आरंभिक दशकों में दिखाई पड़ती है। 13 मार्च 1913 ई. में उ.प्र. के इलाहाबाद में 'विज्ञान परिषद–प्रयाग' की स्थापना हुई लगभग इसी समय इलाहाबाद में ही 'हिंदी साहित्य सम्मेलन' की स्थापना होती है।

इन दोनों संस्थानों के संयुक्त प्रयास से हिंदी माध्यम से विज्ञान साहित्य लेखन का कार्य प्रारंभ हुआ। आगे चलकर 'विज्ञान परिषद प्रयाग' द्वारा यह कार्य निरंतर जारी रखते हुए विज्ञान से संबंधित कई पुस्तकें प्रकाशित की गयीं। किंतु अपेक्षित सफलता प्राप्त न हुई। जिसका प्रमुख कारण था वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दों का

अभाव। फिर भी तत्कालीन लेखकों तथा संपादकों द्वारा कुछ पारिभाषिक शब्द गढ़ने का प्रयास किया गया जैसे ऑक्सीजन के लिए ओषजन, नाइट्रोजन के लिए नोषजन इत्यादि। 1915 में 'विज्ञान परिषद – प्रयाग' से निकलने वाली मासिक पत्रिका 'विज्ञान' में सोना, चाँदी, ताँब जैसी धातुओं तथा हवा, पानी, चाँद–सितारे जैसे जीवन उपयोगी वस्तुओं पर लेख लिखे गये। जो हिंदी में विज्ञान लेखन की मुखपत्र साबित हुई। आजादी के बाद कुछ ही वर्षों में विभिन्न सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थानों द्वारा हिंदी में विज्ञान लेखन को बढ़ावा देने के लिए विज्ञान लोक, आविष्कार, विज्ञान प्रगति, विज्ञानगत जैसी पत्रिकाओं का प्रकाशन किया गया।

विज्ञान के क्षेत्र में हिंदी को बढ़ावा देने के लिए भारत सरकार ने समय–समय पर अनेक संस्थाओं की स्थापना की है जिनका प्रमुख उद्देश्य वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावलियों के निर्माण के साथ ही इस क्षेत्र में हिंदी को बढ़ावा देना है– 'सरकारी प्रयास से अनेक राज्यों में हिंदी ग्रंथ अकादमियों, हिंदी निदेशालयों और हिंदी सेल की स्थापना हुई। इस समय तकनीकी शब्दों के अनेक मानक कोशों का प्रकाशन हो चुका है। इस सम्बन्ध में भारत सरकार के शब्दावली आयोग (नई दिल्ली) का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आज भी यह संस्था विज्ञान और तकनीकी लेखन के उन्नयन और प्रचार–प्रसार के प्रति कृत संकल्प है। इसके द्वारा विज्ञान के नवीन विषयों पर अलग से कई शब्द कोश प्रकाशित किए जा चुके हैं।'[10] विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में हिंदी को और अधिक समृद्ध बनाने के लिए अन्य सरकारी प्रयास भी किये गये जो उल्लेखनीय हैं। 1865 ई में प्रकाशित वृहद विधि एवं प्रशासनिक शब्दावली, 1953 ई. में स्थापित वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग, 1963 ई. में भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय द्वारा प्रकाशित पारिभाषिक शब्द संग्रह, 1979 ई. में संघ लोक सेवा आयोग में हिंदी भाषा में प्रश्नपत्रों की तैयारी आदि सराहनीय प्रयास हैं। तकनीकी माध्यम से हिंदी को बढ़ावा देने में केंद्रीय हिंदी संस्थान आगरा के प्रयासों को नहीं भुलाया जा सकता है। उक्त संस्था ने तकनीकी माध्यम से विदेशी हिंदी अध्येताओं के लिए श्रव्य, श्रव्य–दृश्य एवं कंप्यूटर आधारित पाठ्य सामग्री का निर्माण किया गया है। शुद्ध उच्चारण के विभिन्न बिंदुओं को ध्यान में रखते हुए 30 से अधिक ऑडियो पाठों का निर्माण किया है। इस संस्थान के द्वारा हिंदी के प्रसिद्ध कवियों सूर, तुलसी, भवानी प्रसाद मिश्र, अज्ञेय, निराला आदि कवियों का परिचय तथा उनकी कविताओं का वीडियो कैसेट निर्मित किया गया है। इतना ही नहीं विभिन्न छंदों के आरोह–अवरोह से परिचित कराने के लिए पद, कवित्त, सवैया, दोहा आदि का सस्वर वाचन का आदर्श रूप उपलब्ध करवाया गया है।

कुल मिलाकर पिछले 80 वर्षों में विज्ञान के क्षेत्र में हिंदी की स्थिति परिस्थिति का अवलोकन करें तो हम पाते हैं कि समय के साथ इस दिशा में परिवर्तन आया है फिर भी अंतरिक्ष विज्ञान, पर्यावरण विज्ञान, कंप्यूटर विज्ञान, सूचना प्रौद्योगिकी, जैव–सूचना प्रौद्योगिकी, चिकित्सा विज्ञान, नैनोटेक्नोलॉजी आदि विषयों पर वैज्ञानिक, पर्यावरण, विज्ञान गरिमा सिंधु, विज्ञान प्रगति, जिज्ञासा आदि पत्रिकाएँ अनवरत हिंदी में लेख प्रकाशित कर रही है।

निष्कर्षः अतएव हम कह सकते हैं कि विज्ञान–तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हिंदी निरंतर अग्रसर हो रही है। आज न्यूनाधिक मात्रा में विज्ञान एवं तकनीकी से संबंधित शब्दावलियों का निर्माण हो चुका है फिर भी यह प्रचलन में नहीं है। जरूरत है हम सभी अधिक से अधिक इस क्षेत्र में हिंदी भाषा का प्रयोग करें तथा इसके मार्ग में आने वाली विभिन्न चुनौतियों को चिन्हित कर उन्हें दूर करने की सामूहिक प्रयास करें तभी जागर

विज्ञान तथा तकनीकी के क्षेत्र में होने वाले नवीन आविष्कारों से जन सामान्य को अवगत करा सकेंगे और हिंदी भाषा के साथ न्याय हो सकेगा। चूँकि हमें खुद अपनी भाषाओं की वैज्ञानिक एवं तकनीकी तरक्की का माध्यम बनना पड़ेगा तभी भाषाओं का चहुमुखी विकास हो पायेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. डॉ. सूर्य प्रकाश दीक्षित, संचार भाषा हिंदी, पृष्ठ 63
2. सुभाष कश्यप, हमारा संविधान, पृष्ठ 264
3. वैज्ञानिक, पत्रिका, जुलाई–सितंबर अंक – 2017, पृष्ठ 17
4. वही, पृष्ठ 19
5. वही, पृष्ठ 19
6. वही, पृष्ठ 19
7. वही, पृष्ठ 8, 9
8. पाञ्चजन्य, सितंबर– 2018, पृष्ठ 8
9. पाञ्चजन्य, सितंबर – 2018, पृष्ठ 8, 9
10. वैज्ञानिक, राजभाषा विशेषांक, जुलाई–सितंबर 2017, पृष्ठ 23

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 145–148

एस आर हरनोट की कहानी आभी में पर्यावरण चेतना

सीमा देवी, शोधार्थी
डॉ. अरविंदर कौर चुम्बर, शोध निर्देशिका
देशभगत विश्वविद्यालय, मंडी गोबिंदगढ़, पंजाब।

प्रस्तावना :- प्रकृति ही पर्यावरण का स्वरूप है।

हमारे आसपास पेड़ पौधे पानी हवा विभिन्न प्रकार की वनस्पतियां यह सब पर्यावरण की ही देन है। हम यह भी कह सकते हैं। यही पर्यावरण का यह समुचित स्वरूप है। हम अपने चारों ओर देखें तो प्रकृति का आशीर्वाद किसी न किसी रूप में हमें प्राप्त होता रहता है परंतु ईश्वर की इस अद्भुत देन को मानव ने अपने स्वार्थ के चलते तहस–नहस कर दिया है।

वर्तमान इंसान में पर्यावरणीय जागरूकता का अभाव है। प्रकृति ने अनंत विस्तार से मानव को आशीर्वाद के रूप में सूर्य, चंद्र, वायु भूमि, ग्रह, नक्षत्र आदि प्रदान किये हैं। प्रकृति के सभी अवयवों में प्रदूषण का घनत्व इतना बढ़ गया है कि देश के लगभग 60 प्रतिशत से अधिक लोग रोग ग्रस्त हैं। वर्तमान में स्थिति यह है कि जलवायु दूषित हो गए हैं, ध्वनि एवं भूमि प्रदूषण के कई दुष्परिणाम भी सामने आ रहे हैं। यह समस्या बहुत जटिल हो गई है शीघ्र ही इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। चर्चित वरिष्ठ साहित्यकार एस आर हरनोट जी की पर्यावरण प्रधान कहानी आभी का अध्ययन करने पर हमें यहां ज्ञात होता है कि किस तरह उन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से मानव को पर्यावरण के प्रति जागृत करने का प्रयास किया है। मानव एवं पर्यावरण का सानिध्य वर्षों पूर्व से अटूट रहा है परंतु आज मानव ही अपने पर्यावरण का शत्रु बन बैठा है।

हिमाचल प्रदेश के जिला कुल्लू के दुर्गम क्षेत्र आनी में 11500 फुट की ऊंचाई पर स्थित जालोरी के पास लगभग 5 किलोमीटर दूर सरेऊलसर झील के जल को सदियों से 'आभी' नामक एक चिड़िया निर्मल रखे हुए हैं जो झील में किसी तरह का तिनका पड़ने पर उसे अपनी कोंच से उठाकर दूर फेंक देती है। चिड़िया के इस कारनामे को यहां आने वाले विदेशी तथा अन्य पर्यटक देकर आश्चर्यचकित रह जाते हैं। झील के किनारे बुद्धि नागिन मां का प्राचीन मंदिर स्थित है। स्थानीय लोग इस चिड़िया को आभी के नाम से पुकारते हैं, हरनोट जी के द्वारा लिखित कहानी में किस तरह पर्यावरण की चिंता जताई गई है यह सब इसमें अंकित है।

बीजशब्द- आभी, शिलापटट, फारिग, हिमखंड, गंदला, प्लास्टिक, बुरांश, किल्टा, देवदारु।

पहाड़ी क्षेत्र सदैव ही पर्यटकों का मनपसंद स्थान रहा है परंतु हर सेनानी इसकी आभा को सुरक्षित नहीं रख पाता अर्थात उसे उस तरह साफ सुथरा नहीं रख पाते जिस तरह वह पहले से रहा हो। हरनोट जी के द्वारा इस स्थिति को अपनी कहानी आभी में बहुत ही सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। कैसे एक चिड़िया वह सारा

दायित्व निभाती है जो एक इंसान को निभाना चाहिए। यह चिंता जनक स्थिति केवल पहाड़ी क्षेत्र में ही नहीं बल्कि हर जगह है। आज इंसान ने प्रकृति की सुंदरता को छिन्न–भिन्न कर दिया है। इसी संदर्भ में उषारानी राव ने पर्यावरणीय चेतना की कहानियाँ 'नदी गायब है' में लिखा है, 'यह समस्या इतनी जटिल हो गई है कि रूप से निराकरण की असमर्थता जग जाहिर है।'

आभी सदियों से व्यस्त है। कितनी सदियां बीत गई है, पर आभी का काम खत्म नहीं हुआ है। सूरज उगने से पहले वह उठ जाती है। झील के किनारे पड़े शिलापटट पर बैठकर पानी में कई डुबकियां लगाती है। प्रसिद्ध आलोचक विनोद शाही के अनुसार, 'यों तीन और केवल तीन कालजई कहानियों का चयन एक कठिन काम है पर मेरे सामने तीन दौर हैं – एक प्रेमचंद वाला दूसरा दो विश्वयुद्धों के बाद आधे–अधूरे रूप में भारत को भी आधुनिकता के ढांचे में ढालने की कोशिश करने वाला दौर, जिसे कुछ लोग 'साठोतरी कहानी' कहते हैं। और तीसरा, हमारे समय की कथा का परिदृश्य, जो बहुराष्ट्रीय किस्म के भुमण्डलीकरण का साक्षी है। इन तीन समयों में व्यापकता व गहराई के लिहाज से मुझे जो जो कहानियाँ ज्यादा दूर तक जाती दिखाई देती हैं, वे हैं–

एक : प्रेमचन्द की 'पूस की रात'

दो : निर्मल वर्मा की 'डेढ़ इंच ऊपर'

और तीन : हाल ही में प्रकाशित एस आर हरनोट की– आभी।

आभी अब झील में गिरते तीन को और पत्तों से ज्यादा इंसानों से डरने लगी है। उनके व्यवहार को लेकर परेशान होती है। दिन भर कितने लोग यहां घूमने आते हैं। कोई पेड़ों की ओट में बैठे खाते पीते हैं और वही प्लास्टिक के लिफाफे चिप्स और पानी की खाली बोतले फेंककर चल देते हैं। कोई मंदिर से दूर नीचे झाड़ियों मैं गंदी–गंदी हरकतें करते हैं और कई तरह के कचरा वाहन दल के चल देते हैं। हरनोट जी ने कितने अच्छे ढंग से मानव की प्रकृति के प्रति इस घिनौनी करतूत को उजागर किया है। पर्यावरण मानव को स्वच्छ हवा स्वच्छ जल उपजाऊ भूमि प्रदान करता है लेकिन बदले में मानव ने उसे क्या दिया?

आभी परेशानियां अब और बढ़ने लगी है झील से तिनके और पत्ते थाने तक तो ठीक था पर उन अजनबियों का क्या करें जो अब जंगल के अंधेरे में लंबी–लंबी रोशनियों के साथ आते हैं उनके कंधों पर तेज कुल्हाड़े और तिथि दांत वाले आरे पूरे जंगल को डरा देते हैं। यहां हरनोट जी के द्वारा जंगलों के काटे जाने की बात को रखा गया है। जंगल माफिया राज का पर्दाफाश करने की कोशिश लेखक के द्वारा की गई है।

हरनोट जी के द्वारा आभी कहानी में कितना अच्छा लिखा गया है। पलभर में जंगल कुल्हाड़ों और भयंकर आरों की आवाजों से सहम जाता है। तभी कई देवदारुओं की एक साथ मौत हो जाती है। बान टुकड़े–टुकड़े कटकर तड़पता जाता है। मौत की में भयंकर चीखों से दूर पार कभी गीदड़ हहुआते हैं, कभी बर्फानी चीते भयंकर गर्जना करते हुए ऐसे लगते हैं जैसे कैलाश पर्वत पर विराजमान भगवान शिव से गुहार लगा रहे हों कि हे शिव! कहाँ है तुम्हारा त्रिशूल? क्यों नहीं आता तुम्हें क्रोध? क्यों नहीं करते तांडव और संहार इन दुष्ट वन माफियों का?

आभी आज बहुत परेशान है। उसने बूढी मां के मंदिर के साथ डरावना मंदिर देखा है। वह रात भर जागती रही है। उसने देखा है कुछ लोगों ने एक बर्फानी मादा चीते पर किसी चीज से वार किया है। रात के सन्नाटे में इस वार के धमाके देवदारुओं ने भी सुने हैं। उसकी साथी अभियों ने भी सुने हैं। बाघ, भालु और कस्तुरे ने भी सुने हैं। मोर, मोनाल, और जजुराणा ने भी सुने हैं। वे सभी उसकी तरह हैरान–परेशान हैं। जागते

हुए सहमे–सहमे भयाक्रांत। आभी जानती है कि आज नहीं तो कल, यह आफत सभी पर आने वाली है।

यहाँ हरनोट जी ने कहानी के माध्यम से कितनी बात अच्छी जनसाधारण तक पहुंचाने की कोशिश की है। प्रकृति के साथ की गई छेड़छाड़ आज नहीं तो कल एक भयानक रूप लेने वाली है जिससे मानव को सजक होने की बहुत आवश्यकता है। प्राचीन समय में मानव और प्रकृति का धनिष्ठ संबंध था, परंतु वर्तमान समय के स्वार्थी मानव ने अपने स्वार्थ हेतु प्रकृति का और प्रकृति में रहने वाले जीव जंतुओं का बहुत हनन किया है। अब मनुष्य इसकी भरपाई प्राकृतिक आपदा में हुए भारी नुकसान में चुका रहा है। कहानी के माध्यम से हरनोट ने जंगली जानवरों की तस्करी अर्थात उनका शिकार कर उनके शरीरिक अंगों की तस्करी करने के मामले को भी आगे लाने का प्रयास किया गया है। आखिर कोई इतना स्वार्थी कैसे हो सकता है?

लेखक के द्वारा कितना अच्छा लिखा गया है, 'आभी अर्जी लिखना नहीं जानती। शिकायत करना नहीं जानती। उसे नहीं मालूम इस जंगल का रेंज अफसर कौन है। उसे पंचायत के प्रधान का भी पता नहीं। वह किसी दरोगा या थानेदार को भी नहीं जानती। उसे नहीं पता प्रदेश का वन मंत्री कौन है। वह केवल इतना जानती है कि सुबह से पहले उसे झील के निर्मल जल में स्नान करना है।' यहाँ पक्षियों की असहाय स्थिति को दर्शया गया है।

कहानी में किस तरह मार्मिक स्थिति को उजागर किया है, मादा चीता कहराती–झटपटाती, घिसटती–लुढ़कती झील के किनारे तक आ पहुंची है। ऐसी जगह है जहां घुप्प अंधेरा है। आभी देखते हैं वह मद हल्की–हल्की सांसें ले रही है और उसके चार–पांच नन्हे उसके दुद्धुओं में लिपटे दुध पी रहे हैं। वे नहीं पता उनकी माँ चन्द लम्हों की मेहमान है। कुछ बच्चे उस खून में लथपथ हैं, पर माँ के आँचल का एहसास उन्हे भयमुक्त किये हुए है। आभी चुपचाप मादा चीते के पास आकर उसकी साँसे परखती है। उसकी आंखों में अथाह दर्द भरा पड़ा है। यह पीड़ा अपनी मौत के भय की नहीं है, अपने नन्हे बच्चों के जीवन की है। आभी इस मौत और जीवन के बीच बैठी है। असहाय और निराश।

यहाँ मानव के अंदर छिपे हैवानी चेहरे को हरनोट जी के द्वारा कहानी के माध्यम से प्रस्तुत किया है। इंसान अपनी पीड़ा को सर्वोत्तम मानता है परंतु इन बेजुबाँ, बेकसूर जानवरों की पीड़ा उसे शून्य दिखती है। पर्यावरण एवं प्रकृति मनुष्य जानवर एवं जीव जंतुओं सभी के लिए है परंतु मानव इस पर एकाधिकार अर्थात स्वाधिकार समझता है। कहानी का अंत सुखात्मक एवम अनुकूल है, सूखे पत्तों और घास में आग लग गई है। वह पीछे दौड़ना चाहता है पर नशा जैसे टांगों में उतर आया है। मुश्किल से पीछे जाकर दाहिने पांव से आग को मसलकर बुझाने का प्रयास करता है, पर आग नहीं बुझती। उसकी लपटें धीरे–धीरे हवाओं से बातें करने लगती है। वह फिर बुझाने का प्रयास करता है और गिर जाता है। पलभर में आज उसके कपड़ों में फैल जाती है। साथी उसके साथी उसकी चीखें सुनकर उसे तरफ भागते हैं। आग बुझाने का प्रयास करते हैं, पर आग की भयानकता देख कर उल्टे पांव दौड़ पढ़ते हैं। वह अपनी सहायता के लिए चिल्लाता है पर सब नदारत है। हवा का रुख उसकी तरफ है। आदमी एकाएक आज के गले में तब्दील हो गया है। बदहवास सा वह छपाक् की आवाज के साथ झील में गिर जाता है। झील में जोर की हलचल होती है। बूढ़ी नागिन मां नींद से जाग उठती है और दरवाजे की ओट से झील में तैरते डूबते हुए उस आदमी को देख रही है। आग की लपटें कुछ देर झील के उपर तैरती रहती हैं। अभियाँ देखती हैं कि जलता हुआ आदमी झील की गहराइयों में कहीं नीचे चला गया

है और झील के बीच एक छेद से असंख्य वर्तुल आर–पार दौड़ रहे हैं। कुछ देर बाद उसके जले कपड़ों के छोटे–छोटे टुकड़े झील पर तैरने लगते हैं। उस आदमी के साथी अभी भी दौड़ रहे हैं। उन्हें उस मरते साथी की परवाह नहीं है, अपनी जान की है। सुबह हो चुकी है औरतें किल्टा उठाकर अपने कार्य करने चली हैं, आभी चहचहाने लगती है फिर उसकी साथी आभियाँ भी चहचहाने लगती हैं। देवदारु, बान, चीड़, और बुरांश जागने लगते हैं। जानवर अपनी खोहों से बाहर निकलते हैं। पक्षी अपने घोसलों को छोड़ देते हैं। उन्हें लगता है कि भोर हो गई है वे सुख के गीत गाने लगते हैं।

आभी फिर से अपने कार्य में व्यस्त हो गई है उसे झील के ऊपर तैर रही गंदगी को साफ करना है अर्थात उन जले हुए कपड़ों के टुकड़ों को उठाने में आभी व्यस्त हो गई है।

प्रसिद्ध लेखक हरनोट जी के द्वारा कितने व्यवस्थित ढंग से पर्यावरण की चिंता को प्रस्तुत किया गया है। यह एक कहानी ना हो करके मानव के लिए हम सबके लिए प्रेरणादायक सबक है। यहां हम यह कह सकते हैं कि इसका अंत है जैसी करनी वैसी भरनी।

निष्कर्षः कहानी में लेखक के द्वारा सुयोग्य एवं सटीक भाषा का उपयोग करते हुए पर्यावरण चिंतन को प्रमुख रखा गया है। कहानी का अध्ययन करते हुए हम यह पाते हैं कि हरनोट जी के द्वारा केवल और केवल पर्यावरण प्रकृति प्रकृति के संबंध रखने वाले प्रत्येक घटक की चिंताजनक स्थिति को प्रकट किया गया है। इसके लिए प्रत्येक को जागृत होने की आवश्यकता है। हरनोट जी के द्वारा यही कार्य किया गया है कि उनकी लेखनी द्वारा मानव, पर्यावरण एवं पर्यावरण के प्रति अपने कर्तव्यों के लिए जागृत हो। यह कहानी एक चिड़िया की ही नहीं है अपितु प्रत्येक मानव का यही कर्तव्य बनता है जो कहानी की नायिका आभी के द्वारा निभाया गया है। कितने ही सेनानी पर्वतीय क्षेत्रों में घूमने के लिए जाते हैं बहुत ही कम उनमें सफाई का ध्यान रखते हैं। क्षेत्रीय लोग भी इसके लिए सजग नहीं है। कहानी में लेखक के द्वारा मानवता एवं कुछ लोगों की स्वार्थी मानसिकता को भी प्रस्तुत किया गया है।

संदर्भ सूची :–

1. लेखक एस आर हरनोट, कहानी–आभी, आधार प्रकाशन, पंचकुला प्राइवेट लिमिटेड, पृष्ठ संख्या–9
2. लेखक एस आर हरनोट, कहानी–आभी, आधार प्रकाशन, पंचकूला प्राइवेट लिमिटेड, पृष्ठ संख्या–12
3. लेखक एस आर हरनोट, कहानी–आभी, आधार प्रकाशन, पंचकुला प्राइवेट लिमिटेड, पृष्ठ संख्या–13
4. लेखक एस आर हरनोट, कहानी–आभी, आधार प्रकाशन, पंचकुला प्राइवेट लिमिटेड, पृष्ठ संख्या–14
5. लेखक एस आर हरनोट, कहानी–आभी, आधार प्रकाशन, पंचकूला प्राइवेट लिमिटेड पृष्ठ संख्या–15
6. लेखक एस आर हरनोट, कहानी–आभी, आधार प्रकाशन, पंचकूला प्राइवेट लिमिटेड, पृष्ठ संख्या–16
7. लेखक एस आर हरनोट, कहनी, आभी, आधार प्रकाशन, पंचकूला प्राइवेट लिमिटेड, पृष्ठ संख्या–17
8. विनोद शाही– कथा की सैद्धांतिकी, आर प्रकाशन, पंचकूला प्राइवेट लिमिटेड, पृष्ठ संख्या –39

दूरभाष क्रमांक–9418843474

ईमेल–gautamseema1003@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 149–160

शैलेश मटियानी के कथेतर साहित्य की भाषा

दीपमाला
भोधार्थी, उतराखण्ड मुक्त वि वविद्यालय, हल्द्वानी नैनीताल, उतराखण्ड
डॉ. संजय सुनाल
प्राध्यापक, एम. बी. पी. जी. कॉलेज, हल्द्वानी नैनीताल, उतराखण्ड।

सारांश :–

'' ाब्दै मारा मारिया, भाब्दै राजे राज–
जे नर भाब्द पिछानिया, सरिया सारे काज!
भाब्द की महिमा अकथ अपार–
गूँजे जो नित अंतर्घट में कर दे बेड़ा पार !
भाब्द की गूँज अन्नत अपार !
भाब्द से पहले कुछ नहीं था
ना पृथिवी, न आका ा !
भाब्द हुआ तो दि ाा दि ाा में
फूटा परम प्रका ा !
स्वयं ब्रह्म बन प्रकट हुआ तब प्रथम भाब्द ओंकार !
भाब्द की महिमा अन्नत अपार।''[1] **–भौले□ा मटियानी**

भौले ा मटियानी का कथेतर साहित्य काफी समृद्ध रहा है। मटियानी जी ने निबन्ध, प्रेरणादायक संस्मरण, बाल साहित्य, लोक साहित्य और पत्र साहित्य लिखे है। हिन्दी साहित्य में भौले ा मटियानी के अमूल्य योगदान के लिए उतराखण्ड सरकार द्वारा प्रतिवर्श चयनित ि ाक्षकों को भौले ा मटियानी पुरस्कार दिया जाता है।

प्रस्तावना :–

सामंतवाद में पद्य, आधुनिक काल में कथा साहित्य और उतर–आधुनिकता की केंद्रिय विद्या कथेतर साहित्य है। कथेतर साहित्य का सौन्दर्य भास्त्र एक साथ कई भावों के समकोणीय आरोहण पर टिका हुआ है। मटियानी जी ने बारह निबन्ध, तीन संस्मरण, दस लोककथा साहित्य, पन्द्रह बाल साहित्य का सृजन किया है साथ–ही–साथ दो पत्रों का संपादन कार्य किया है।

शैलेश मटियानी का कथेतर साहित्य :–

निबन्ध :

1. जनता और साहित्य, 1976
2. लेखक और संवेदना, 1983
3. त्रिज्या, 1984
4. यदा–कदा, 1985
5. मुख्यधारा का सवाल, 1988
6. राश्ट्रभाशा का सवाल, 1988
7. कागज की नाव, 1991
8. कभी–कभार, 1993
9. किसे पता है राश्ट्रीय भार्म का मतलब, 1995
10. राश्टीयता की चुनौतियाँ, 1997
11. किसके राम कैसे राम, 1999
12. कहानी कैसे बनती है प्रका ानाधीन।

संस्मरण :–

1. लेखक की हैसियत से, 1974
2. पर्वत से सागर तक, 2000
3. मुड़–मुड़ कर मत देख, 2001

लोककथा साहित्य :–

1.	कुमायूँ की लोककथाएँ–1	1958
2.	कुमायूँ की लोककथाएँ–2	1958
3.	कुमायूँ की लोककथाएँ–3	1958
4.	बारामण्डल की लोककथाएँ	1960
5.	अल्मोड़ा की लोककथाएँ	1960
6.	चंपावत की लोककथाएँ	1960
7.	डोटी प्रदे ा की लोककथाएँ	1960
8.	तराई प्रदे ा की लोककथाएँ	1960
9.	नैनीताल की लोककथाएँ	1960
10.	काली पार की लोककथाएँ	1960

बाल साहित्य :–

1. सिन्धु और गंगा
2. अपनी–अपनी परम्परा
3. चुहिया और दूल्हा
4. चाँदी का रूपया और रानी गौरइया
5. तीन रंग की कथा

6. योग–संयोग
7. फूलों की नगरी
8. भरत–मिलाप
9. सुबह के सूरज
10. माँ तुम आओ
11. मॉ की वापसी
12. बिल्ली के बच्चे
13. यजमान और पुरोहित
14. हाथी और चींटी की लड़ाई
15. खांसी को फांसी

सम्पादित पत्रिकाएँ :–

1.	विकल्प	1967 से 1975	कुल नौ अंक
2.	जनपक्ष	1977 से 1988	कुल पन्द्रह अंक

शैलेश मटियानी के कथेतर साहित्य की भाषा :–

भौले ा मटियानी जी की भाशा के बारे में रामधारी सिंह 'दिनकर' जी अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं– ''मटियानी जी भाशा लहालोट कर देने वाली होती है।''[2]

भौले ा मटियानी जी ने अपने भाशा के सम्बन्ध में कहा हैं– ''भाशा मनुश्य की संवेदना और उसके चैतन्य के बीच का सेतु है, यह कहना अप्रासंगिक इसलिए नहीं लग रहा है कि यही वह माध्यम है, जिसके द्वारा कोई लेखक प्रकृति और परमात्मा अथवा पदार्थ और सत्ता के बीच की मनुश्य की भूमिका को साहित्य में बदलता है। दरअसल भाशा का ठीक वही रि ता हमारे सामान्य जीवन से नहीं होता जो हमारे लेखक होने से होता है। भाायद, लेखक होने का सबसे अधिक संघर्श अपने आपको अभिव्यक्त करने का नहीं, बल्कि अनुभव को परिभाशित करने का होता है। अभिव्यक्ति के लिए जो भाशा पर्याप्त हो सकती है, अनुभव और परिभाशित करने के लिए नहीं हो पाती है। चूँकि अभिव्यक्ति की प्रक्रिया लेखक के तात्कालिक भाशा–सामर्थ्य से संबन्ध रखती है, किन्तु अनुभव करने की प्रक्रिया लेखक से निरन्तर अपेक्षाकृत संवेदन ील और अनुभव किए हुए के लिए गतिमान भाशा की मॉग करती है। लेखक के लिए, यदि वह अपने अनुभव करने की प्रकिया में रूढ़ और अतीतजीवी नहीं हो गया है, यही कारण है कि वह निरन्तर अपने भीतर भाशा की तला ा भाुरू करता है। वह जानता है कि यह नये सिरे से भाब्दों के अविश्कार की प्रक्रिया नहीं है, सिर्फ उस भाशा की खोज है, जो प्रत्येक क्षण ठीक उतनी ही संवेदन ीलता, त्वरा और संरचनात्मकता के साथ उसके भीतर अस्तित्व ग्रहण करते हुए अनुभवों का साथ दे सकती है, जिस तरह बढ़ते हुए पौधों का साथ पानी देता है, हवा देती है और धूप–यानी प्रकृति।''[3]

भौले ा मटियानी जी के कथेतर साहित्य की भाशा सरल, सरस व प्रवाहपूर्ण है। भौले ा मटियानी जी की भाशा में कुँमाउ की छटा विद्यमान है। मटियानी जी की भाशा में मानवों में संस्कार की अनोखी प्रतिभा विद्यमान है। भौले ा मटियानी जी ने कुँमाउ से लेकर मुम्बई तक की भाशाओं का वर्णन अपनी रचनाओं में किया है। मटियानी जी ने पर्वत से सागर तक की सभी गतिविधियों का वर्णन किया है। भौले ा मटियानी जी ने रचनाओं

में बोलियों, उपबोलियों, लोकभाशा, लोक कहावतों, लोकगीतों, मुहावरों आदि सभी का बहुत सुन्दर तरीके से साहित्य में प्रयोग किया है। भौले ा मटियानी जी की प्रखर लेखनी और अनूठी पकड़ से साहित्य का कोई भी क्षेत्र अछूता नहीं रहा है। मटियानी जी की भाशिक कलात्मकता ने मटियानी जी को हिन्दी साहित्य जगत में एक अलग स्थान दिलाया है।

1. शैलेश मटियानी जी के कथेतर साहित्य के भाषा की शब्दावली :

अंग्रेजी शब्द :

पोर्पेट, टेजडी, कम्यूनिज्म, एलि ायेसन, बीटनिक, जेनुइन, प्राइवेट मिडिल स्कूल, अपर–प्राइमरी, एडजस्ट, कम्यूनिस्ट पार्टियों, इंग्लैंण्ड, मार्क्स–एंजिल–लेनिन, द कैपिटल, लिंक लैंग्वेज, ऐंग्लो–इण्डियन, रॉयल डॉयलाग, डयूकों, डॉयलाग, विक्टोरियन इंग्लि ा, चेकपोस्ट, माउण्ट बेटन एण्ड कम्पनी, टाटा–बिड़ला, मल्टीने ानल कंपनियों, फाइव स्टार, कम्प्यूटर, वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल, इंग्लि ा मिडियम, इण्डियन कांस्टीटयू ान, गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया, सुप्रीम कोर्ट ऑफ द इण्डिया एडी ानल, गारण्टी, ब्रिटि ा–अमेरिकी, प्रेजीडेन्ड, ने ानल लैंग्वेज, इण्डियन कांस्टीच्यू ान, ईस्ट इण्डिया कम्पनी, गवर्मेण्ट ऑफ इण्डिया, दून– ोरवुड–स्टीफन–मॉडल, रॉयल लैंग्वेज, प्रेसक्रिप् ांस, रजिस्टर्ड, भौडो–लैंग्वेज, प्रॉपर्टी, नवभारत टाइम्स, गारण्टी, यूनियन सर्विस कमी ान, सब–कांटीनेन्टल–डेमोक्रेसी, एलाउ, क्लब, सिविल लाइन्स, इंडियन्स एण्ड डॉग्स आर नॉट एलाउड, भौल बी द ऑफि ियल लैंग्वेज ऑफ द यूनियन ऑफ द इण्डिया, प्रेसीडेन्ट, प्रोप्राइटर ऑफ द ने ान, इम्पीरियल–लैंग्वेज, देन सो हाट, कांस्टिटयू ानल प्राविजंस ऑफ द ऑफि ियल लैंग्वेज, रॉयल डिक् ान, कोड, लैंग्वेज, ने ान, ऑफिस, ने ानल लैंग्वेज, दून भोरवुड, टेम्स, मॉडल–स्टीफन, किंगमेकिंग, पैनलकोडो, जस्टीफाई, मी लार्ड, कलक्यूलेटेड, ब्लूस्टार आपरे ान, ब्लू फिल्मी, फेयरफैक्स बीफीस काड, ब्लूस्टार आपरे ान, ब्लैकपडर ऑपरे ान, एग्लोइण्डियन, सुपरमैन, मल्टीने ानल्स, रेडीमेड, दून भोरवुड सेंट स्टीफनो, इण्डिया टुडे, यूनियन जैंक, प्रेसीडेंट, एलिजाबेथ एपिसोडस, टी वी सीरियल, हॉलीवुड, हाइलाइट, सेंसर बोर्ड, ब्रिटि ा मॉडल, कमाण्डर, फेयरफवस और बोफोस, इमर्जेसी, लूस्टार ऑपरे ान, इण्डियंस एण्ड डाग्स आर नाट अलाउड, गवनमेण्ट ऑफ इण्डिया, इण्डियन कास्टीटयू ान, कास्टीच्यू ान ऑफ इण्डिया, सोहवाट, राइटर, ग्रेटेस्ट राइटर ऑफ द वरल्ड, एज्यूकेटेड, मेरिनलाइन्स, म्यूनिसिपल, सेण्टल–पब्लि ार्स, लैम्पपोस्ट, ए जी ऑफिस, जनरल स्टोर्स, ग्रांट रोड, इन्सपेक्टर साहिबा, सब–इन्सपेक्टर, डाइवर, मरीनडाइव, बिजनिस, बिल्डिंग, रेलवे–लाइन, लोकल–टेन, रेलवे–स्टे ान, म्यूनिसिपैलिटी, क्लोजिंग, ओपन, पी ए सी, नैनी सेंटल, टाइफौइड, डॉक्टर, मार्केट, फोटोग्राफों, क्लियरेंस, सैल्फ पोर्टेट, भोयर होल्डरों, रीडिंग, टेड मार्क्स, वेटस, मेजरमेन्टस, कम्पनी, लिमिटेड कम्पनियों, मार्केट वेल्यू, कम्यूनिज्म, मार्केटिंग कैपेसिटी, टेड–मार्क, बल्क परचेज, कल्क्यूलेटेड, क्लासिक, ऐन्टी, फै ान, ऐबसर्ड, आउटसाइटर, प्रोफाउंड, डेनमार्क, मेटामॉफोसिस।

संस्कृत शब्द :–

'श्रुणवन्तु वि वे अमृतस्य पुत्रों,

'पितु–मातु सहायक, स्वामि–सखा–सब ही तुम नाथ हमारे हौ।',

'अक्षर पितरो अमीमदन्त पितरोअतीतृपन्तपितरः पितरः पितरः भ्युन्धध्वम',

'नमो भगवते वासुदेवाय',

'अस्मनमाता लक्ष्मी देवी सा भारद्वाज सगोस्त्रा वसुरूपा तृप्यंतम इदं सलिलं जलम तस्मै स्वधा नमः',
'तेन त्यक्तेन भुज्जीथाः',
'हौ चाकर रघुनाथ की पटयौ, लिख्यो दरबार, अब तुलसी का होयेंगे, नर के मनसबदार!'
'उत्पत्यते कोडपिमम समान धर्मा',
'कवित विवेक नेक नहिं मोरे, सत्य कहहुँ लिखी कागद कोरे'
'स्वान्तः सुखाय रघुनाथ गाथा',
'डासत ही सब नि ाा सिरानी, कबहुँ न नाथ नींद–भर सोयो',
'कालोहायंनिरवधि विपुला च पृथ्वी',
'कीन्हें प्राकृत जन गुनगाना ! भुँइ परि गिरा लागी पछताना',
'काटे–चाटे भवान के, दुहुँ भाँति विपरीत',
'वागार्था विव सम्पृक्तौ वागार्थ प्रतिपत्रये, जगत पितरौ वंदे पार्वती परमे वरी',
'तमसो मा ज्योतिगमय',
अनुभवतिहि मूर्द्धना पादपस्तीब्रमुश्रणम, भामयति परितांप छायया संश्रितानाम,
उत्पत्यते कोडपिमम समान धर्मा,
मूँदहुँ नयन कतहु कछु नाहीं का,
मुनि न होईं यह नि ाचर घोरा,
कनक भूधराकार सरीरा,
छायया संश्रितानाम,
पापोहं पापकर्मोहं,
नेति–नेति कहि ब्रह्म बखाना,
माता पृथ्वी अहं पुत्रो पृथिव्याः,
कवित विवेक नेकु नहिं मोरे,
भिक्षां देहि,
ओम विश्णु विश्णु विश्णु,
ि ाव ओम ि ाव ओम,
कठिन भूमि कोमल पदगामी,
स्वान्तः सुखाय,
सुखी मीन जहँ नीर अगाधा,
कालोहायं–निरवधि विपुला च पृथिवी,
बरसहिं जलद भूमि नियराए,
होहु कपट मृग तुम छलकारी,
हरित भूमि तृन संकुलित, समुझिं परहिं नहिं पंथ,
विशया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिन, रसवर्ज रसोप्यस्यं परं दृश्टवा निवर्तते,

ई वरासिद्धे प्रमाणाभावात।

उर्दू शब्द :–

तकलीफदेह, अफसोस, चरैवेति, उम्मीद, उजाड़, उम्र, अस्मिताफरो ा, अफसोसनाक, अ ारफ, भाराफत, भाहनाज, अम्मा, खुराफातें, बेकसूरों, ख्वाहि ा, हाय–तोबा, रोज–रोज, फजीहत, बख्भा, बेवकूफों, मियॉ, सहूलियत, अब्बा, त ारीफ, नसीहतें, तकलीफ, तसव्वुर, खुर्खाब, जलील, उसूलों, फ्रिक, अलमस्त, खिदमत, तकरीबन, परवरि ा, असलियत, गुंजाइ ा, हिमायती, दाम, नदारत, इतमीनान, चौतरफा, दस्तख्त, दरअसल, लिहाज, कादिर उस्ताद, तमा ाइयों, अययो–अययो, आइसा–कइसे, बर्दा स, पैले–पैले, परवरि ा, तमा ाबीन, वफादारी, तालीम, हिदायत, आलपीन, जेबकतरे, लाकेट, गिरोह, तमा ाा, राई–रत्ती, जालिम, होि ायार, हिकारत, आलपीन, पारसी, येच–आहे, इतमीनान, भारमाते– ारमाते, भाास्तरी, हाजी, मलंग ाा, पैगाम, कव्वालियों, भाायर, इबादत, बेमिसाल, सुलतानी, टेकने, पीर, गुनाहों, हुलिया, खैरात, फरेब, दरगाह, अलबत्ता, हसरत, पीर–फकीरों, बदतर, चिलम, तकदीर, बे ारम, बर्दास्त, फिकर, लावारिस, तीसमारखा, अहीरन, हो ोहवास, ख्वाहि ामन्द, दह ात, मसीहा, ख्यालातों, जज्बातों, बेहतरीन।

आंचलिक शब्द :–

काटे–चाटे, समूह–सम्मतता, युद्ध–मुद्रा, भात्रु–क्षेत्र, सुख–समृद्धि, समाज–सम्मत, लम्बी–चौड़ी, साधन–सम्पन्न, सत्ता–व्यवस्था, महिमा–मण्डित, मानव–समूहों, धूल–ढेले।

राष्ट्रीय धुन :–

'य ास्वी रहें, हे प्रभो हे मुरारी, चिरंजीवी रहे राजा व रानी हमारे',

'जन गण मन',

राष्ट्रीय गीत :–

'जन गण मन अधिनायक जय हे भारत भाग्य विधाता',

प्रार्थना :–

पितु–मातु, सहायक, स्वामी–सखा, तुम ही सब नाथ हमारे हो।

गाँव से संबन्धित शब्द :–

अल्मोड़ा।

प्राकृतिक परिवेश :–

आका ा, विराट, घने अरण्य, वनस्पति–संकुल, द्रोणियों, तेज हवा, द्वीप, पृथ्वी, समुद्र तट, नक्षत्र, पर्वत, ऊँची पहाड़िया, द ाों–दि ाओं, अंधकार, भूमि, जल, अग्नि, हवा।

स्थान :–

बम्बई, कोलकत्ता महानगर, चर्चगेट, मुॅबादेवी के मन्दिर के सामने।

फलों के नाम :–

किल–मोड़ा, हिंसालू, घिंघालू, केले, अमरूद, चीकू, आम।

योजक शब्द :–

व्यवस्था–संबन्धी, लेखक–जीवन, मानव–समाज, खेलते–कूदते, वाल्मीकि–वेदव्यास, ट–पौ–औ–ट,

ढोलक–मंजीरे, सहमी–सहमी, स्मरण– ाक्ति, धूमकेतु–सा, भोले–नि चल, पुरस्कार–समारोह, एक–से–एक, क–ख–ग, अनुभव–जगत, धीरे–धीरे, जो–कुछ, अनुभव –सम्पन्नता, ढोल–मृदंग–मंजीरे, प्र न–चिन्ह, जीवन–पर्यन्त, तब–तब, अपने–आपको, भाशा–सामर्थ्य, भाशा–चेतना, अनुभव–संसार, भाशिक–असामर्थ्य, होना–मात्र, खींच–खींच, अधिक–से–अधिक, लिखने–पढ़ने, चाट–चाट, टूटने–टूटने, इर्द–गिर्द, जान–बूझ, जो–कुछ, बहते–बहते, सामने–सामने, का–सा, ठीक–ठीक, की–सी, भटकते–भटकते, बार–बार, कभी–कभी, भीतर–ही–भीतर, सब–कुछ, टेढ़ी–मेढ़ी–सी, देते–देते, कम–से–कम, सही–सही, कहीं–न–कहीं, खुद–ब–खुद, साफ–साफ, साधन–सम्पन्न, पूरा–पूरा, खाते–खाते, चलते–चलते, अलग–अलग, जरा–सा, अन्दर–ही–अन्दर, सारी–सारी, सीधा–साधा, एक–के–बाद–एक, बने–बनाये, धीमे–धीमे, सामने–सामने, माता–पिता, मातृ–पितृ–वंचना, दादा–दादी, इर्द–गिर्द, द्रोणियों–नदियों, उड़ते–उड़ते, आस–पास, छोटे–से, अधिक–से–अधिक, स्त्री–पुरूश, बालक–वृद्ध, छोटी–छोटी, लिए–लिये, पितु–मातु, स्वामि–सखा, प्रार्थना–पाठ, भाग्य–विहीन, अपने–अपने, सुबह–सुबह, बार–बार, साफ–साफ, कही–न–कही, फूट–फूट, गाय–बकरियॉ, घास–लकड़ी, साथ–साथ, अधिक–से–अधिक, गॉव–गॉव, दे ा–काल, टूटते–टूटते, जान–बूझ, जूते–चप्पलों, बहते–बहते, सामने–सामने, साहित्य–रचना, ठीक–ठीक, भटकते–भटकते, बार–बार, कभी–कभी, भीतर–ही–भीतर, एक–दूसरे, सब–कुछ, टेढ़ी–मेढ़ी–सी, की–सी, देते–देते, जो–कुछ, कम–से–कम, सही–सही, कहीं–न–कहीं, खुद–ब–खुद, क्रिया–मात्र, सारे–के–सारे, जब–जब, तब–तब, बार–बार, पाठक–प्रसं ाक, बहुत–सी, साधन–सम्पन्न, आमने–सामने, पीछे–पीछे, कहीं–न–कहीं, धीरे–धीरे, बोलते–लिखते, रंगत–भर, धुंधला–सा, तिल–भर, मुर्ति–वंदना, इर्द–गिर्द, आल–बाल, सुरक्षा–कवच, ताना–बाना, आस–पास, समाज–सम्मत, तर्क–संगत, कालिदास–सूरदास–तुलसीदास, कवि–लेखकों, भाोशित–पीड़ितों, वं ा–परम्परा, स्वस्ति–वाचन, परीक्षा–भवन, काव्य–गोश्ठी, अभिनन्दन–समारोह, ऐसी–तैसी, चुनाव–सम्बन्धों, हित–अहित, बहुत–से, साहित्य–क्षेत्र, विचार–गोश्ठियॉ, लिखे–पढ़े, भीतर–भीतर, मनुश्य–मात्र, एक–दूसरे, जान–बूझकर, साधन–सम्पन्न, कवि–कर्म, जो–कुछ, आप–जैसे, बार–बार, मोह–भंग, दम्भ–दूशित, बाजार–भाव, चका–चौंध, तिल–भर, जो–कुछ, जान–बूझकर, वत्सल–निधी, खरीद–फरोख्त, मानव–समाज, तमाम–तमाम, टाटा–बिड़ला, मूल्य–विरोंधी, सीधा–सीधा, राम–लक्ष्मण, देखता–सुनता, अनेक–अनेक, चाचा–चाची, ढलते–ढलते, होते–होते, खींच–खींच, लिखने–पढ़ने, समय–समय, जब–जब, तब–तब, क्या–क्या, भाई–बहन,सैकड़ो–सैकड़ो, दूर–दूर, कभी–कभार, आते–आते, भरी–भरी, एक–एक, आने–जाने, तिल–तिल, दिनों–दो–दिन, अस्तित्व–रक्षा, पुत्र–पौत्र, जोर–जोर, पीठ–पीछे, रोम–रोम, पहली–पहली, बुझती–डूबती, पैतृक–सम्पत्ति, ढलते–ढलते, दो–दो, की–सी, दिन–भर, कमाने–गॅवाने, चार–चार, देख–देखकर, आत्म–रचना, जीवन–द ान, आर–पार, उच्चारण–मात्र, दे ा–काल, टूटते–टूटते, जान–बूझ, बहते–बहते, सामने–सामने, साहित्य–रचना, ठीक–ठीक, भअकते–भटकते, बार–बार, कभी–कभी, भीता–ही–भीतर, एक–दूसरे, सब–कुछ, टेढ़ी–मेढ़ी–सी, की–सी, देते–देते, जो–कुछ, कम–से–कम, सही–सही, कहीं–न–कहीं, खुद–ब–खुद, क्रिया–मात्र, सारे–के–सारे, जब–जब, तब–तब, बार–बार, पाठक–प्र ांसक, बहुत–सी, आल–बाल, साधन–सम्पन्न, आमने–सामने, पीछे–पीछे, कहीं–न–कहीं, धीरे–धीरे, बोलते–लिखते, रंगत–भर, धुधॅला–सा, तिल–भर, मूर्ति–वंदना, इर्द–गिर्द, समाज–सम्मत, सुरक्षा–कवच, ताना–बाना, आस–पास, तर्क–संगत, कालिदास–सूरदास–तुलसीदास, कवि–लेखकों, भाोशित–पीड़ितों, वं ा–परम्परा, स्वस्त्रि–वाचन, परीक्षा–भवन, काव्य–गोश्ठी, अभिनन्दन–समारोह, ऐसी–तैसी, चुनाव–सम्बन्धों, हित–अहित, बहुत–से, साहित्य–क्षेत्र,

विचार–गोश्ठियॉ, लिखे–पढ़े, भीतर–भीतर, मनुश्य–मात्र, एक–दूसरे, जान–बूझकर, कवि–कर्म, जो–कुछ, आप–जैसे, बार–बार, मोह–भंग, दम्भ–दूशित, बाजार–भाव, चका–चौंध, तिल–भर, जो–कुछ, वत्सल–निधि, खरीद–फरोख्त, मानव–समाज, तमाम–तमाम, टाटा–बिड़ला, मूल्य–विरोधी, सीधा–सीधा, तू–तू, मैं–मैं, टॉय–टॉय, सोच–विचार, सुबह–सुबह, सोच–विचार, दीवार–सी, आमने–सामने, सौ–पचास, चालीस–पचास, ठीक–ठाक, काम–काज, जहॉ–जहॉ, जिन–जिन, भूगोल–खगोल, संचार–माध्यमों, ज्यों–का–त्यों, सब–कुछ, कोि ा ा–मात्र, ज्ञान–विज्ञानों, दे ा–विदे ा, ज्ञान–विज्ञान, इतिहास–भूगोल, विचार–कला, साहित्य–संस्कृति, कला–संस्कृति, जॉच–परख, भरत–मिलाप, एक–न–एक, हवा–पानी, गंगा–जमुनी, अलग–अलग, ज्यों–का–त्यों, राग–विराग, बोयी–गौड़ी, लूट–खसोट, कहा–का–कहा, सामाजिक–आर्थिक, नाद–निनाद, धीमे–धीमे, करोड़ो–करोड़, मुॅह–सामने, आर्थिक–राजनैतिक, भुभ–लाभ, अंग–उपांग, उलटना–पुलटना, भारतवासी–आसेतु–हिमालय, ज्यों–का–त्यों, लिख–पढ़, जगमग–जगमग, टुकुर–टुकुर, पूजा–प्रार्थना, कौन–कौन, किन–किन, लेना–देना, नये–नये, तीन–सौ–पैंसठ।

2. शैलेश मटियानी जी के कथेतर साहित्य के भाषा की विशेषताएँ :–

1. मुहावरे, लोकोक्तियाँ व सूक्तियाँ :

'कागज की नाव कितनी दूर तक जाएगी',
'काजल की कोठरी में कैसोहू समानो जावे',
'गई भैंस पानी में',
'जब नौ मन तेल इक्टठा हो जाए, तब ही राधा नाचे'
'जब लूला जम कर दौड़ने लगेगा, तो उसे गॉव का सरपंच बना दिया जाएगा'
'और न कोई न सुन सके, कै साई कै चित!',
'भूखे भजन न होहिं गुपाला!',
'सुरसरि सम सबकर हित होई!',
'जो अपनी भाशा में स्वतन्त्र न हो, वह सिवा गुलाम के और कुछ नहीं होता',
'खिसियानी बिल्ली खम्भा नोंचे',
'कागज काला करना',
'गरीब की जोरू सबकी भाभी',
'धीरे–धीरे रे मना धीरे सब कुछ होय',
'बहुत कठिन है डगर पनघट की',
'छाप तिलक सब छीनी रे, मोरो नयना लड़ाई के',
'भाशा है बहु भॉति की, जाको नहीं है अन्त–जितनी तेरे काम की, उतनी कर साधन्त',
'आसमान से चले आखिर खजूर में अटके रह गये',
'मसि कागज छूने और कलम हाथ में नहीं लेन',
'ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पड़ित होय',
'कागा रे, मोरा संदेसवा पिया से कहियो जाय',

'जंगल की आग जंगल तक ही रहेगी',
'तुम्हारा सारा बंदोबस्त हम किये देते है',
'कर्म और चिन्तन, एक सिक्के के दो पहलू है, जहां एक भी ओझल, वहॉ संकट अव यम्भावी है।',
'भागते भूत की लॅगोटी से भी संतोश करने का',
'दुखती रग पर हाथ नहीं रखना चाहते',
'एक ही सिक्के के दो पहलू',
'डंके की चोट में सफेद झूठ चलाया जा सकता है',
'नया चली जाय रे, सफेद झूठी नया, चली जाय रे',
'खोदा पहाड़ निकली चूहिया',
'धीमे–धीमे, रे मना, धीमे सब कुछ होय',
'मान–न–मान, हम तेरे मेहमान',
'पंचो की राय सिर माथ',
'हमें कुछ नहीं मालूम',
'जो पहले मारे, सो मीर',
'खून का बदला खून से लेंगे',
'घर भरना',
'तू कहता कागद की लेखी–मैं कहता ऑखिन की देखी',
'हित अनहित प J पक्षिहु जाना',
'जब तक जनता सहयोग नहीं करेगी',
'मिहिरबानी किया जाए हजूर',
'रहम करे मालिक',
' ाातता नाटक चालू आहे',
'चलो बुलावा आया है हमें माता ने बुलाया है',
तनिक इधर आओ,
तू घबराना मत रे खिलावन,
बकरे का अम्मा आखिर कब तक दुआऍ करेगी,
मेरा पेट तो तुम लोगों की नसीहतों से ही भर चुका,
अब लों नाच्यों बहुत गोपाला रे !,
जो बॉभन बभिनी का जाया आन बान ते क्यों नहीं आया,
अनपे जान–माल की सुरक्षा स्वयं करें,
खुद मियॉ फजीहत, दीगरेनसीहत,
इस हाथ दे, उस हाथ ले,
सिमटि–सिमटि जल भरहिं तलावा,

बोलता कहीं अन्यत्र है, उपस्थित कहीं अन्यत्र रहता है,
रचना सबके लिए नहीं होती,
रास्ता ही नहीं, वास्ता भी एक,
अन्न देते हुए अपना विचार न लादने,
जो धूप में चलते है, वृक्षों की भारण्यता का साक्षात्कार करते है,
आगे चलने के उपक्रम में पीछे छूटते गये,
जल का बहना ही नहीं, सूखना भी भाब्द करता है,
आदमी जब स्वयं को खा चुका हो, तो दूसरों को भी नहीं बख्माता,
मनुश्य का भौतान होना यही है– ाब्द की चेतना का जाते रहना,
जैसा समाज होता होता है उसे वैसा ही साहित्य मिलता है,
छोटे मुॅह बड़ी बात,
पानी में पत्थर बॉधे उतरना ठीक नहीं,
कीरति, भनिति और भूति,
अन्न ग्रहण करके विचार देना,
राज हमारा जग में सारा, सुर–नर–मुनि आधीन,
अंधे के द्वारा लाठी को अनुभव से जानने के आधीन,
अॅधेरे में चलने के संकट लाठी के हाथ में आ जाने के साथ समाप्त नहीं प्रारम्भ होते है,
कोई उपाय न रह गये होने की हता ाा का भरपूर साक्षात्कार,
भूति में भी भनिति में भी,
जो स्वयं को, वही दूसरों को भी ठीक सुनता है,
'का ा! खाकी झोलों से भरी हुई ये पुस्तकें मेरे लिये भी होती!',
'मनुश्य सिर्फ उत्पन्न नहीं हुआ, रचा गया है',
'रो ानी में खड़ा रह जाना नहीं, अन्धकार से गुजरना ही यात्रा है!',
'रमे ा का नाम आते ही बि ान रो पड़ता है',
'मैं भार्मिदा हूॅ, मगर करूॅगा वही, जो मैं कर सकता हूॅ',
'मैं कुछ नहीं दे सकता ,मगर ई वर तुझे दे!',
'मुक्त करेंगे जन्मभूमि को, तभी करेंगे हम विश्राम–हिन्दू को धिक्कार है
तब तक, जब तक बंधन में है राम',
'जिस दिन सरकार किसी एक घड़े की पीठ थपथपा देगी, दूसरा मिटटी सूघॅता दिखाई देगा',
'हम तुम्हारे किसी तरह न हुए, तुम हमारे किसी तरह न हुए ! वर्ना दुनिया की तो बात ही छोड़ दें।

वृन्दगान :-

'सारे जहॉ से अच्छा हिन्दुस्ता हमारा, हम बुलबुले है इसकी, ये गुलि ता हमारा',
'जय हे जय हे',

3. शैलेश मटियानी जी के कथेतर साहित्य की विभिन्न शैलियां :-

भौले ा मटियानी जी के कथेतर साहित्य की भौली उनकी रचना भाक्ति को जीवन्त बनाती है तथा उनके कथेतर साहित्य में प्राण ाक्ति का संचार करती है। उनके कथेतर साहित्य को रचनागत वै ाश्टय से जोड़कर एक गरिमामय व प्रभाव ाली व्यक्तित्व प्रदान करती है। भौले ा जी के कथेतर साहित्य की भौली उनके भावों, विचारों व व्यक्तित्व के अनुरूप है। भौले ा मटियानी जी की भौली उनके मन और मस्तिश्क का प्रतिरूप है। भौले ा जी की कथेतर साहित्य की भौली प्रभावोत्पादकता, सरलता, सहजता और सरसता की अभिव्यंजना करती हुई उनकी रचनाओं को गौरवपूर्ण स्थान प्रदान करती है।

बाबू गुलाबराय जी भौली के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखते हैं– '' ौली अभिव्यक्ति के उन गुणों को कहते हैं जिन्हें लेखक या कवि अपने मन को प्रभाव के समान रूप में दूसरों तक पहुॅचाने के लिए अपनाता है।''[4]

भौले ा मटियानी जी ने अपने कथेतर साहित्य में निम्न भौलियों का प्रयोग किया है :–

1. समास भौली
2. वि लेशणात्मक भौली
3. वर्णात्मक भौली
4. विवेचनात्मक भौली
5. व्याख्यात्मक भौली
6. आलोचनात्मक भौली
7. विवरणात्मक भौली
8. आत्मकथात्मक भौली
9. डायरी भौली
10. पत्रात्मक भौली।

निष्कर्ष :-

बहुमुखी प्रतिभा के धनी भौले ा मटियानी जी का अनुभव संसार काफी विपुल है। भारतीय समाज व संस्कृति के इस पुरोधा ने हिन्दी जगत में नये युग का सूत्रपात किया। बाल्यावस्था से ही प्रकृति के साहचर्य में मटियानी जी को साहित्य सृजन की भाक्ति मिली थी। भौले ा मटियानी जी उत्कृ ट कोटि के साहित्यकार थे। मटियानी जी का कथेतर साहित्य काफी समृद्ध रहा है।

''बिना भाब्द के नहीं प्रार्थना
और न प्रभु से नाता–
बिना भाब्द के महाकाल की गाथा कौन सुनाता
हीरे–मोती–सोना–चॉदी–धन दौलत मत मॉगो–
बजे निरन्तर अंतर्घट में प्रथम भाब्द ओंकार!
बिना भाब्द के न नमाज, ना कीर्तन, ना गुरूवाणी
बिना भाब्द के निगुर्ण की भी कोई नहीं नि ाानी

वेद–कुरान–बाइबिल तीनों
भाब्द के भिन्न प्रकार!
भाब्द की गूँज अन्नत अपार!''[5]

सन्दर्भ सूची :-

1. तरूलता त्रिपाठी, हॉका, भौले ा मटियानी की कविताएँ, प्रतिश्रुति प्रका ान 7 ए, बेंटिक स्टीट।
2. भौले ा मटियानी, ौले ा मटियानी की सम्पूर्ण कहानियाँ भाग–2, पृ सं 509
3. भौले ा मटियानी, लेखक की हैसियत से, प्रकल्प प्रका ान 261–ए, मोती लाल नेहरू नगर, इलाहाबाद–211002, पृ सं 13, 14
4. डॉ रामचन्द्र तिवारी, हिन्दी का गद्य साहित्य, पृ सं 610
5. तरूलता त्रिपाठी, हॉका, भौले ा मटियानी की कविताएँ, प्रका ाक–प्रतिश्रुति प्रका ान 7ए, बेंटिक स्टीट।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 161-168

भवभूतेः मतानुसारं 'रामचरितम्'

("Bhavabhūteḥ matānusāraṁ Rāmacaritam")

कल्पना, शोधच्छात्रा
डॉ.बी.कामाक्षम्मा, निर्देशिका, आचार्या–
श्रीलालबहादुशास्त्रीराष्ट्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयः, नवदेहली।

'उत्तररामरितम्' महाकवेः भवभूतेः प्रसिद्धं नाटकं वर्तते। यस्मिन् सप्तस्वङ्केषु रामस्योत्तरजीवनस्य कथा वर्णिता अस्ति। भवभूति एकः सफलः नाटककारः येन एतादृशस्य नायकस्य इत्तिवृतमचिनोत् यो भारतीयसंस्कृतेरात्मत्वेन वर्तते। एतस्य कथानकस्य आकर्षणं समस्तभूमण्डले चकासते। साहित्यशास्त्रीयेषु नाटकेषु यत्र वीरशृंङ्गारौ रसौ प्रधानौ भवतः, तत्र भवभूतिः तेभ्यः विपरीतं करुणरसप्रधानं नाटकं विरच्य नाट्यजगति प्रसिद्धिमगात्। अत एव उच्यते - **एको रसः करुण एव निमितभेदात्**[1]'' विवाहपूर्वं नायकनायिक्योः प्रेमवर्णनं सर्वे कवयः साफल्येन कुर्वन्ति परञ्च दाम्पत्यप्रेम्णः यादृशमुज्ज्वलं विशदं च रेखाङ्कनं महाकविना वर्ण्यते तादृशं दुर्लभमन्यत्र।

अत्र रामकथा सप्तस्वङ्केषु निगदिता यस्यां रामस्य राज्याभिषेकानन्तरं तस्य जीवनस्य लोकोत्तरचरितं सूच्यते यत् महावीरचरितस्य उत्तरभागः। श्रीरामचन्द्रस्य आदर्शपतिरूपेण आदर्शपितारूपेण लोकोपकारिनृपत्वेन मर्यादापुरुषोत्तमत्वेन च चरित्रम् उपस्थाप्य कवेः कृतिः विलसति नाट्यसाहित्ये।

अतः एव निगदितम् **उत्तरे रामचरिते तु भवभूतिर्विशिष्यते**[2]। अस्मिन् शोधपत्रे

1. उ॰ रा॰, 3.47
2. कपिलदेवद्विवेदी, संस्कृतनिबन्धशतकम्

तत्र संस्कृतनाटकेषु अपि रामचरितस्य महत्वपूर्णं स्थानं विद्यते। तेषु भवभूति अपि रामचरितं स्वीकृत्य नाटकद्वयं व्यलेखि। कविः स्वलेखन्याः चातुर्येण रामस्य पत्नी परित्यागदोषम् अपाकुरुते। भवभूतेः नाटकयोः विशेषसन्दर्भान् प्रदाय एते विषया अत्र चर्च्यते -

- **आदर्शपतिः**
- **रामः रामस्य पितृभक्तिः**
- **वात्सल्यता**
- **प्रजावत्सलता**
- **रामस्य सहृदयता**
- **क्षमाशीलता विनयभावः च**[1]

श्रीरामचन्द्र उत्तररामचरितस्य एकः दिव्यादिव्यः धीरोदात्तः नायकोऽस्ति। जगति प्रतिष्ठितायाः मर्यादायाः पालनात् तस्यामेव स्वजीवनसमर्पणात् रामः मर्यादापुरुषोत्तमिति नाम्ना स्मर्यते। वस्तुतः रामस्य उत्तरचरितं कारुण्यम् आतनोति। उपरोक्तविषयेषु यानि चरितानि आलोच्यते तत्र सर्वत्र रामस्य करुणामयः हृत्स्पन्दः अनुभूयते।

- **<u>आदर्शपतिः रामः</u>**

रामस्य कृते प्रगाढप्रेम्णः प्रस्तुतये नाटकारम्भे भवभूतिना बहुसमीचीनम् अवसरं निर्मितमस्ति। सर्वाः मातरः गुरुवशिष्ठः अरुन्धत्या च सह जामातुः ऋष्यश्रृंङ्गस्याध्वरे गतवत्यः। सीता च तदा गर्भभारभरा आसीत्तदर्थं रामलक्ष्मणावपि तत्रैव तस्याः मनोविनोदार्थमासताम्। यदा ते चित्रवीथ्यां चित्राणि पश्यन्ति स्म तदा रामः सीतायाः विषये किमपि विपरीतं न श्रृणोति। सः तस्याः शुद्धता-पवित्रता च विषये पूर्णरूपेणाश्वस्तोऽस्ति। कथयति च -

उत्पत्तिपरिपूतायाः किमस्याः पावनान्तरैः।

1. उ.रा. 1.13

तीर्थोदकञ्च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः॥[1]

रामेण जानक्याः यौवनावस्थायाः मनोहरं वर्णनं क्रियते-

प्रतनुविरलैः प्रान्तोन्मीलन्मनोहरकुन्तलैः-
दशनमुकुलैर्मुग्धालोकं शिशुर्दधती मुखम्।
ललितललितैर्ज्योत्स्नाप्रायैरकृत्रिमविभ्रमै-
रकृतमधुरैरम्बानां मे कुतूहलमङ्गकैः॥[1]

इतोप्यधिकं यथा-

किमपि किमपि मन्दं मन्दमासत्तियोगा-
दविरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण।
अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णोः
रविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत्॥[2]

भवभूतेः रामस्य चरितं तदा पराकाष्ठां प्राप्नोति यदा ते स्वप्राणप्रियां सीतां प्रजारञ्जनाय स्वगृहाद् निर्वासयन्ति। यद्यपि रामः राजधर्ममनुपालयन् ईदृशं कार्यं करोति तथापि सः मानसिकरूपेण बहुक्षुब्धोः आसीत्। तृतीयेऽङ्के सीतां प्रति रामस्यानिर्वचनीयं प्रेमभावं दृश्यते, यदा सः सीतां स्मृत्वा स्मृत्वा मूर्छितो भवति तदा सीताया अमृततुल्यकरस्पर्शेणैव चेतनतामाप्नोति तत्र तयोः गाढानुरागो दृग्गोचरो भवति। तत्स्पर्शसुखं प्रति कथयति रामः -

अलिम्पन्नमृतमयैरिव प्रलेपैरन्तर्वा वहिरपि वा शरीरधातून्।
संस्पर्शः पुनरपि जीवयन्नकस्मादानन्दादपरविधं तनोति मोहम्॥

सीतां प्रति रामस्य हृदये अवर्णनीयः प्रेमातिशयो विद्यते। सीतानिर्वासनरूपी कन्टकः तस्य मनसि सदैव पीडामुत्पादयति। वस्तुतः रामः पत्नीव्रतीनामादर्शोऽस्ति। कामस्य तु का वार्ता, धर्मस्य कृते अपि ते द्वितीयं विवाहं न कुर्वन्ति।

यथा अश्वमेधयज्ञे सहचारिणी अवश्यं भवेत्, यथोक्तं तत्र - **<u>अयज्ञीयो ह्येष अपत्नीकः</u>**, एतावत् धार्मिके बन्धने सत्यपि ते पुनर्विवाहस्य परिकल्पनापि न कुर्वन्ति उत् सीतायाः हिरण्यमयीं प्रतिकृतिम् अर्धाङ्गिन्या आसने स्थापयन्ति।

---

2. उ.रा., 1.20
3. उ.रा, 1.27

रामे सीताय अगाधं प्रेमराशिः पूञ्जीभूतास्ति। सः तस्याः वियोगं क्षणमात्रमपि न सोढुं शक्नोति। सीता तस्य गृहलक्ष्मी वर्तते, तस्याः स्पर्शं सीतायाः कृते चन्दनस्येव शीतलो अस्ति। यथोक्तं तेनैव तत्र-

इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिनयनयोः
रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहुशश्चन्दनरसः।
अयं बाहुः कण्ठे शिशिरमसृणो मौक्तिकसरः
किमस्याः न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरहः॥[1]

सस्नेहं सीताया अङ्गानि परामृश्यन्नाह रामः -

अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु य-
द्विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः।
कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्प्रेमसारे स्थितं
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथम्प्येकं हि तत् प्रार्थ्यते॥

एवं दृश्यते यत् तेषां स्नेहः वासनाभावं परित्यज्य अत्युदात्तभावं प्राप्तवानासीत्।

- **<u>वात्सल्यता :</u>**

रामस्य मनसि स्वसन्ततिं प्रत्यपि अत्यधिकं स्नेहमासीत्। षष्ठेऽङ्के सः कुशलवौ दृष्टवा वक्तुमुद्यतो भवति, यथा-

अमृताध्मातजीमूतस्निग्धसंहननस्य ते।
परिष्वङ्गाय वात्सल्यादयमुत्सुकायते॥

श्लोके अस्मिन् जनोऽयं रामः वात्सल्याद् हेतोः जलसम्भारितमेघवत् स्निग्धं शरीरं यस्य तस्य ते समालिङ्गनाय समुत्सुको वर्तते, कथयति च - **आगत्य मां परिष्वजस्व।** अन्यस्मिन् श्लोके अपि स्वकनिष्ठं पुत्रं लवं निर्वर्ण्य तस्य हृदये पुत्रप्रेमोत्पद्यते। सः विचारयति **किमयं मे पुत्रोऽस्ति** ? यदयं सर्वेभ्यो अङ्गेभ्यः सृतो मम वात्सल्यसमुत्थो मे शरीरस्योत्तमांश इव स्थितः यद्वा मम देहधारकश्चैतन्यरूपः पदार्थः एव मूर्तिमान् भूत्वा शरीराद् बहिः स्थितः इव, किं वा प्रगाढानन्दनेन आलोडितस्य मे हृदयस्य निष्यन्दनेन निर्मित इव, आलिङ्गनकाले पीयूषरसप्रवाहेण मे

[1] उ.रा. 1.38

शरीरं सिञ्चतीव। अस्य बालकस्यालिङ्गनेन तादृशो महानानन्दोऽनुभूयते, मन्ये वात्सल्यवशाद् मे देहसारश्चेतनाधातुरेव वा सर्वेभ्योऽङ्गेभ्यो बहिर्भूय बालकरूपेण विद्येत, अपि च अत्यधिकानन्देन मथितस्य मम हृदयस्य निष्यन्दनेनायं रचितः स्यादमुं भावं प्रस्तौति श्लोकोऽयं -

अङ्गादङ्गात् सृत इव निजस्नेहजो देहसारः
प्रादुर्भूय स्थित इव बहिश्चेतनाधातुरेव।
सान्द्रानन्दक्षुभितहृदय प्रस्नवेनेव सृष्टो
गात्रं श्लेषे यदमृतरससस्रोतसा सिञ्चतीव॥[1]

- **<u>रामस्य पितृभक्ति :</u>**

केषुचित् प्रसङ्गेषु एवं दृश्यते यत् रामे स्वपितरं प्रत्यपारं स्नेहमासीत्। यथा चित्रदर्शनावसरेऽपि सः स्वपितुः स्मरणं कृत्वा रुदति। अस्मात् प्रसङ्गात् रामस्य स्वजनकं प्रति प्रेमभावः दृश्यते यथा-

जीवत्सु तातपादेषु नवे दारपरिग्रहे।
मातृभिश्चिन्त्यमानानां ते हि नो दिवसा गताः॥[2]

स्वमातुः केकैय्याः अपि सः तादृशमेव सम्मानं करोति यादृशं कौशल्यायाः करोति। यदा लक्ष्मणः सीतां मन्थरायाः चित्रं दर्शयति तदा तां प्रति समादरभावं प्रकटयन् रामः मन्थरावृत्तान्तसूचकस्थलात् **<u>सत्वरमन्यतो दर्शये</u>**[3] त्येवमुक्त्वा जानक्याः ध्यानं श्रृङ्गवेरपुरस्य इङ्गुदीवृक्षे आकर्षयति।

- **<u>प्रजावत्सलता :</u>**

रामो वस्तुतः तादृशः राज्ञः अस्ति यस्य प्रजानुरञ्जनमेव एकमात्रं व्रतं विद्यते। यथोच्यते सप्तमेऽङ्के देव्या भागीरथ्या- **इक्ष्वाकूणां कुलधनमिदं यत्समाराधनीयः कृत्सनो लोकः**[1] वस्तुतः लोकानुरञ्जनाय तु ते स्नेहं, दयां, सौख्यम् अन्यत् किं स्वप्राणप्रियां जानकीमपि मुञ्चतो व्यथां न परिगणयन्ति। यथा-

स्नेहं दया च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।

---

[1] उ.रा., 3.38

[2] उ.रा., 1.19

[3] उ.रा., डा. रमाकान्त त्रिपाठी, पृ. सं- 37

आराधनाय लोकानां मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥[1]

या सीता तस्य नयनयोरमृतश्लाका आसीत्तस्य जीवनमासीत्तस्यापरं हृदयमासीत्तां सर्वथा परिपूतां ज्ञात्वा अपि वने तस्याः निर्वासनं कृत्वा सः स्वयमपि स्वजीवनस्य समस्तसुखान् तिलाञ्जलिः प्रददाति। कस्तावत् महत्त्याग इतोऽपरः ?

- **<u>रामस्य सहृदयता :</u>**

भवभूतेः नायकः रामः यद्यपि शम्बूकवधं करोति तथापि सोऽस्ति संवेदनशीलहृदयी। तस्य चेतसमुत्कम्पितो भवति यदा सः विचारयति यत् मुनेः वधं करणीयमस्ति। स्वसङ्गिन्याः वियोगे तस्य हृदयं निरन्तरं विदीर्यते, देहस्य बन्धो विशीर्णो भवति, अहर्निशं शोकज्वालया तस्यान्तःकरणं ज्वलति, संसारं शून्यारण्यमिव प्रतिभाति, समन्तादन्धकारं तमावृणोति, **यथोक्तं तृतीयेऽङ्के** -

हा हा देवी ! स्फुटति हृदयं ध्वंसते देहबन्धः
शून्यं मन्ये जगदविरतज्वालमन्तर्ज्वलामि।
सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा
विष्वङ्गमोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि॥[2]

स्वगाम्भीर्यगुणवशाद् राम आत्मीयं दुःखमधिकं न प्रदर्शयति। यथा एकस्मिन्नन्ये श्लोकेऽपि -

अनिर्भिन्नो गभीरत्वादन्तर्गूढघनव्यथः।
पुटपाकप्रतिकाशो रामस्य करुणो रसः॥[3]

रामस्य सीता वियोगजन्यः शोकातिशयः पुटपाकद्रव्यवत् प्रतीयते। यथा पुटपाकद्रव्यमत्यन्ताभ्यन्तरस्थितत्वाद् बहिर्न प्रकाशते, तस्य गाढः सन्तापः पुटाभ्यन्तर एव निलीनस्तिष्ठति, तथैव श्रीरामस्य सीतावियोगजन्यः शोको धैर्यातिशयवशाद् बहिरप्रकाशितः एव वर्तते, तस्य गाढा वेदना हृदये एव निलीना तिष्ठति।

- **<u>क्षमाशीलता विनयभावञ्च :</u>**

रामे विनयभावस्यापि प्राबल्यं दृश्यते। आत्मश्लाघायाः गुणं नास्ति तस्मिन् रञ्चमात्रमपि। यदा चित्रदर्शनावसरे लक्ष्मणः मिथिलायाः वर्णनप्रसङ्गे परशुरामस्य

---

[1] उ.रा., 1.12
[2] उ.रा., 3.38
[3] उ.रा., 3.1

मानमर्दनं दर्शयति तदा रामः तद्विषयमपसारयन् कथयति - **अयि वत्स ! बहुतरं द्रष्टव्यमन्यतो दर्शय**[1] तदा सीता तस्य विनयं दृष्टवा वदति - **सुष्ठु शोभते एतेन विनयमाहात्म्येन।** एवमेव क्षमाभावोऽपि पूरितोऽस्ति तस्य मनसि। यदा लक्ष्मणः कैकय्याः कारणात् प्राप्तं वनवासदृश्यं दर्शयति तदापि रामः विषयान्तरं निर्मापयति। तदा लक्ष्मणः कथयति - **अये मध्माम्बावृत्तमन्तरितमार्येण**[2]**।** सीता परित्यागानन्तरं वासन्ती तमुपालम्भं करोति परं ते शान्तमनसा स्वदोषं स्वीकुर्वन्ति।

- **<u>उपसंहार :</u>**

वयमत्र पश्यामो यत् भवभूते उत्तररामचरितस्य रामः वस्तुतः मानवजीवनसम्बन्धीन् सर्वान् व्यवहारान् सर्वोत्तमरूपेण पालनस्य सन्देशं ददाति। समस्तेऽपि भूमण्डले तत्सममपरं चरित्रं दुर्लभमस्ति। आदिकविना वाल्मीकिना प्रोच्यते रामस्य विषये - **स च सर्वगुणोपेतः कौशल्यानन्दवर्धनः। समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव॥**[3]

वयं रामस्य जीवने सम्यकतया दृष्टिपातं कुर्यामश्चेत्तर्हि कुत्रापि अपूर्णता न दृश्यते। यस्मिन् समये यादृशं कर्म करणीयं तस्मिन्समये तादृशमेव विहितं रामेण। रामः खलु रीति-नीति-प्रीतीत्यादि सर्वं जानाति। सत्यमेव रामस्य जीवनं सदैव मानवसमाजाय प्रकाशस्तम्भरूपेण पथप्रदर्शको भविष्यसि।

सन्दर्भग्रन्थसूची :

1. भवभूतिकृत उत्तररामचरितं सँशोधनसहितं संस्कृतपाठः, Sri Balamanorama Press, द्वितीयसंस्करणम्,संवत्सरः-1962, पृष्ठसंख्या-492 पृष्ठाः।
2. विरराघवाचार्य टीकासहितम्, संशोधकाः- टी.आर.रत्नम्ङ् अय्यर्, काशीनाथपांडुरंग परब्, प्रकाशकः,Tukaram Javaji, Nirnaya Sagara Press, संवत्सरः-1903।
3. भाट्जीशास्त्रीघटे कृतः- **भाट्जीशास्त्रीघटः**, "The Uttara Rama Charita of Bhavabhuti, with Sanskrit commentary by Bhatji Shastri Ghate

[1] उ.रा., 7.6

[2] तदेव, पृ. सं. - 35

[3] वा.रा. - बालकाण्डः, 1.16

of Nagpur" प्रकाशनम्- प्रथमसंस्कृतटीकासहितं संस्करणं, (Tukaram Javaji, Nirnaya-Sagara Press, 1903)।

4. नारायणभट्टकृतः भाष्यः, नारायणभट्टशिष्यः नारायणः, संपादकः शंकररामशास्त्री, प्रकाशनम्- १९३२ ई., इंटरनेट-आर्काइव् आधारितम् संस्करणम्।

5. विरराघवटीका संहितं प्राचीनसम्पादनम्- **Uttararāmacarita: Edited with the commentary of Viraraghava; various readings...,** प्रकाशकः Motilal Banarsidass International, ISBN- 9788120805200 (६ठा पुनर्मुद्रणम्- २०१६ ई.)।

6. महर्षिः वाल्मीकिविरचितम्, **वाल्मीकिरामायणम्,** गीताप्रेस गोरखपुरम्, संवत्- २००९ वि.।

7. रामचरितमानसस्य संस्कृतरूपान्तरणम्, तुलसीदासकविना रचितस्य रामचरितमानसस्य संस्कृतभाषायां रूपान्तरणम्, सम्पादकः- डॉ. रामानन्दः शर्मा, चौखम्भा विद्याभवनम्, वाराणसी, संवत्- १९९५।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 169-172

हिन्दी आदिवासी काव्य में विस्थापन का दर्द

मनीषा देवी
डिप्टी सुपरीटेंडेंट, छोटूराम शिक्षा महाविद्यालय, रोहतक।

आदिवासी इस धरती का मूल निवासी है। उनका अपना भव्य इतिहास है। आदिवासी समाज अपने आप में वि ाष्ट है, उनका अपना रहन–सहन, रीति–रिवाज, नाच–गान आदि अन्य समाज से बिल्कुल भिन्न है। इन सारी वि ोशताओं के बावजूद सभ्य समाज उसे स्वीकार करने को तैयार नहीं है, वह आज भी उन्हें मनुश्य के रूप में स्वीकार नहीं कर रहा है, यही कारण है वह आज दूर–दराज जंगलों में रहने पर लाचार है। सभ्य समाज उनका सामाजिक–नैतिक भाोशण करने से अभी तक बाज नहीं आया। आदिवासी समाज आजादी के पूर्व और आजादी के बाद भी अपने अस्तित्व के लिए संघर्श कर रहा है।

आदिवासी समाज पिछली कई सदियों से विना ा की त्रासदी झेलता रहता है। भारत सरकार ने विकास के पक्ष में बड़ी–बड़ी दलीलें देकर आम जनता को भ्रमित करने का प्रयास किया है। परन्तु विकास और विना ा की प्रक्रियाओं तथा उसके तुलनात्मक वि ोशण से विकास की अपेक्षा विना ा की कहानी ही प्रमाणित होती है। विकास के नाम पर आदिवासियों की जो स्थिति हुई उसका वर्णन करते हुए मैथ्यू अरीपरम विल ने लिखा है – ''अब तक हम यही देख रहे थे कि आदिवासियों को अपने जंगल को अधिकारों एवं परम्परागत गाँवों से जबरन हाथ धोना पड़ा है। यह सब हुआ 'राश्ट्रहित' के नाम पर जिसका लाभ मात्र प्रभावी वर्ग की आय के लिए जंगल एक बना–बनाया स्त्रोत बन गया। उन्हें जंगल के चीर हरण के लिए सस्ते मजदूरों की एक वि ाल सेना की भी जरूरत थी। आदिवासियों को जो अब तक अभाव ग्रस्तता की हद से भी गिर चुके थे, सस्ता मजदूर का रोल ग्रहण करना पड़ा। जिस जंगल के वे स्वामी थे, उसी जंगल में अपनी ही जमीन कुली बनकर खटने पर मजबूर होना पड़ा।''[1] जिस जंगल, जमीन एवं जल पर आदिवासियों का अधिकार था, उसी से उन्हें बेदखल होना पड़ा। विकास के नाम पर उनका विना ा किया गया। यही कारण है कि कई आदिवासी कवियों की कविताओं में विस्थापन की समस्याओं को मूल रूप में उभारने का प्रयास किया गया है। प्रभु नारायण मीणा की, 'ये किसने आग लगाई' कविता में विकास के नाम पर आदिवासियों का जो विना ा किया गया है वह दिखाया गया है–

''औद्योगीकरण व विकास के नाम पर
विस्थापन तेरा हुआ
जल, जंगल, जमीन गई
तू मूल निवासी बेसहारा हुआ।''[2]

विस्थापन के ि ाकार आदिवासी अपने जीवनयापन के लिए दर–दर भटकने पर मजबूर हो गये हैं।

सरकारी योजनाओं के नाम पर उन्हें धोखा दिया जा रहा है। पुनर्वास को लेकर आज तक कोई ठोस काम नहीं किया गया। बेबस एवं लाचार आदिवासी समाज सदियों से आज तक मर–मर कर जी रहा है।

आदिवासी समाज जहाँ पला–बढ़ा, स्वाभाविक रूप से उस स्थल के प्रति उन्हें वि ोश लगाव रहता है। हरे–भरे जंगलों में स्वच्छंदतापूर्वक विचरना उनका अपना स्वभाव होता है। परन्तु विकास के नाम उनका अपना प्यारा जंगल आँखों के सामने उजड़ता देखकर उनको जो पीड़ा पहुँची होगी, उसे कौन समझ सकता है। उनके इस दर्द का वर्णन करते हुए महादेव टोप्पों ने अपनी कविता 'नाज का जंगल' में लिखा है–

''वीराना होते, उजड़ते जंगल
कटते पेड़ प्रदूशण का जाल फैला।
बादल उड़ा।
उड़ गई बारि ा भी
भाग रहे हैं जानवर,
एक जंगल से दूसरे जंगल।
बचपन का मेरा,
मेरा वी क्रीड़ा स्थल नहीं है
अब वैसा जंगल।''[3]

उजड़ते हुए जंगलों को देखकर प्रकृति प्रेमी आदिवासी समूह का दर्द भला कौन समझ सकता है। जबरदस्ती उन्हें उनके स्थल से, घरों से खदेड़ दिया जा रहा है। महादेव टोप्पो ने 'नाज का जंगल' कविता में लिखा है –

''खड़कती हैं जूतों की आवाज़,
सुखी पत्तियों पर छाया है
आतंक का साम्राज्य चहुं ओर।''[4]

औद्योगीकरण एवं सिंचाई परियोजनाओं, पावर स्टे ान के निर्माण के लिए सरकार ने निजी व सरकारी संस्थानों के लिए भारी मात्रा में जमीनों का अधिग्रहण किया, जिसके कारण लाखों आदिवासियों को विस्थापित बना दिया है। विस्थापन पीड़ा को दिल में लिए आदिवासी समाज आज भी दर–दर भटक रहा है। विस्थापन के कारण आदिवासियों का पारिवारिक जीवन छिन्न–भिन्न हो गया है। विस्थापन के दर्द का वर्णन करते हुए डॉ० मंजु ज्योत्सना ने अपनी कविता 'विस्थापित का दर्द' में लिखा है–

''आऊँगा अगले वर्श कहा था
बेटे ने बार–बार कहने के बावजूद।
पिछले कई वर्शों से आया नहीं था।
ि ाकायत है उसे अपने गाँव में
पला ा के फूल नहीं रहे
सरई के वन नहीं रहे।''[5]

अतः विस्थापन के कारण अपनों से बिछड़ने का दर्द भी उनके लिए असहाय बन पड़ा है।

आदिवासियों को विस्थापित करने के समय बड़े–बड़े वचन दिये जाते हैं, जिससे भोला–भोला आदिवासी उनके बहकावे में आ जाते हैं। जब उसे पता चलता है कि उनके साथ छलावा हुआ है, तब तक बहुत देर हो चुकी थी। प्रभु नारायण मीणा ने अपनी कविता 'ये किसने आग लगाई' में लिखा है –

''लूटा है चालाकी से,
एजेन्ट अभिजात तुममें से बनकर,
उनके जरिये तुझे खरीदा,
प्रतिनिधि का झुन–झुना थमाकर।
अब तो जग,
मत रह अपने अभिजातों के वि वास में।''[6]

अतः अनपढ़ साफ दिल आदिवासी हर तरह से लुटा गया। वह चाहे सामाजिक हो या आर्थिक एवं नैतिक। हर तरह से उनका भाोशण किया गया है, प्रभु नारायण मीणा ने अपनी 'आदिवासी महिला' कविता में विस्थापित हुई महिला की व्यथा है।

''क्या बिगाड़ा हमने,
जो विस्थापन हमारा हुआ
गये खेत खलियान हमारे
विकास ओरों का हुआ,
फिरती डोलू जंगल जुगल,
नहीं मंगल की आ ाा,
बेबस लाचार जीवन,
टूट गई जीवन आ ाा।।''[7]

सभ्य समाज के विकास के नाम पर आदिवासियों का विना ा किया जा रहा है। आदिवासियों को उनके घर से निकाल दिया जाता है, जिसके कारण उन्हें दर–दर भटकना पड़ता है।

राजनेताओं, मिल मालिकों, सभ्य व्यक्तियों द्वारा मानवता को भूलकर आदिवासियों का भाोशण किया गया है। उनकी बस्तियों में जा–जाकर नेताओं ने उनके साथ छलावा किया है। पुनर्वास का वि वास दिलाकर उनका सब कुछ लूट लिया गया है। सरकारी योजना मानो केवल आदिवासियों को विस्थापित करने के लिए बनाई गई है। प्रभु नारायण मीणा ने लिखा है –

''ना काफी सरकारी योजना,
नही पुनर्वास की नीति,
चारों तरफ भाोशण है,
वोकट बटोरू है राजनीति।
हमारे नाम लाखों हड़पे,
एनजीओ से भी नहीं आ ाा,
बेबस लाचार जीवन,

टूट गई जीवन आ ा।।''[8]

आदिवासी अनपढ़ जरूर हैं, परन्तु उनके साथ होने वाला छलावा वे अच्छी तरह से समझ सकते हैं। विस्थापन के कारण उनका अपना जीवन इतना प्रभावित हुआ है कि जीवन उन्हें बोझ लगने लगा है।

विस्थापन के आदिवासियों के समूह समाप्त हो गए हैं। विस्थापित होते ही आदिवासियों का लंबा इतिहास, उनकी अपनी भव्य सभ्यता एवं संस्कृति सबका विना ा हो गया है। आदिवासियों को ऐसी अवस्था में दफना दिया गया है कि उन तक आ ा की कोई किरण नहीं पहुँच पायेगी। उनका अपना परम्परागत जीवन देखते ही देखते तबाह हो गया। आजीविका का कोई साधन उनके पास नहीं बचा। पेट की आग बुझाने के लिए कभी न किया हो ऐसा काम करने पर वे लाचार हो गये हैं। हरिराम मीणा ने 'सड़क–मजदूरों को देखकर' नामक कविता में लिखा है –

''जंगलों से खेदेड़े और बस्तियों से भगाए हुए वे
अनजान रास्तों की धूल फाँकते–फाँकते,
बहुत रियाज के बाद,
आखिर हो ही गए थे,
माहिर सड़क बनाने में।।''[9]

अतः विस्थापन के कारण हंसता–खेलता जीवन बर्बाद हो गया। स्वच्छंदतापूर्वक जंगल में विचरने वाला समूह भाहरों की गंदी सड़कों पर रेंगने को मजबूर हैं। जहाँ उनका न केवल भाारीरिक भोशण हुआ, बल्कि नैतिक एवं सामाजिक भोशण भी किया गया।

अतः निश्कर्श के रूप में कहा गया है कि विस्थापन के पहले जिन्हें आदिवासी होने का गर्व था, वही आदिवासी आज लाचार एवं बेबस होकर जी रहे हैं।

संदर्भ :-

1. आदिवासी विकास से विस्थापन, सं० रमणिका गुप्ता, पृश्ठ 104
2. अरावली उद्घोश, सं० वी० पी० वर्मा, आदिवासी कविता, अंक–81, सितम्बर 2008, पृश्ठ 25
3. वही, पृश्ठ 27
4. वही।
5. वही, पृश्ठ 10
6. वही, पृश्ठ 17
7. वही, पृश्ठ 26
8. वही, पृश्ठ 26
9. सुबह के इंतजार में काव्य संग्रह, हरिराम मीणा, सड़क–मजदूरों को देखकर, संस्करण 2008, पृश्ठ 15

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 173–179

ग्रामीण महिलाओं पर परिवार कल्याण कार्यक्रम का प्रभाव

डॉ. विजेता सिंह
शोधार्थी, स्नातकोतर समाजशास्त्र विभाग
वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

शोध सारांश :–

ग्रामीण समाज कि महिलाओं पर परिवार कल्याण कार्यक्रम की स्थिति अभी संतोषजनक नहीं कही जा सकती। स्वतंत्रता के उपरांत स्वास्थ्य राज्यों की सूची का वि ाय रहा है। राजनैतिक एवं आर्थिक बाधाओं के कारण राज्य अपने इस उत्तरदायित्व का निर्वहन भली प्रकार नहीं कर सके। पिछले दो दशकों में स्वास्थ्य के क्षेत्र में भारत की प्रगति संतोषप्रद रही है क्योंकि इस अवधि में स्वास्थ्य के क्षेत्र में निजी क्षेत्र तथा केन्द्र सरकार ने सार्थक भूमिका निभाई है। परिवार नियोजन कार्यक्रम की प्रसार शिक्षा इकाई को अभी तक पूर्णरूपेण से विकसित नहीं किया जा सकता है। यद्यपि स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मन्त्रालय एवं सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय द्वारा परिवार नियोजन एवं परिवार कल्याण कार्यक्रम के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने के लिए इनमें संबंधित विषयों पर विभिन्न कार्यक्रम एवं सूचनाएँ प्रसारित किए जाते हैं, इसके लिए समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, दूरदर्शन, रेडियो, पोस्टर, भित्ति लेखन आदि साधनों का प्रयोग किया जाता है। फिल्म डिवीजन ने भी इस विषय पर कई फिल्मों का निर्माण किया है। वर्तमान में दूरदर्शन का इस उद्देश्य से प्रभावी प्रयोग किए जा रहे हैं। इन सभी समस्याओं को ध्यान में रखते हुए इस शोध के आलेख का उद्देश्य बनाया गया है। अध्ययन के उपरांत यह समझने में सहायता मिलेगी कि ग्रामीण महिलाओं में परिवार कल्याण कार्यक्रमों के प्रति जागरूकता क्या स्थिति है।

कीवर्ड :– ग्रामीण महिलाएं, परिवार कल्याण कार्यक्रम, स्वास्थ्य, सरकारी योजनाएं।

भूमिका :–

परिवार कल्याण कार्यक्रम की उपयोगिता भारतीय परिप्रेक्ष्य में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है, क्योंकि प्रतिदिन सैकड़ों बच्चों का आगमन चिन्ता का विषय बना हुआ है। यदि जन्म दर में कमी नहीं लाई गई तो देश में जनसंख्या के ज्वालामुखी का भयंकर विस्फोट को लाई गई तो देश में जनसंख्या के जनसंख्या ज्वालामुखी का भयंकर विस्फोट को टाला नहीं जा सकेगा और आर्थिक, सामाजिक, नैतिक, राजनीतिक, स्वास्थ्य और सुप्रजनन

से जुड़े पक्ष अविकसित रह जायेंगे। भारतीय परिप्रेक्ष्य में स्वास्थ्य व परिवार कल्याण के मार्ग में आज धार्मिक, नैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक बाधाएँ अवरोध उत्पन्न कर रही हैं। आवश्यकता है स्वास्थ्य वर परिवार कल्याण कार्यक्रम की उपयोगिता को उजागर करने व इसके अवरोधक तत्त्वों को उद्घाटित करने की। वर्तमान अध्ययन इसकी पूर्ति का एक प्रयास है।

स्वास्थ्य किसी भी देश के सम्पूर्ण सामाजिक व आर्थिक विकास का एकीकृत अंग है। स्वस्थ व्यक्ति न केवल शारीरिक व मानसिक रूप से वरन् सामाजिक–सांस्कृतिक व आर्थिक रूप से भी स्वयं को अच्छा महसूस करता है। स्वस्थ व्यक्ति उचित व्यवहार व सामाजिक समायोजन करता है। स्वास्थ्य को आधारभूत मानव अधिकार की संज्ञा प्रदान की गयी है। इसका तात्पर्य यह है कि राज्य का यह दायित्व है कि अपने नागरिकों को स्वास्थ्य संरक्षण प्रदान करें। आधुनिक राज्य स्वास्थ्य संरक्षण के दायित्व को जिन विविध तरीको से निर्वाह कर रहा है उनमें से एक प्रमुख प्रविध प्राथमिक स्वास्थ्य संरक्षण सेवा के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्र के निवासियों के चिकित्सकीय एवं स्वास्थ्य की दशाओं को उन्नत बनाना है। भारत में यह कार्य अत्यन्त व्यापक रूप से किया जा रहा है।[1] रोग तथा स्वास्थ्य में जहाँ शारीरिक विशेषता महत्वपर्ण है वहीं उसमें सांस्कृतिक एवं सामाजिक वास्तविकता भी अन्तर्निहित है। रोग की उत्पत्ति की प्रक्रिया यद्यपि प्राकृतिक एवं शारीरिक हो सकती है किन्तु उसके प्रसार अथवा फैलाव में एवं व्यक्ति की रोगग्रस्तता की स्थिति में उसके प्रसार अथवा फैलाव में एवं व्यक्ति की रोगग्रस्तता की स्थिति में उसके आसपास का सांस्कृतिक एवं सामाजिक वातावरण निश्चित रूप से जुड़ा होता है। इसलिए रोग–ग्रस्तता जहाँ एक ओर शारीरिक कमजोरी, काम करने की क्षमता में क्षीणता, शारीरिक पीड़ा और कष्ट को तो जन्म देती ही है पर उसके साथ ही यह व्यक्तियों के सामाजिक व्यवहार एवं उसकी भूमिका पूर्ति को भी प्रस्ताविक करती है जिसके फलस्वरूप व्यक्तिगत, सामाजिक एवं संस्थागत हितों को क्षति पहुँचती है अथवा पहुँचने की सम्भावना रहती है। रोग और स्वास्थ्य का सम्बन्ध व्यक्ति के जन्म से ही जुड़ जाता है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में यदि हम उसे देखने का प्रयास करें तो हमें ज्ञात होगा कि सम्भवतः धरती पर मनुष्य का प्रथम अवतरण हुआ तब से लेकर अब तक की उद्विकासीय अवस्था के विभिन्न काल से लेकर वर्तमान समय तक रोग एवं स्वास्थ्य मनुष्य के साक्षी रहे हैं। धीरे–धीरे स्वास्थ्य संरक्षण के परम्परागत एवं परिवर्तनशील परिदृश्य ने रोग एवं स्वास्थ्य की पहचान तथा रोग उपचार के उपक्रम ढूँढ़ने की क्षमता उत्पन्न की है।

शरीर और मस्तिष्क की सामान्य एवं प्राकृतिक स्थिति स्वास्थ्य का सर्वप्रथम एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण लक्षण है। दूसरे शब्दों में स्वास्थ्य की अनुपस्थिति का नाम ही रोग है।

स्वस्थ के अन्तर्गत व्यक्ति का शारीरिक रूप से स्वस्थ होना मानसिक रूप से संतुलित एवं स्वस्थ होना तथा समाज, जिसमें वह रहता है, कि व्यवस्था का सौहार्द्रपूर्वक कार्य करना सम्मिलित है। इस प्रकार स्वास्थ्य के तीन क्षेत्र हैं।

- शारीरिक स्वास्थ्य
- मानसिक स्वास्थ्य

- सामाजिक स्वास्थ्य।

साहित्य की समीक्षा :-

- हसन (1967) ने अपने अध्ययन के द्वारा यह स्पष्ट किया है कि ग्रामीण समुदाय में रोग और स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएं उनके संस्कृति का अंग होती है और परम्परागत चिकित्सकों द्वारा की गयी चिकित्सा उन्हें मनोवैज्ञानिक संतुष्टि प्रदान करती है।
- मान (1967) ने ग्रामीण समुदाय में रोग सम्बन्धी धारणाओं में हो रहे परिवर्तन का विश्लेषण किया है। उन्होंने उन कारकों एवं प्रक्रियाओं को स्पष्ट करने का प्रयास किया है जिनके द्वारा अधिकांश ग्रामीण जनता ने रोग सम्बन्धी नवीन विचारों को ग्रहण किया है।
- वालुंजकर और चतुर्वेदी (1967) ने अपने अध्ययन में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि रोग के कारण के सम्बन्ध में पाये जाने वाले दृष्टिकोण के अनुरूप रोग के इलाज के तरीकों में किस प्रकार अन्तर उत्पन्न होता है।
- ईश्वरन (1968) ने चिकित्सा व्यवस्था और सामाजिक व्यवस्था के अंतःक्रिया की विवेचना की है। अपने अध्ययन में उन्होंने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि चिकित्सक, रोगी और समुदाय की मनोवृत्ति सामाजिक आदर्शों और परिस्थितियों से प्रभावित होती है।
- मसीही (1969)31 ने सीमा के निकट स्थित एक गांव के स्वास्थ्य और उपचार संबंधी विशेषताओं की विवेचना की है। उन्होंने अपने अध्ययन में यह स्पष्ट किया है कि ग्रामीण जनता परम्परागत चिकित्सा–प्रणाली में अधिक विश्वास रखती है।

अध्ययन का उद्देश्य :-

- ग्रामीण महिलाओं पर परिवार कल्याण कार्यक्रम के प्रभाव का अध्ययन।
- ग्रामीण महिलाओं पर परिवार कल्याण कार्यक्रम के प्रति जागरूकता का अध्ययन करना।

अध्ययन पद्धति :-

वर्तमान अध्ययन वर्णात्मक एवं अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप पर आधारित है। प्रस्तुत अध्ययन बिहार के सासाराम नगर में रहने वाले 100 उत्तरदाताओं पर आधारित है। उत्तरदाताओं के रूप में चयन उद्देश्यपूर्ण निदर्शन पद्धति के आधार पर किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में तथ्य संकलन दो स्तरों पर किया गया है। प्राथमिक एवं द्वितीयक तथ्य। प्राथमिक तथ्यों का संकलन शोधकर्ता द्वारा साक्षात्कार– अनुसूची की सहायता से अवलोकन एवं व्यक्तिगत साक्षात्कार विधियों द्वारा किया गया है। द्वितीयक तथ्यों का संकलन अध्ययन से सम्बंधित विभिन्न पुस्तकों, शोध–पत्रों, सन्दर्भ ग्रन्थों, पत्र–पत्रिकाओं, समाचार पत्रों, प्रकाशित व अप्रकाशित विविध सरकारों एवं गैर सरकारी प्रतिवेदनों, इंटरनेट, पुस्तकालयों तथा वाचनालयों से किया गया है। प्राप्त दतों के विश्लेषण के लिए मैन्युअल के द्वारा तथ्यों का विश्लेषण किया गया है। संकलित गुणात्मक तथ्यों को वर्गीकरण एवं सारणीयन द्वारा मात्रात्मक दतों में परिवर्तन करके विभिन्न अध्यायों से सम्बंधित सारणी का निर्माण करके सम्पूर्ण शोध प्रतिवेदन तैयार किया गया है।

आंकड़ों का वर्गीकरण एवं विश्ले□ाण :-

तालिका संख्या - 1

उत्तरदाताओं की आयु

आयु समूह	आवृत्ति	प्रतिशत
30-40	15	15.00
41-50	50	50.00
51-60	30	30.00
60 से अधिक	5	5.00
योग	100	100.00

स्पष्ट होता है कि वर्तमान अध्ययन के निदर्श में 15.00 पारिवारिक मुखिया 30–40 वर्ष आयु समूह के हैं, 50.00 प्रतिशत उत्तरदाता 41–50 वर्ष आयु समूह के हैं, 30.00 प्रतिशत उत्तरदाता 51–60 वर्ष आयु समूह के एवं 5.00 प्रतिशत उत्तरदाता 60 से अधिक आयु समूह के हैं।

स्पष्ट है कि अधिकांश उत्तरदाता 45.00 प्रतिशत 41–50 वर्ष आयु समूह के हैं। स्पष्ट है कि अध्ययन में सम्मिलित उत्तरदाता परिपक्व आयु–समूह के हैं।

सारणी संख्या - 2

परिवार कल्याण कार्यक्रम जानकारी के स्रोत

स्रोत	**आवृत्ति**	**प्रतिशत**
एवं दूरदर्शन	40	40.00
समाचार एवं पत्रिकाएं	06	6.00
ग्राम सभा या पोस्टर	33	33.00
प्रसार कार्यकर्त्ता शिविर	04	4.00
ए.एन.एम. या आशा कार्यकत्री	16	16.00
योग	100	100.00

स्पष्ट है कि स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण कार्यक्रम की जानकारी 40 प्रतिशत उत्तरदाताओं को एवं दूरदर्शन से, 6 प्रतिशत का समाचार एवं पत्रिकाओं से, 33 प्रतिशत को ग्राम सभा या पोस्टर से, 4 प्रतिशत को प्रसार कार्यकर्त्ता शिविर से एवं 16 प्रतिशत को ए.एन.एम. या आशा कार्यकत्री से हुई।

अतः स्पष्ट है कि स्वास्थ्य मोबाईल एवं परिवार कल्याण कार्यक्रम की जानकारी का स्रोत एवं दूरदर्शन है।

तालिका संख्या – 3

ग्रामीण समाज में विवाह की आयु

जानकारी है	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	56	56.00
नहीं	26	26.00
कह नही सकते	18	16.00
योग	100	100.00

अवलोकन से पता चलता है कि 56.00 प्रतिशत उत्तरदाता यह मानते हैं कि ग्रामीण समाज में विवाह की आयु में अन्तर आया है। 26.00 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसा नहीं मानते हैं कि ग्रामीण समाज में विवाह की आयु में अन्तर आया है एवं 16.00 प्रतिशत उत्तरदाता इस सम्बन्ध में निरूत्तर पाये गये।

अतः स्पष्ट है कि अधिकांश 56.00 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार ग्रामीण समाज में विवाह की आयु में अन्तर आया है।

तालिका संख्या – 4

शिक्षा के प्रसार से ग्रामीण समाज में परिवार नियोजन साधनों को अपनाने वालों की संख्या

जानकारी है	संख्या	प्रतिशत
हाँ	64	64.00
नहीं	23	23.00
कह नही सकते	13	13.00
योग	100	100.00

बहुलांक 64.00 प्रतिशत उत्तरदाता यह मानते हैं कि शिक्षा के प्रसार से ग्रामीण समाज में परिवार नियोजन साधनों को अपनाने वालों की संख्या बढ़ी है। 23.00 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसा नहीं मानते हैं कि शिक्षा के प्रसार से ग्रामीण समाज में परिवार नियोजन साधनों को अपनाने वालों की संख्या बढ़ी है, जबकि 13.00 प्रतिशत उत्तरदाता इस सम्बन्ध में निरूत्तर पाये गये।

अतः स्पष्ट है कि अधिकांश 64.00 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार शिक्षा के प्रसार से ग्रामीण समाज में परिवार नियोजन साधनों को अपनाने वालों की संख्या बढ़ी है।

तालिका संख्या – 5

ग्रामीण क्षेत्रों में संक्रामक रोगों पर नियंत्रण

बाधक तत्त्व	आवृत्ति	प्रतिशत
ग्रामीणों की जागरूकता में कमी	26	26.00
सरकार की कमी	07	7.00
योजना निर्धारण में कमी	10	10.00
व्याप्त भ्रष्टाचार	33	33.00
आपसी मतभेद	24	24.00
योग	100	100.00

स्पष्ट है कि 26.00 प्रतिशत उत्तरदाता स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण के लक्ष्य की प्राप्ति ने ग्रामीणों की जागरूकता की कमी को बाधक मानते हैं, 7.00 प्रतिशत उत्तरदाता स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण के लक्ष्य में सरकार की कमी को बाधक मानते हैं, 10.00 प्रतिशत उत्तरदाता योजना निर्धारण में कमी को बाधक मानते हैं, 33 प्रतिशत उत्तरदाता व्याप्त भ्रष्टाचार को बाधक मानते हैं, तथा 24.00 प्रतिशत उत्तरदाता स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण के लक्ष्य की प्राप्ति में आपसी मतभेद को बाधक मानते हैं।

अतः स्पष्ट है कि अधिकांश 33 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण के लक्ष्य की प्राप्ति में व्याप्त भ्रष्टाचार को बाधक माना है।

निष्कर्ष :-

ग्रामीण क्षेत्रों में निरक्षरता, अज्ञानता एवं निर्धनता हो तो परिवर या परिवार कल्याण कार्यक्रम को सफल बनाना एक चुनौती के समान है। परिवार नियोजन की राह में धार्मिक एवं परंपरागत विश्वास व मान्यताएं हैं। जन सामान्य की अभिवृत्तियों में परिवर्तन करना एक लम्बी प्रक्रिया है। इसके लिए सतत् नियमित एवं धैर्यपूर्वक प्रयासों की आवश्यकता होती है। ग्रामीण समाज की महिलाओं पर परिवार नियोजन कार्यक्रम का सकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। प्राचीन काल की अड़चनों के उपरान्त परिवार नियोजन कार्यक्रम की लोकप्रियता धीरे–धीरे बढ़ती जा रही है। धीरे–धीरे छोटे परिवार के मानक के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित हो रहा है। अब अधिकतर युवा जोड़े छोटे परिवार के मानक का पालन कर रहे हैं। बड़े पैमाने पर परिवार नियोजन के साधनों का उपयोग किया जा रहा है। इसका प्रभाव जनसंख्या वृद्धि दर पर भी पड़ता है। सामाजिक स्वास्थ्य से अभिप्राय सामाजिक व्यवस्था के स्वस्थ एवं उत्तम रूप से कार्य करने से है। स्वस्थ समाज में सामान्यतया रोग सद्चरित्र नियमों का पालन करने वाले, व्यवस्था के सुचारू संचालन में सहायक, शिक्षित, आपराधिक गतिविध्यिों से दूर, मूल्य युक्त, सामाजिक बुराइयों का विरोध करने वाले सहनीय, सौहार्द्रपूर्ण वातावरण निर्मित करने वाले होते हैं। सामाजिक स्वास्थ्य का आंकलन अपराध दर, तलाक, आत्महत्या, सामजिक सौहार्द्र आदि सूचकों के आधार पर किया जा सकता है।

सन्दर्भ सूची :-

1. W.H.O. (1981): Global Strategy for Health for All by the year 2000, HFA Sr. No. 3.
2. एम.एम. लवानिया (1998) : चिकित्सा समाज शास्त्र, रिसर्च पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृ. 1.
3. W.H.O. (1946): The Constitution of the World Health Organisation, W.H.O. Geneva.
4. Marriott, M. (1955): "Western Medicine in a Village of Northern India", Health, Culture and Community, B.D. Paul (ed.), Russell Sage Foundation, New York, pp. 239-269.
5. Corstaires, G.M. (1955): "Medicine and Faith in Rural Rajasthan", in B.D. Paul (ed.) *Health Culture and Community,* Russell Sage Foundation, New Yokr, pp. 107-134.
6. Mintum, L. and HitchCock, J. (1963): "The Rajputs of Khalpur, India", in B.B. Whiting (ed.), Six *Cultures: Studies of Child Rearing,* Johnwiley and Sons Inc, New York, pp. 203-361.
7. Bhatnagar, G.S. (1978): "Community Rersponses to Health: A Study Conducted in Patiala Villages in Punjab", Paper presented at the *14th All India Sociological Conference,* Jabalpur University, Jabalpur.
8. Gould, H.A. (1965): "Modern Medicine and folk Cognition in Rural India", *Human Organization,* 24 (3), pp. 201-208.
9. Hasan, K.A. (1967): Cultural Frontiers of Health in Village India, Manktins, Bombay.
10. Shukla K.P., Marwah, S.M. and Srivastava, L.C. (1973): "Incorporation of Indegenous Prectitioners in Health Care System", *Ind. Jour. Pre. Soc. Med.,* Vol. 16.
11. Bhatia, J.C. (1975): "Traditional Healer and Modern Medicine", *Social Sciences and Medicine,* Vol. 9.
12. Lewis, O. (1958)" *"Village Life in Northern India",* Random House, New York.
13. Opler, M.E. (1963): "The Cultural Definition of Illiness in Villge India", *Human Organization,* Vol. 22(1), 1963, pp. 32-35.
14. डॉ. नरेन्द्र पाल सिंह चन्देल एवं डॉ. विजय कुमार चन्द (2010) जनसंख्या शिक्षा, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, पृ. 242–244.

Email ID- vijetaluck@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 180–186

विशेष साक्षात्कार

साहित्य, समाज और सच्चाई की प्रतिनिधि लेखिका : नासिरा शर्मा से बातचीत

साक्षात्कारकर्ता– **पिंकी राठी**
शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय
शोध निर्देशक– **डॉ. तृप्ता**
प्रोफेसर, अदिति कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय।

नासिरा शर्मा, हिंदी साहित्य की जानी–मानी लेखिका, पत्रकार और सामाजिक सरोकारों की मुखर स्वर रही हैं। उनके साहित्य में समकालीन राजनीति, स्त्री विमर्श और वैश्विक दृष्टिकोण का अनूठा संगम देखने को मिलता है। उनसे किया गया विचारोत्तेजक साक्षात्कार प्रस्तुत है, जिसमें उनके साहित्यिक दृष्टिकोण, सामाजिक सरोकारों और लेखकीय जिम्मेदारी पर गंभीर चर्चा हुई।

प्रश्न : आपकी हाल ही में दो नई पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं : 'फिलिस्तीन : एक नया कर्बला' और उपन्यास 'कुछ रंग थे ख्वाबों के'। इन रचनाओं के संदर्भ में हमें विस्तार से बताएं?

उत्तर : यह संयोग है कि हाल के समय में मेरी कई पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। लोकभारती प्रकाशन ने मेरी चार पुस्तकों को एक साथ प्रकाशित किया है, जिनमें स्त्री–विमर्श से लेकर समकालीन सामाजिक स्थितियों तक विभिन्न विषयों को समेटा गया है। इनमें अधिकांश वे लेख शामिल हैं जो मैंने विभिन्न अखबारों और पत्रिकाओं में समय–समय पर लिखे थे। इन रचनाओं में पर्यावरण, स्त्री दृष्टिकोण और समसामयिक सामाजिक मुद्दों पर मेरे विचारों की अभिव्यक्ति हुई है अर्थात् एक स्त्री किस प्रकार इस संसार को उसकी समस्याओं, सुख–दुख को देखती और समझती है– यही सब इन पुस्तकों में समाहित है। लोकभारती से ही मेरी पुस्तक 'फिलिस्तीन : एक नया कर्बला' भी प्रकाशित हुई है। इसके अतिरिक्त संवाद प्रकाशन से मेरी दो अन्य पुस्तकें : इराक और अफगानिस्तान पर आधारित : एक लंबे अंतराल के बाद पुनः नए संस्करण में प्रकाशित हुई हैं। ये पुस्तकें पहले अत्यधिक माँग में थीं परंतु किसी कारणवश पुनर्मुद्रण नहीं हो पा रहा था। अब उनका फिर से प्रकाशित होना मेरे लिए अत्यंत प्रसन्नता का विषय है।

प्रश्न : आपके जीवन में लेखन की यात्रा कैसे प्रारंभ हुई और आप अपने जीवन का प्रेरणास्रोत किसे मानती हैं?

उत्तर : मेरी गम्भीर लेखन–यात्रा की शुरुआत मेरी पहली कहानी 'बूतखाना' से हुई, जिसे प्रतिष्ठित लेखक कमलेश्वर जी ने सन् 1976 में प्रकाशित किया था। हालांकि, इससे पूर्व भी मैं लिखती रही थी– स्कूल की

पत्रिकाओं में, विभिन्न लेखन प्रतियोगिताओं में। उस समय भी लेखन मेरे जीवन का स्वाभाविक हिस्सा था। घर का वातावरण भी इस ओर प्रेरित करता था– परिवार में सभी पढ़ते–लिखते थे, जिससे एक सहज प्रेरणा मिली कि हमें भी लेखन में भागीदारी करनी चाहिए। प्रेरणा के साथ–साथ एक प्रकार का भय भी मन में बना रहता था, क्योंकि हमारे घर में अपने–अपने समय के प्रतिष्ठित कवि और लेखक रहे हैं। यह भावना सदैव मन में रहती थी कि मैं कुछ ऐसा न लिखूं जो उनकी गरिमा को ठेस पहुँचाए। साहित्य में तो एक से एक महान लेखक हुए हैं, इसलिए लेखन करते समय यह सावधानी अवश्य बरतती थी कि मेरी रचना ऐसी हो, जिसे पढ़कर मुझे कभी पछतावा न हो कि :मैंने यह क्या लिख दिया।'

प्रश्न : जब हमारा मुल्क करवट बदल रहा था, उस समय हिंदू–मुसलमानों के बीच जो आपसी संबंध थे, उनके संदर्भ में आपके अनुभव कैसे रहे?

उत्तर : उस दौर के प्रत्यक्ष अनुभव तो मेरे नहीं हैं, क्योंकि मेरी पैदाइश आजादी के बाद की है। लेकिन जो कुछ मैंने साहित्य के माध्यम से देखा और समझा, वह बहुत गहराई से मेरे भीतर उतरा। विभाजन के समय हिंदू–मुसलमान संबंधों में जो आक्रोश था, उसमें राजनीति की भूमिका और अंग्रेजों की वह छटपटाहट कि वे देश छोड़ने पर मजबूर हो रहे थेकृये सभी बातें उस साहित्य में बखूबी दर्ज हैं। इन रचनाओं को पढ़कर मुझ पर जो प्रभाव पड़ा, उससे मैंने सियासत की नीयत को समझा और यह जाना कि राजनीति किस तरह मानवीय रिश्तों और संवेदनाओं को निर्ममता से रौंद डालती है। विशेष रूप से मंटो की कहानी 'खोल दो' ने मुझे भीतर तक झकझोर दिया। उस समय की सभी महत्वपूर्ण कहानियाँ मैंने पढ़ीं, और उनके माध्यम से यह महसूस किया कि हिंदू–मुसलमान का रिश्ता कितना गहरा और साझा था। अफसोस है कि आज हम हर बात में 'हिंदू–मुसलमान' का चश्मा पहनकर देखने लगे हैं, जबकि हमारी साझी विरासत कहीं अधिक व्यापक और समरस रही है।

प्रश्न : उस दौर और आज के दौर में हिंदू–मुस्लिम संबंधों में आपको क्या परिवर्तन दिखाई देता है?

उत्तर : परिवर्तन अत्यंत गहरा और व्यापक रहा है। यह नहीं कहा जा सकता कि आजादी के बाद हमारे देश ने प्रगति नहीं की–बल्कि देश ने हर क्षेत्र में अद्‌भुत तरक्की की है। मुझे 1970–80 का वह दशक याद है, जब मैंने साहित्य में और सामाजिक लेखन के माध्यम से सक्रिय भागीदारी शुरू की। उस समय हमारा समाज विचारशील था और साहित्य का जुड़ाव सामाजिक सरोकारों से स्पष्ट रूप से दिखाई देता था। हम सामाजिक मुद्दों पर खुलकर लिखते थे और मिडल–ईस्ट, विशेषकर ईरान में हमारे कार्यों को सराहना मिलती थी। वे अक्सर कहते थे कि भारत का योगदान कितना व्यापक है–जहाँ सुई से लेकर हवाई जहाज तक का निर्माण स्वदेशी रूप से होता है। उस समय देश में आत्मनिर्भरता और समन्वय की भावना थी। आज की राजनीति में सांप्रदायिकता और विभाजन की प्रवृत्ति अधिक प्रबल हो गई है, जिससे हिंदू–मुस्लिम संबंधों की आत्मीयता को क्षति पहुँची है। पहले जहाँ साझी संस्कृति की भावना थी, वहीं अब शंकाओं और अलगाव का माहौल बन गया है।

प्रश्न : आपने अपनी रचनाओं "कागज की नाव, जीरो रोड, पत्थर गली" आदि में इलाहाबाद का विशेष उल्लेख किया है। आपका बचपन से ही इलाहाबाद से जो आत्मीय संबंध रहा है, शायद वही वजह है कि आपकी रचनाओं में उस मिट्टी की खुशबू महसूस होती है। क्या भविष्य की रचनाओं में भी इलाहाबाद की उपस्थिति बनी रहेगी?

उत्तर : इलाहाबाद को मैंने कभी हिंदुस्तान से पृथक नहीं समझा। मैं स्वयं को मात्र 'इलाहाबादी' के रूप में सीमित नहीं मानती थी। जब किसी स्थान से गहरा प्रेम होता है, तो वह धीरे–धीरे हमारे व्यक्तित्व का हिस्सा बन जाता है–बिना यह बताए कि हम उससे प्रेम कर बैठे हैं। मेरी पहचान सदैव 'हिंदुस्तानी' रही है, और उसी व्यापक पहचान में एक शहर इलाहाबाद भी था, जहाँ मेरा जन्म हुआ। लेकिन जब मेरी माँ का निधन हुआ, तो ऐसा प्रतीत हुआ मानो जीवन का एक पूरा अध्याय समाप्त हो गया हो। उसी क्षण ऐसा भी महसूस हुआ कि इलाहाबाद से मेरा रिश्ता भी ढीला पड़ रहा है। उस समय तक मेरा कहानी–संग्रह 'पत्थर गली' प्रकाशित हो चुका था। उस क्षण मैंने स्वयं से एक वादा किया– 'मैं अपनी कलम के माध्यम से इलाहाबाद को जीवित रखूँगी, और उससे जुड़ा हुआ संबंध साहित्य में बनाए रखूँगी।' इसी सोच के तहत मैंने दिल्ली के प्रकाशकों से हटकर लोकभारती को अपनी पुस्तक प्रकाशन के लिए दी, ताकि साहित्य के माध्यम से इलाहाबाद से एक स्थायी ताना–बाना बना रहे। मेरे चार उपन्यास पूर्णतः इलाहाबाद की धरती, संस्कृति और चेतना से जुड़े हुए हैं। और मैं यह कह सकती हूँ कि भविष्य की रचनाओं में भी इलाहाबाद की आत्मा अवश्य बसेगी।

प्रश्न : आपके उपन्यास 'कागज की नाव' का मूल उद्देश्य क्या था?

उत्तर : इस उपन्यास के पीछे मेरा एक प्रमुख उद्देश्य यह था कि पाठकों को यह समझाया जाए कि बड़ी संख्या में हमारे मजदूर और तकनीशियन मिडिल ईस्ट में जाकर अच्छी आजीविका अर्जित करते हैं। यह एक बड़ी आर्थिक व्यवस्था है, उसका जो टर्नओवर है–वह करोड़ों में है और उसमें भारतीय प्रवासी मजदूरों का योगदान अतुलनीय है। उनकी कमाई का बड़ा हिस्सा भारत लौटता है, जो आश्चर्यजनक और विचारणीय है। इसके साथ ही, दुबई का अत्याधुनिक और आत्मनिर्भर सांस्कृतिक–तकनीकी विकास मुझे बहुत प्रभावित करता है। वहाँ का विकास पूरी तरह उधार का नहीं, बल्कि अपनी सांस्कृतिक समझ और अनुशासन से रचा गया है। जो प्रवासी कायदे–कानूनों का पालन करते हैं, उन्हें वहाँ सुखद जीवन मिलता है।

और अंतत :– मैंने यह भी दिखाया कि जब पुरुष प्रवासी होकर बाहर जाते हैं, तो उनके पीछे छूट गई स्त्रियाँ और परिवार किस प्रकार अकेलेपन, लालच, और अंधविश्वास के दलदल में फँस जाते हैं। कैसे टोटकों, दुआ–तावीज, और पाखंड का बाजार चलता है–कैसे मौलवी, पंडित, या झाड़–फूँक करने वाले लोगों द्वारा स्त्रियों और बच्चों को मानसिक रूप से शोषित किया जाता है। इसमें मैंने विशेष रूप से बिहार के परिवेश को आधार बनाया है, जहाँ यह सामाजिक समस्या विकराल रूप में दिखाई देती है।

प्रश्न : आपके उपन्यास 'कागज की नाव' में मलकानूर के माध्यम से स्त्री की नई चेतना और सामाजिक व्यवस्था के टकराव को दर्शाया गया है। आपने स्त्री के बुनियादी सवालों को बहुत प्रभावशाली ढंग से उठाया है। आपके दृष्टिकोण से आज के स्त्री–विमर्श में कितना बदलाव आया है?

उत्तर : इस प्रश्न में दो पहलू हैं– एक स्त्री–विमर्श और दूसरा बिहार की स्त्रियों की स्थिति, विशेष रूप से ग्रामीण और निम्नवर्गीय पृष्ठभूमि की।

मैंने बिहार को सबसे पहले जेएनयू के जरिए जाना जहाँ अधिकांश छात्र बिहार से थे। वहाँ से बिहार की स्त्रियों की स्थिति को गहराई से समझने का अवसर मिला। एक बात जो मैंने स्पष्ट रूप से महसूस की, वह यह थी कि बिहार की स्त्रियों में आगे बढ़ने की एक तीव्र आकांक्षा है–एक बेचैनी, जो उन्हें हर परिस्थिति में शिक्षा और प्रगति की ओर धकेलती है। मैंने कई लड़कियों को देखा, जो गर्भावस्था के नौवें महीने में भी परीक्षा देने

आती थीं। यह अद्‌भुत साहस और जिजीविषा का प्रतीक है। लेकिन दुर्भाग्यवश, उस समय का सामाजिक ढाँचा और संस्थागत व्यवस्थाएँ उन्हें समुचित अवसर नहीं दे रही थीं। यही विडंबना थी जिसे मैंने अनुभव किया और अपनी रचना में पिरोया। बिहार के ग्रामीण क्षेत्रों में जो पिछड़ापन था, वह धीरे–धीरे कम हो रहा है। पिछले दो दशकों में वहाँ सकारात्मक परिवर्तन हुआ है, जो सराहनीय है। लेकिन मलकानूर जैसे इलाके अब भी ऐसे हैं जहाँ स्त्री का उड़ती पतंग पकड़ना भी संदेह और तानों का विषय बन जाता है। वहाँ स्त्रियों को इसलिए भी बंदिशों में रखा जाता है क्योंकि घर के पुरुष कमाने बाहर चले जाते हैं और घर में एक वृद्ध पुरुष ही रहता है–ऐसे में पारिवारिक नियंत्रण की मानसिकता और सामाजिक असुरक्षा, दोनों मिलकर स्त्री की स्वतंत्रता को बाधित करते हैं।

'कागज की नाव' में मलकानूर जैसी स्त्रियाँ केवल प्रतीक नहीं, बल्कि उस गूंगी आवाज की प्रतिध्वनि हैं जो हर उस समाज में गूंज रही है जहाँ बदलाव की चाह तो है, परंतु उसे स्वीकारने का साहस अभी समाज में नहीं है।

प्रश्न : आज के दौर में जब स्त्री विमर्श और उनकी सामाजिक बंदिशों को लेकर व्यापक चर्चा हो रही है, क्या आप पुरुष को भी कहीं–न–कहीं उसी तरह की बंदिशों में जकड़ा हुआ महसूस करती हैं?

उत्तर : यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। जब पश्चिमी देशों, विशेषकर यूरोप में स्त्री विमर्श का तीव्र दौर समाप्ति की ओर बढ़ रहा था, उसी समय भारत में उसे एक नई चेतना के रूप में अपनाया गया। एक विशिष्ट संपादक और पत्रिका ने इस विमर्श को आगे बढ़ाया, जिससे उसमें तीव्रता और मुखरता आई। इस पहल का सकारात्मक पक्ष यह था कि जिन महिलाओं की अभिव्यक्ति अब तक दबा दी गई थी, वे खुलकर बोलने लगीं। प्रारंभिक दौर में स्त्री–विमर्श उन्हीं लेखकों की लेखनी से उभरा जिनकी इस विषय पर गहरी पकड़ थी। उस समय मर्द और औरत की कहानियों में स्त्री की पीड़ा, संघर्ष और व्यथा को बेहद सशक्त ढंग से प्रस्तुत किया गया। लेकिन जैसे–जैसे स्त्री की मुखरता बढ़ी, विमर्श में संतुलन की जगह भावनात्मक प्रवाह ने ले ली। समाज में यह धारणा बनने लगी कि मानो हर पुरुष दमनकारी है और स्त्री मात्र पीड़िता। इससे साहित्य और विमर्श में जो संतुलन था, वह प्रभावित हुआ।

मैं यह मानती हूँ कि जैसे स्त्रियाँ सामाजिक संरचनाओं की बंदिशों में जकड़ी होती हैं, वैसे ही पुरुष भी अनेक सांस्कृतिक, मानसिक और पारिवारिक अपेक्षाओं की बेड़ियों में जकड़े होते हैं। उन्हें भी एक पूर्वनिर्धारित भूमिका में जीना पड़ता है। इसलिए विमर्श में दोनों पक्षों को समावेशी और संतुलित दृष्टि से देखना अत्यंत आवश्यक है।

प्रश्न : आप एक लेखिका भी हैं और पत्रकार भी रही हैं। आप साहित्य और राजनीति को किस दृष्टिकोण से देखती हैं?

उत्तर : मेरे दृष्टिकोण से उत्कृष्ट लेखन वही है, जिससे समाज और देश की यथार्थ स्थिति उजागर हो। देश की सामाजिक–राजनीतिक दशा, चाहे वह सुधर रही हो या और अधिक बिगड़ रही हो, उसमें सबसे बड़ा योगदान शासन और उसकी नीतियों का होता है। जब सरकार की नीतियाँ जनसाधारण के विरुद्ध होती हैं, तो उसका प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से आम आदमी के जीवन में दिखाई देता है। यही वास्तविकता जब लेखनी के माध्यम से सामने आती है, तब राजनीति अपने आप उस रचना का हिस्सा बन जाती है। एक जागरूक लेखक जब सृजन करता

है तो उसे यह भली–भाँति ज्ञात होता है कि व्यक्ति किस स्तर पर पीड़ित हो रहा है। उदाहरण के लिए, जब सरकार यह कहती है कि 'गेहूँ महँगा इसलिए है क्योंकि फसल खराब हुई,' तो प्रश्न यह उठता है कि फसल की सुरक्षा और किसानों की सहायता के लिए सरकार ने क्या किया? लोगों की आय तो नहीं बढ़ी, लेकिन महंगाई ने उनकी कमर तोड़ दी। किसान, जो कभी विषम परिस्थितियों में भी आत्महत्या जैसे कदम नहीं उठाता था, आज आत्महत्या को विवश हो रहा है। एक लेखक के नाते जब हम इन वास्तविकताओं को रचनात्मक दृष्टिकोण से देखते हैं, तो साहित्य राजनीति से स्वतः जुड़ जाता है–क्योंकि साहित्य केवल कल्पना नहीं, बल्कि यथार्थ का प्रतिरूप है।

प्रश्न : राजनीतिक पक्षों को उभारने में बतौर एक लेखक के रूप में आपका क्या दृष्टिकोण है?

उत्तर : देखिए, मैं किसी राजनीतिक दल से ताल्लुक नहीं रखती और न ही मुझे इसमें कोई विशेष रुचि है कि कौन चुनाव जीत रहा है और कौन हार रहा है। लेकिन मुझे इसमें अवश्य रुचि है कि जो भी सरकार सत्ता में आती है, वह आम जन को क्या नया देती है, उनकी जरूरतों को किस हद तक समझती और पूरा करती है। आज के दौर में शिक्षा एक ऐसा क्षेत्र है, जिसे सबसे अधिक संसाधनों की आवश्यकता है, लेकिन यही क्षेत्र सबसे अधिक उपेक्षित होता दिख रहा है। बतौर एक जागरूक नागरिक, मैं वोट देती हूं, टैक्स अदा करती हूं, मेरे पास यह अधिकार है कि मैं सरकार से सवाल करूं कि उसके बदले मुझे क्या सुविधाएं मिल रही हैं। यह तो मेरा मूलभूत अधिकार है। जैसे एक परिवार में बच्चा अपने माता–पिता से यह पूछ सकता है कि उसे पर्याप्त भोजन क्यों नहीं मिल रहा, उसी तरह हम सरकार से यह पूछ सकते हैं कि हमें क्यों बुनियादी जरूरतें नहीं मिल रही हैं।

मुझे पुल और भव्य इमारतें नहीं चाहिए, मुझे एक पक्की छत चाहिए, जो बारिश में मेरे परिवार को भीगने से बचा सके। जितनी जरूरत है, उतनी ही आधारभूत संरचनाएं बनें–उससे ज्यादा नहीं। उसकी जगह अगर अस्पताल, स्कूल और सार्वजनिक कल्याण की सुविधाएं दी जाएं, तो वह कहीं अधिक आवश्यक और प्रभावी होंगी। भारत एक विशाल, विविधताओं से भरा हुआ देश है– यहां विभिन्न धर्म, भाषाएं और सामाजिक परिस्थितियां हैं। ऐसे में हमारी प्राथमिकताएं भी भिन्न होंगी, और सबसे पहले हमें अपने नागरिकों को रोटी, कपड़ा और मकान जैसे बुनियादी अधिकार देना होगा। आज का सबसे बड़ा संकट बेरोजगारी है। लोगों को जब यह विश्वास दिलाया गया कि अब सरकार आम आदमी के पक्ष में काम करेगी, तब उन्होंने स्वागत किया– कांग्रेस के विरुद्ध विकल्प के रूप में भाजपा को चुना। उन्हें आशा थी कि यह सरकार रोजगार देगी, समाज में शांति स्थापित होगी और किसी प्रकार का तनाव नहीं रहेगा। लेकिन धीरे–धीरे यह भ्रम टूटता चला गया और लोग आहत हुए। मेरे अनुसार, यदि सरकार वास्तव में जनसाधारण की जरूरतों को पूरा करे और उनके दिलों को छू सके, तो वही उसकी सबसे बड़ी विजय होगी। जनता का दिल जीतना राज करने का सबसे सरल और स्थायी मार्ग है।

प्रश्न : आप उस दौर में ईरान में रहीं, जब हालात बेहद पेचीदा थे। ईरान में क्रांति का समय था। आपने उस समय ईरान की शासन व्यवस्था के खिलाफ बड़ी बेबाकी से लिखा। आपका वह अनुभव कैसा रहा?

उत्तर : मेरा अनुभव कुछ ऐसा था कि मैंने किसी विशेष व्यक्ति या सत्ता के खिलाफ जानबूझकर नहीं लिखा था। दरअसल, मेरा जो क्लास वर्क था जहां मैं एक लेखक की हैसियत से कार्य कर रही थी वहां मैंने यह महसूस किया कि वहां न तो किसी को बोलने की स्वतंत्रता है, न लिखने की और न ही पढ़ने की। जब समाज का एक

वर्ग अपनी मांगों को लेकर मुखर हुआ, तो मुझे स्वाभाविक रूप से अपने वर्ग के साथ खड़ा होना पड़ा। और जब मैंने ऐसा किया, तो उन लोगों ने मुझसे आग्रह किया कि मैं गांधी के देश से हूं। जहां स्वतंत्रता है। इसलिए मैं उनकी आवाज वहां तक पहुंचाऊं जहां उनकी बात सुनी जा सके। उनकी आवाज को उठाने और उनके पक्ष में खड़े होने के चलते अगर मेरा लेखन किसी के विरोध में माना गया, तो उसकी कीमत मुझे चुकानी पड़ी। सच्चाई यह है कि आप सभी को खुश नहीं रख सकते। लेखन और पत्रकारिता में आपको एक स्पष्ट नजरिया अपनाना ही पड़ता है। यही मेरे लिए उस समय का सबसे बड़ा सबक और अनुभव रहा।

प्रश्न : आप भारत की राजनीति को वैश्विक स्तर पर किस दृष्टि से देखती हैं?

उत्तर : भारत का वैश्विक स्तर पर एक विशिष्ट स्थान रहा है। मुझे आज भी याद है कि जब मैं विभिन्न देशों की यात्राओं पर गई, तो वहाँ भारत को एक विशेष सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। यह सम्मान हमारे सांस्कृतिक पहनावे से लेकर हमारी कूटनीति, नीतियों और सामाजिक सरोकारों तक फैला हुआ था। विशेषकर श्रीमती इंदिरा गांधी का पहनावा और उनकी उपस्थिति अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारत की गरिमा और पहचान को सुदृढ़ करती थी। भारत की नीतियों और उसके मूल्यों के प्रति विश्व में एक सम्मानजनक दृष्टिकोण हमेशा रहा है। आजकल यह कहा जा रहा है कि भारत की वैश्विक पहचान अब बन रही है, जबकि सच्चाई यह है कि भारत दशकों से विश्वमंच पर अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज कराता रहा है। दरअसल, यह उस दृष्टिकोण का परिणाम है, जहां लोग इतिहास से अनभिज्ञ हैं। अगर मैं स्वयं को उदाहरण बनाऊँ– तो मान लीजिए मैं इस घर में 75 वर्ष पूर्व जन्मी और आज अपने पोते को गोद में लिए खड़ी हूँ, जिसने अभी इस संसार के दो वर्ष ही देखे हैं तो स्वाभाविक है कि उसे बहुत–सी चीजें नई प्रतीत होंगी। वही स्थिति आज के कई लोगों की है, जिन्हें लगता है कि अभी का समय ही सब कुछ है। जबकि हमने उन तमाम दौरों को जिया और देखा है, जिनमें भारत का नाम, उसकी प्रतिष्ठा और उसकी कूटनीति वैश्विक मंच पर सम्मान के साथ चर्चित रही है।

प्रश्न : आपके नए उपन्यास 'अल्फा–बीटा–गामा' में आपने कुत्तों की व्यथा को केंद्र में रखा है। कुत्तों को ही माध्यम के रूप में लेने का क्या कारण रहा?

उत्तर : 'कुत्ते' हमारी जिंदगी के बेहद करीब हैं हमारे मुहावरों में, कहावतों में, और हमारे आसपास की गली–चौपालों में टहलते हुए। वास्तव में, मेरे बेटे को कुत्तों से बहुत लगाव था। यूनिवर्सिटी के कैम्पस में जब भी कुत्तों के बच्चे जन्म लेते, मेरे बच्चे और उसके साथी उन्हें गोद में उठाकर दूध–डबलरोटी खिलाया करते थे। इन अनुभवों ने मेरे भीतर कुत्तों को लेकर एक गहरी संवेदना जगाई। फिर जब कोविड काल आया, तो उन निरीह जीवों की हालत और भी दयनीय हो गई। एक कहानी, जो शुरू में बच्चों के लिए लिखी थी, धीरे–धीरे आकार लेती गई और अंततः 'अल्फा–बीटा–गामा' उपन्यास का रूप ले लिया। हालाँकि कुत्ते प्रतीक हैं, माध्यम हैं असल में, उनके जरिए मैंने भारतीय समाज की परतों को खोलने की कोशिश की है। इस उपन्यास में सामाजिक मुद्दों की बहुलता है। कुत्तों के माध्यम से समाज के हाशिए पर खड़े इंसानों, उनकी उपेक्षा, संघर्ष और अस्तित्व की कहानी कही गई है।

प्रश्न : अंतर–धार्मिक और अंतरजातीय विवाहों के बारे में आपका क्या मानना है तथा इस तरह के विवाह में किन–किन चुनौतियों का सामना करना पड़ता है?

उत्तर : चुनौतियां तो होती ही हैं, क्योंकि अगर किसी व्यक्ति का दिल बड़ा नहीं है और दिमाग खुला नहीं है तो

वह ऐसे रिश्तों में अनुकूलन नहीं कर सकता। धर्म और संस्कृति के कारण स्वाभाविक रूप से कुछ अंतर होते हैं और वे विवाह के बाद सामने आते हैं। पहले के समय में ऐसी शादियां होती थीं और समाज उन्हें सहजता से स्वीकार भी कर लेता था, कोई बड़ा हंगामा नहीं होता था। लेकिन अब हालात बदल गए हैं। आज खाप पंचायतें सक्रिय हो गई हैं, धार्मिक उन्माद इस कदर बढ़ गया है कि लोग अपने ही बच्चों को मारने तक को तैयार हो जाते हैं। यह एक असामान्य स्थिति है, जो पहले नहीं थी। पहले हम ज्यादा खुले और आजाद ख्याल के लोग थे। मुझे लगता है कि आज की नई नस्ल को यह गलतफहमी है कि वे बहुत 'अग्रिम' हैं, लेकिन सच तो यह है कि मानसिक रूप से हम पहले की तुलना में कहीं ज्यादा पिछड़े हुए हैं। आज का इंसान बाहरी दिखावे में भले आधुनिक लगे, लेकिन सोच के स्तर पर वह कहीं न कहीं संकीर्ण होता जा रहा है। यही वजह है कि ऐसे विवाहों में तमाम सामाजिक और मानसिक बाधाएं खड़ी हो जाती हैं।

प्रश्न : आज के दौर में सोशल मीडिया का रुझान दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है। बतौर एक हिन्दी साहित्यकार होने के नाते क्या आप नई आने वाली पीढ़ियों के लिए अपनी लेखनी के माध्यम से क्या संदेश देना चाहेंगी, जो उन्हें जागरूक व भविष्य के लिए प्रेरित करें?

उत्तर : वे हम लोगों से ज्यादा जागरूक हैं। सोशल मीडिया पर आज लिटरेचर बहुत चर्चा में रहता है, क्योंकि इस पीढ़ी ने देख लिया है कि साहित्यिक दुनिया में बहुत ज़्यादा पॉलिटिक्स है। नई लेखकों के लिए किताब छपवाना मुश्किल है, समीक्षाएं छपती नहीं हैं और वही कुछ लोग हर मंच पर दिखाई देते हैं। हमने भी अपने बुजुर्गों की गलतियाँ दोहराईं और इस नई पीढ़ी को कुछ खास नहीं दे सके। ऐसे में सोशल मीडिया इनके लिए वरदान बन गया है। यहां वे अपनी कच्ची–पक्की रचनाएं तुरंत साझा करते हैं और फौरन प्रतिक्रिया भी मिलती है, हालांकि यह त्वरित तारीफें कभी–कभी विकास को रोकती हैं। जब तारीफ की आदत पड़ जाती है तो आत्म–मंथन रुक जाता है और रचना में परिपक्वता नहीं आती। लेकिन ऐसा नहीं है कि नए लोग अच्छा नहीं लिख रहे। बहुत से युवा लेखक गंभीरता एवम् संवेदनशीलता से लिख रहे हैं। हां, एक भीड़ भी है जो बस छपने के लिए लिख रही है। गैर–जरूरी किताबें भी आ रही हैं और नए पब्लिशर्स का अंबार लग गया है। कुल मिलाकर यह एक मिश्रित परिदृश्य है जिसमें संभावनाएं भी हैं और चुनौतियां भी।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 187-194

नाम में ही कथा है : 'गोदान' का बहुआयामी विश्लेषण

डॉ. सतीश चन्द अग्रवाल
प्रधानाचार्य, डॉ. के. एन. मोदी साइंस एंड कॉमर्स कॉलेज मोदीनगर, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश।

प्रस्तावना :-

'गोदान' मुंशी प्रेमचन्द का एक युगांतरकारी उपन्यास है, जिसे हिंदी साहित्य में यथार्थवाद और सामाजिक चेतना की पराकाष्ठा माना जाता है। यह उपन्यास न केवल भारतीय ग्रामीण जीवन की विषम परिस्थितियों, आर्थिक विषमताओं और सांस्कृतिक संक्रमणों का सजीव चित्रण करता है, बल्कि नगरीय जीवन के अंतर्विरोधों और बौद्धिक संघर्षों को भी अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत शोध–पत्र में 'गोदान' की बहुआयामी संरचना का विश्लेषण करते हुए ग्रामीण एवं शहरी जीवन की प्रासंगिकता, पात्रों के निर्माण में निहित सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक गहराई, तथा शिल्पगत विशेषताओं की विवेचना की गई है। विशेष रूप से मालती और मेहता जैसे पात्रों के माध्यम से प्रेमचन्द ने भारतीय परंपरा और पाश्चात्य आधुनिकता के बीच एक संतुलित संवाद स्थापित किया है, जो आज भी उतना ही समीचीन और विचारोत्तेजक है। यह शोध–पत्र इस बात की पड़ताल करता है कि किस प्रकार 'गोदान' समय के साथ–साथ अधिक प्रासंगिक होता गया है और वर्तमान सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भों में उसकी व्याख्या के नये आयाम उद्घाटित होते हैं।

बीज शब्द :- प्रेमचन्द, गोदान, यथार्थवाद, आंचलिकता, मालती, मेहता, ग्रामीण जीवन, नगरीय जीवन, सामाजिक चेतना, नारी सशक्तिकरण, समकालीनतां

परिचय :-

प्रेमचन्द का कथा–साहित्य भारतीय समाज की गहनतम परतों को उद्घाटित करने वाला सजीव दर्पण है। वे केवल साहित्यकार नहीं, अपितु अपने युग के सजग सामाजिक द्रष्टा भी थे, जिनकी रचनाएँ भारतीय जनजीवन की पीड़ा, संघर्ष, आकांक्षा और चेतना को स्वर देती हैं। उनके अंतिम और सर्वाधिक चर्चित उपन्यास 'गोदान' को समझने के लिए उनके समग्र साहित्यिक दृष्टिकोण और विचारधारा की पृष्ठभूमि को ध्यान में रखना आवश्यक है। प्रेमचन्द की रचना–यात्रा एक सतत विकासशील प्रक्रिया रही है, जिसमें विषयवस्तु की गहराई और शिल्प की परिपक्वता दोनों का क्रमिक विकास दिखाई देता है।

'गोदान' न केवल उनके साहित्यिक जीवन की पराकाष्ठा है, बल्कि यह उपन्यास उनकी सामाजिक–सांस्कृतिक चेतना, आर्थिक विश्लेषण और मानवीय करुणा का समेकित स्वरूप भी प्रस्तुत करता है। यद्यपि 'गोदान' प्रेमचन्द की पूर्व रचनाओं से कथ्य और शिल्प में भिन्न प्रतीत होता है, तथापि उसका मूल स्वर प्रेमचन्द के ही सामाजिक यथार्थवाद से अनुप्राणित है। यह उपन्यास ग्राम्य जीवन की करुण गाथा के साथ–साथ

नगरीय जीवन की बौद्धिक विडम्बनाओं को भी रेखांकित करता है, जिससे इसकी प्रासंगिकता आज भी अक्षुण्ण बनी हुई है।

शोध पद्धति :-

यह शोध–पत्र गुणात्मक विश्लेषण की पद्धति पर आधारित है। इसमें पाठ–आधारित विवेचन, तुलनात्मक दृष्टिकोण और सामाजिक–सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के आधार पर 'गोदान' के प्रमुख तत्वों की व्याख्या की गई है। शोध कार्य हेतु प्राथमिक स्रोत के रूप में स्वयं उपन्यास 'गोदान' और द्वितीयक स्रोतों में आलोचना–ग्रंथ, समीक्षाएं, और संबंधित शोध आलेखों का अध्ययन किया गया है।

साहित्य समीक्षा :-

प्रेमचन्द के 'गोदान' पर साहित्यिक जगत में विस्तृत और गंभीर विमर्श हुआ है। यह उपन्यास केवल कथा नहीं, बल्कि एक सामाजिक दस्तावेज है, जिसे विभिन्न आलोचकों ने भिन्न–भिन्न दृष्टिकोणों से परखा और विश्लेषित किया है। डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार, गोदान' भारतीय किसान की आर्थिक, सामाजिक एवं नैतिक त्रासदी का महाकाव्य है, जो भारत की औपनिवेशिक संरचना को बेनकाब करता है। वे इसे भारतीय समाज की बहुआयामी विडम्बनाओं की सशक्त अभिव्यक्ति मानते हैं, जिसमें शोषण, वर्ग–संघर्ष, धार्मिक पाखंड और सांस्कृतिक संक्रमण की गूंज स्पष्ट सुनाई देती है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'गोदान' को भारतीय सामाजिक चेतना और यथार्थवादी दृष्टिकोण का सर्वोच्च शिखर" कहा है। उनके अनुसार, प्रेमचन्द की यह कृति न केवल एक ग्रामीण किसान की व्यथा का चित्रण है, बल्कि यह एक व्यापक समाज की आत्मा को उद्घाटित करती है।

जयशंकर प्रसाद के नाटक 'स्कन्दगुप्त' और प्रेमचन्द के 'गोदान' में नारी दृष्टि को लेकर समानान्तर सूक्ष्मताएँ लक्षित की गई हैं। दोनों रचनाकारों के यहां स्त्री केवल प्रेम की आकांक्षी नहीं, बल्कि सांस्कृतिक अस्मिता, विचारशीलता और संघर्षशील चेतना का प्रतीक बनकर उभरती है। वर्तमान में अनेक समकालीन शोध–प्रबंध यह स्थापित करते हैं कि 'गोदान' की नगरीय कथा–संरचना, विशेषतः मेहता और मालती के संवादों और बौद्धिक विमर्शों के माध्यम से आधुनिक भारत के बौद्धिक वर्ग, नारी स्वतंत्रता, और संस्कृति बनाम आधुनिकता के द्वंद्व को उजागर करती है, जो आज के भारतीय समाज में अत्यंत प्रासंगिक है। डॉ. धनञ्जय वर्मा के अनुसार दृगोदान' में वर्णित नगरीय संघर्ष और ग्रामीण जीवन की दरिद्रता, आज भी भारतीय समाज की मूलभूत समस्याओं के रूप में विद्यमान हैं। यह उपन्यास समय को पार करते हुए सामाजिक चेतना की अंतर्धारा बना रहता है। इस प्रकार, 'गोदान' पर हुआ आलोचनात्मक विमर्श यह स्पष्ट करता है कि यह कृति केवल प्रेमचन्द के साहित्यिक जीवन की पराकाष्ठा नहीं है, बल्कि हिंदी उपन्यास की सामाजिक जमीन का प्रामाणिक दस्तावेज भी है, जिसकी वैचारिक प्रासंगिकता आज भी अक्षुण्ण बनी हुई है।

गोदान' का प्रतीकात्मक अर्थ और समकालीन भारतीय समाज :-

प्रेमचन्द के कथा–साहित्य की सम्यक् समझ तभी संभव है जब उनकी रचनाओं का मूल्यांकन उनके समग्र साहित्यिक चिन्तन और रचनात्मक विकास की निरंतरता में किया जाए। प्रायः आलोचकों द्वारा उनकी कृतियों का मूल्यांकन खंडित दृष्टि से– एकल उपन्यासों या कहानियों के आधार पर किया गया है, जो उनके समग्र अवदान की पूर्ण व्याख्या नहीं कर पाता। प्रेमचन्द की रचना–यात्रा एक निरंतर विकसित होती प्रक्रिया रही

है, जिसमें विषयवस्तु और शिल्प–दृष्टि दोनों में क्रमिक परिष्कार स्पष्ट रूप से लक्षित होता है।

उनकी अंतिम औपन्यासिक कृति 'गोदान', इस रचनात्मक विकास की परिपक्व परिणति के रूप में सामने आती है। यह उपन्यास प्रेमचन्द की पूर्ववर्ती परंपरा से भिन्न प्रतीत होता है, किंतु वस्तुतः उसकी जड़ें उन्हीं के सामाजिक यथार्थवाद और आदर्श–प्रेरित दृष्टिकोण में निहित हैं। अतः 'गोदान' का मूल्यांकन प्रेमचन्द की रचना–परंपरा के संदर्भ में ही सार्थक रूप से किया जा सकता है।

प्रेमचन्द की रचनाएँ प्रायः विषय– और समस्या–प्रधान होती हैं, और उनके उपन्यासों के शीर्षक सामान्यतः व्यक्तिनिष्ठ न होकर सामाजिक–सांस्कृतिक समस्याओं को इंगित करते हैं। 'निर्मला' को छोड़कर कोई भी उपन्यास किसी पात्र के नाम पर नहीं है। उदाहरणतः, 'रंगभूमि' को 'सूरदास' और 'गोदान' को 'होरी' नाम दिया जा सकता था, किंतु प्रेमचन्द द्वारा समस्या के शीर्षक को प्राथमिकता देने से उनके आशय की गहनता का संकेत मिलता है।

प्रेमचन्द के चरित्र–निर्माण की प्रक्रिया विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यद्यपि उनकी रचनाओं के सामाजिक–आर्थिक संदर्भ समयानुसार बदल चुके हैं, परन्तु उनके पात्रों की मानवीय संवेदनशीलता, नैतिक संघर्ष और चारित्रिक विकास आज भी प्रासंगिक हैं। उनके पात्रों में सद् और असद् दोनों प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं, जो परिस्थितियों के अनुसार विकसित होकर व्यक्ति को देवत्व या दानवत्व की ओर ले जाती हैं। विशेष बात यह है कि अनेक बार असद् प्रवृत्तियों वाले पात्र भी प्रेमचन्द की लेखनी में अंततः सकारात्मक दिशा में विकसित होते हैं। यह दृष्टिकोण उनके आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की विशेष पहचान है।

यद्यपि 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' कोई औपचारिक वाद नहीं है, तथापि प्रेमचन्द की रचनाओं में यह प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है– जहाँ यथार्थ की प्रस्तुति करते हुए भी वह उसे एक नैतिक ऊर्ध्वगमन की दिशा में ले जाते हैं। 'गोदान' में यह प्रवृत्ति अपेक्षाकृत अधिक सूक्ष्म और जटिल रूप में प्रकट होती है। उपन्यास का नायक 'होरी' अपने अंतर्मन में आदर्शों के प्रति आस्था रखता है, परंतु सामाजिक संरचनाएं, आर्थिक विवशताएं और धार्मिक विडंबनाएं उसे बार–बार झुका देती हैं। इस संघर्ष की परिणति एक त्रासद सौंदर्य में होती है, जो 'गोदान' को प्रेमचन्द की सर्वाधिक सशक्त कृति बनाती है।

'गोदान' के कथानक की संरचना में प्रेमचन्द ने स्थान परिवर्तन का नवाचार किया है। उन्होंने अपने गांव लमही (वाराणसी के पास) की अपेक्षा अवध क्षेत्र के काल्पनिक गांवों – सेमरी और बेलारी– को कथा के केंद्र में रखा। इसका कारण यह है कि अवध के भू–सामाजिक परिवेश में वे सभी तत्त्व जैसे तालुकेदारी शोषण, ग्रामीण महाजनी व्यवस्था, धार्मिक रूढ़ियाँ और आंचलिक जीवन की विविधता – सहज रूप से समाहित हो सकते थे, जो 'गोदान' के कथ्य के लिए आवश्यक थे।

वस्तुतः, अवध और आगरा खंड की सामाजिक संरचनाएं भिन्न थीं। अवध क्षेत्र के जमींदारों, महाजनों और किसानों के संबंधों में जो विडंबनाएं थीं, वे आगरा खंड की अपेक्षा अधिक तीव्र थीं। प्रेमचन्द ने इसी विशेषता को कथावस्तु में रूपायित किया। रामलीला, पंचायती व्यवस्था, तालुकेदारी का दबाव और महाजनी शोषण जैसे प्रसंग 'गोदान' में आंचलिकता की सघन उपस्थिति को प्रमाणित करते हैं।

आज भले ही स्वतंत्र भारत में जमींदारी उन्मूलन, सहकारिता आंदोलन, ग्रामीण बैंकिंग, संचार माध्यमों की व्यापकता आदि ने परिस्थितियाँ बदल दी हों, परन्तु प्रेमचन्द द्वारा चित्रित मानवीय संघर्ष, सामाजिक असमानता,

और संस्कृति बनाम सत्ता की लड़ाई अब भी जीवित है– भले ही उनके रूप बदल गए हों।

इस दृष्टि से 'गोदान' केवल एक युग विशेष का आंचलिक चित्रण नहीं है, बल्कि यह भारतीय समाज की चिरंतन विडंबनाओं का प्रतिनिधित्व करता है। प्रेमचन्द की दृष्टि में लोक ही साहित्य का केन्द्र है– और 'गोदान' इसी लोक का अमर आख्यान है।

'गोदान' उपन्यास में 'होरी' की आर्थिक समस्याओं और उसके शोषण की जटिल परिस्थितियों को उजागर करते हुए प्रेमचन्द ने इसे केवल एक आंचलिक कथा के दायरे में सीमित नहीं होने दिया। यदि हम चरित्रों की मनोवृत्तियों को छोड़ दें, तो 'गोदान' की ग्रामीण कथा का बहुत बड़ा भाग आज की सामाजिक संरचना में अप्रासंगिक प्रतीत हो सकता है, किन्तु प्रेमचन्द के रचे गए ग्रामीण पात्र आज भी अपनी विश्वसनीयता बनाए हुए हैं। जब ये पात्र समाज के गहरे संवेदनशील प्रश्नों पर अपने आचरण में मर्दानगी दिखलाते हैं, तो पाठक के मन में उनके प्रति आस्था और सघन हो जाती है। 'होरी' का 'सिलिया' और 'झुनिया' को संरक्षण देना, अपने अलग हो चुके भाई 'हीरा' की अवहेलना न कर उसके परिवार को संभालना, तथा रामलीला में मेहता के वेश को पहचान कर उपजे अपमान और आतंक को चुनौती देना, ऐसे प्रसंग हैं जो 'होरी' के चारित्रिक सौंदर्य और साहस को उजागर करते हैं। अमीरी और गरीबी के बीच गहराते हुए सांस्कृतिक तनाव के क्षणों में, 'होरी' का व्यक्तित्व इन दोनों के मध्य खड़ा होकर न्याय और मर्यादा की रक्षा करता है। जब शहर के संभ्रांत और शिक्षित वर्ग के लोग 'मालती' की अस्मिता पर संकट आते देख चुप्पी साध लेते हैं, तब एक साधारण कृषक 'होरी' निर्भीक होकर खड़ा होता है और सामाजिक आततायी के प्रतिरोध में प्रत्यक्ष संघर्ष करता है।

इस प्रकार प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास के शिल्प में घटनाओं की प्रधानता के माध्यम से चारित्रिक उदात्तता को अधिक महत्व दिया है। उनके लिए शिल्प का नैसर्गिक प्रवाह चरित्रों की गरिमा के समक्ष गौण हो जाता है। यही दृष्टिकोण प्रेमचन्द की कथा–कला को जीवंत बनाता है और उनके पात्रों को समयातीत प्रासंगिकता प्रदान करता है। यद्यपि ग्रामीण समाज में स्त्रियों के प्रति उत्पीड़न की प्रवृत्तियाँ आज भी किसी न किसी रूप में उपस्थित हैं, तथापि सामाजिक चेतना में परिवर्तन के कारण अब वे परंपरागत दबावों से मुक्त होती जा रही हैं। जिन वर्गों की स्त्रियाँ पहले उच्च जातियों के पुरुषों के शोषण की शिकार होती थीं, अब वे अपनी अस्मिता और अधिकारों के प्रति सजग हो चुकी हैं। 'मातादीन' के साथ घटित घटना इस संघर्ष की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति बनकर सामने आती है, जो ब्राह्मणवादी वर्चस्व के विरुद्ध उभरते दलित प्रतिरोध का संकेत देती है।

'गोदान' शीर्षक भी आज नए सवालों के घेरे में है। गोदान की धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक प्रासंगिकता अब बदलते सामाजिक संदर्भों में पुनः मूल्यांकन की अपेक्षा रखती है। इसके समानांतर नगरीय कथा के पात्र, विशेषकर वे जो आधुनिकता, शिक्षा और व्यवसाय से जुड़े हैं– जैसे मिल मालिक, पत्रकार, विधायक, डॉक्टर– आज भी अपने पूरे प्रभाव के साथ उपस्थित हैं। 'मालती' और 'मेहता' जैसे पात्र प्रेमचन्द के साहित्यिक दृष्टिकोण की व्यापकता को दर्शाते हैं। विशेषकर 'मालती' का चरित्र, जिसमें युग–बोध, अनुभव और भविष्य की सामाजिक चेतना का समावेश है, प्रेमचन्द की रचनात्मक दृष्टि की पराकाष्ठा मानी जा सकती है।

शिकार आयोजन और रामलीला जैसे प्रसंगों में प्रेमचन्द ने नारी और पुरुष वैभव की संरचना को अत्यंत सूक्ष्मता से चित्रित किया है। इस चित्रण के क्रम में कई घटनाएं जैसे– गोबर का पलायन, झुनिया द्वारा होरी के उपकारों को भुलाकर गोबर के साथ जाना, तथा उनका 'मालती' और 'मेहता' की मंडली से जुड़ जाना–कथानक

के प्राकृतिक प्रवाह को कहीं–कहीं बाधित करते प्रतीत होते हैं। प्रतीत होता है कि प्रेमचन्द युगबोध के चित्रण में इतने प्रतिबद्ध थे कि उन्होंने गोबर जैसे संभावनाशील पात्र को उसके विकास से वंचित कर दिया। गोबर के व्यक्तित्व में वह क्षमता निहित थी कि वह युवा वर्ग का प्रतिनिधि बन सकता था, परन्तु प्रेमचन्द ने उसे कथा के मुख्य प्रवाह से विलग कर दिया, जिससे उसकी नियति भी 'होरी' जैसी हो गई।

नारी पात्रों का चित्रण 'गोदान' में विशेष रूप से सशक्त रूप में किया गया है। चाहे वह 'धनिया' हो, 'दुलारी' सहुआइन या 'सिलिया'–सभी में जीवन शक्ति, साहस और सामाजिक चेतना की स्पष्ट झलक मिलती है। आधुनिक शिक्षा के आलोक में विकसित होती नारी चेतना को प्रेमचन्द ने 'मालती' के माध्यम से विशेष रूप से रूपायित किया है। 'मालती' आधुनिकता, सेवा–भाव, स्वाभिमान और सामाजिक उत्तरदायित्व की प्रतीक है, परन्तु उसकी असमर्थताएं भी प्रेमचन्द की दृष्टि से ओझल नहीं हैं। वे उसे एक पूर्ण मानव रूप में प्रस्तुत करते हैं– जिसमें शिक्षा और स्वतंत्रता है, पर साथ ही नारी सुलभ दुर्बलताएं भी। "मालती बाहर से तितली है, भीतर से मधुमक्खी"।[1] यह कथन उसके अंतःस्वरूप को उजागर करता है। सेवा–भाव से युक्त और आत्मसम्मान से संपन्न 'मालती' अपने स्वभाव में सहज है, पर अवसर आने पर उसमें ईर्ष्या और स्वाभाविक स्त्री–भावनाएं भी मुखर हो उठती हैं। वही दूसरी ओर कहते हैं कि–"शिक्षा भले ही किसी को नई दृष्टि दे, पर वह व्यक्ति के मूल संस्कारों को पूरी तरह परिवर्तित नहीं कर सकती। भारतीय नारी के विकास की यह यात्रा पौराणिक युग से आज तक की है, जिसमें उसने असंख्य विरोधाभासों को अपने भीतर समेटे रखा है।"[3] प्रेमचन्द इसी विरासत को 'गोदान' में पकड़ते हैं। 'उर्वशी' का 'पुरुरवा' को दिया गया उपदेश", नारी के चरित्रगत द्वंद्व को गहराई से प्रकट करता है। प्रेमचन्द 'मालती' के माध्यम से इस द्वंद्व को आधुनिक संदर्भों में पुनः प्रतिपादित करते हैं। जब 'मालती' अपने भीतर उमड़ती ईर्ष्या की भावना से किसी काली–कलूटी जंगली युवती की उपेक्षा करती है, तो यह केवल एक स्त्री का ही नहीं, बल्कि मनुष्य की संकीर्णता का भी सूक्ष्म चित्रण बन जाता है।

'मालती' का आधुनिक जीवन, उसके सामाजिक व्यवहार, पुरुषों से उसका खुला संवाद, और सेवा भावना – ये सब उसे एक विचारशील आधुनिक महिला बनाते हैं। पर यदि प्रेमचन्द केवल इन पहलुओं पर ही ध्यान देते, तो वह एक सजीव नारी पात्र नहीं बनती, बल्कि एक आदर्शवादी बौद्धिक कल्पना मात्र रह जाती। उसकी सहज दुर्बलताएं, असहज प्रतिक्रियाएं, और ईर्ष्या–भाव उसे मांस–मज्जा की स्त्री बनाते हैं। यही संतुलन प्रेमचन्द की रचनाशीलता को महान बनाता है और 'गोदान' को एक शाश्वत सामाजिक दस्तावेज का दर्जा देता है।

प्रेमचन्द की दृष्टि सदा भविष्य की ओर उन्मुख रही है। अब तक उन्होंने प्रेम की परिणति विवाह में दिखाकर उसके अभाव को पाप की संज्ञा दी थी, किंतु यदि मालती और मेहता के प्रसंग में भी यही परिपाटी अपनाई जाती, तो आज यह युग–सापेक्ष नहीं रह पाता। प्रेमचन्द ने इस प्रेम–संबंध को औपचारिकताओं से मुक्त किया है। बहते जल में मेहता के डूब जाने की आशंका से व्यथित होकर मालती का विचलित होना, उसके प्रेम की गंभीरता को रेखांकित करता है। यद्यपि वह मेहता के कंधे पर चढ़कर उस प्रवाह को पार करती है, तथापि "अगर कोई देख ले"[4] – यह कहना उसकी स्वाभाविक लज्जा का परिचायक है। भले ही आज की आधुनिक नारी इस स्थिति में लज्जा का अनुभव न करे, किन्तु प्रेमचन्द की दृष्टि में उस समय का वर्तमान और संभावित भविष्य दोनों ही विद्यमान थे। उपन्यास की समाप्ति तक आते–आते प्रेम की चरम परिणति किसी करुण त्रासदी में नहीं बदलती, यही प्रेमचन्द की विलक्षण विशेषता है। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि– "प्रेम के परिणय–विहीन अंत

को लेकर प्रेमचन्द के समय में भी पश्चिमी शिक्षा के प्रभाव स्वरूप सामाजिक दबाव सशक्त हो रहा था।"[5]

हिंदी साहित्य में इस प्रवृत्ति के प्रवर्तक के रूप में जयशंकर प्रसाद का नाम उल्लेखनीय है। उनके नाटक 'स्कन्दगुप्त' में स्कन्द और देवसेना का प्रेम–विकास परिणय में नहीं, बल्कि एक आध्यात्मिक पूजाभाव में संपन्न होता है, जिसने अनेक बाद के रचनाकारों को भी प्रभावित किया। प्रेमचन्द के 'मालती–मेहता' और आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में 'भट्ट' और 'भट्टिनी' के प्रेम–प्रसंग में इसी दृष्टिकोण की झलक स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। यह दोनों ही रचनाएँ 'स्कन्दगुप्त' के पश्चात प्रकाशित हुई थीं। प्रसाद की दृष्टि भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों से परिपूर्ण रही, इसलिए उन्होंने प्रेम के अंतिम क्षणों में भी नारी–पुरुष संबंधों को वासना की भूमि से उठाकर श्रद्धा और पूजन की भावभूमि पर प्रतिष्ठित किया। इसके विपरीत प्रेमचन्द और द्विवेदी की कृतियों में यह आदर्श पूरी तरह से नहीं दिखाई देता। प्रेमचन्द की कथा–सृष्टि में पाश्चात्य दृष्टिकोण का और द्विवेदी जी के साहित्य में छायावादी मूल्यबोध का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

प्रेमचन्द की रचनात्मक दृष्टि ने नारी–पुरुष संबंधों को केवल पारंपरिक विवाह की सीमा तक नहीं बाँधा, बल्कि उन्होंने सामाजिक यथार्थ और बदलते समय के संदर्भ में इन्हें पुनर्परिभाषित करने का प्रयास किया। श्गोदानश में मालती और मेहता का संबंध इसी नव्य दृष्टिकोण का परिचायक है। यह संबंध केवल भावनात्मक नहीं, बल्कि सामाजिक और बौद्धिक विमर्श का भी केंद्र बनता है।

आज के समाज में जॉन पॉल सार्त्र और सिमोन द बोउआर जैसे दार्शनिकों के परिणयरहित प्रेम संबंधों को खुले रूप में स्वीकार किया जा रहा है। आधुनिक महानगरीय जीवन में कुँवारी माँ और स्वतंत्र विधवा जैसी संकल्पनाएँ अब लज्जा का कारण नहीं, बल्कि सामाजिक आत्मविश्वास की प्रतीक बन चुकी हैं। विज्ञापन और मीडिया इन रूपों को गर्व से प्रस्तुत कर रहे हैं।

इस सन्दर्भ में प्रेमचन्द की मालती एक ऐसी स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है, जो आधुनिकता और परंपरा के मध्य संतुलन बनाकर चलती है। वह पश्चिमी मुक्त प्रेम की विचारधारा को तो समझती है, किन्तु भारतीय सामाजिक मूल्यों को भी पूरी तरह नकारती नहीं है। मेहता और मालती के मध्य विवाह न करने का निर्णय केवल निजी स्वतंत्रता का नहीं, बल्कि दायित्व और आत्मनिर्णय का भी घोष है। मालती कहती है– 'मैं महीनों से इस प्रश्न पर विचार कर रही हूं और अंत में मैंने यह तय किया कि मित्र बनकर रहना स्त्री, पुरुष बनकर रहने से कहीं सुखकर है... मैं भी तुमसे प्रेम करती हूं, तुम पर विश्वास करती हूं और तुम्हारे लिए कोई ऐसा त्याग नहीं है जो मैं न कर सकूं...'।[6]

यह कथन केवल एक स्त्री के निर्णय की स्वतंत्र घोषणा नहीं, बल्कि उस सामाजिक संक्रमण की ओर संकेत करता है, जिसमें प्रेम, विवाह और जीवन की पारंपरिक परिभाषाएं पुनः गढ़ी जा रही हैं।

यदि प्रेमचन्द इस प्रसंग को यहीं समाप्त कर देते, तो यह केवल आदर्श प्रेम की एक कोमल अभिव्यक्ति होती। लेकिन लेखक आगे बढ़ते हैं और लिखते हैं– 'और दोनों एकान्त होकर प्रगाढ़ आलिंगन में बंध गए। दोनों की आंखों से आंसुओं की धारा बह रही थीं।'[7]

यह 'एकान्त'शब्द उस गहरे भावबोध को व्यक्त करता है, जिसमें प्रेम, संवेदना और सामाजिक वर्जनाओं से परे आत्मीयता एक नये रूप में उभरती है। प्रेमचन्द एक प्रकार से उस भावी भारतीय समाज की झलक देते हैं, जिसमें परिणयविहीन प्रेम संबंधों की स्वीकृति बढ़ेगी और महानगरीय संस्कृति में यह संबंध सामाजिक ढांचे का

हिस्सा बन जाएंगे। जहाँ एक ओर 'होरी' और 'धनिया' जैसे ग्रामीण पात्र अपनी पारंपरिक भूमिका में सीमित होकर धीरे–धीरे अपनी प्रासंगिकता खोते जाते हैं, वहीं मालती और मेहता जैसे पात्र भविष्य की सामाजिक संरचना में अधिक सार्थक और जीवंत प्रतीत होते हैं।

आज भी समाज में उपदेश देना एक सामान्य प्रवृत्ति बनी हुई है, परंतु यह कार्य प्रायः आत्मावलोकन के अभाव में ही किया जाता है। यह मानवीय स्वभाव की शाश्वत विसंगति है। 'गोदान' का पात्र दातादीन स्वयं नैतिक रूप से पतित होते हुए भी सामाजिक प्रतिष्ठा का स्वांग रचता है। उसका पुत्र एक निम्नवर्णीय स्त्री के साथ संलग्न है, फिर भी दातादीन, धनिया जैसी स्त्री को यह कहने का साहस करता है– 'कैसे धोखा ख गई?' यह द्वैध आचरण आज भी हमारे सामाजिक और राजनीतिक नेतृत्व में देखा जा सकता है, जहां दागदार व्यक्तित्व सार्वजनिक मंचों पर सम्मानित पदों पर सुशोभित हैं।

'मातादीन' के मुंह में जब निम्न जाति के लोगों द्वारा हड्डी डाल दी जाती है, तो सामाजिक व्यवस्था का सारा ढांचा हिल जाता है। प्रेमचन्द ने इस घटना के माध्यम से दलितों के दमन के विरुद्ध प्रतीकात्मक प्रतिरोध को दर्शाया है। आज की सामाजिक स्थिति में जब दबे–कुचले वर्ग अपने अधिकारों के लिए मुखर हो रहे हैं, 'गोदान' की यह घटना नई चेतना का प्रतीक बन जाती है।

उपन्यास में स्त्री पात्रों की प्रस्तुति विशेष रूप से उल्लेखनीय है। झुनिया और सिलिया जैसी स्त्रियाँ बहस में अपनी सक्रिय भागीदारी देती हैं। वहीं धनिया का साहस इस हद तक बढ़ा हुआ है कि वह थानेदार से भी टकरा जाती है, जबकि पुरुष वर्ग लाल पगड़ी देखकर सहम जाता है। प्रेमचन्द ने यह स्पष्ट कर दिया है कि स्त्रियाँ अब केवल घर की चारदीवारी तक सीमित नहीं हैं, वे अपने अधिकार और सम्मान की लड़ाई लड़ने को तैयार हैं। चाहे वह झोपड़ी की महिलाएं हों या उच्च शिक्षित नागरी स्त्रियाँ, उनमें आत्मचेतना और आत्मसम्मान का बोध स्पष्टतः परिलक्षित होता है।

'मालती' के चरित्र में प्रेमचन्द ने उस आधुनिक स्त्री की छवि प्रस्तुत की है जो परंपरा और आधुनिकता के द्वंद्व में जूझते हुए भी अपनी स्वतंत्र अस्मिता की खोज करती है। उनके इस चित्रण के माध्यम से यह सुस्पष्ट होता है कि ग्रामीण परिवेश की महिलाएं अपेक्षाकृत अधिक चारित्रिक दबाव और विचलनों की शिकार रही हैं।

शिल्प की दृष्टि से 'गोदान' का दोहरा कथानक–ग्रामीण और नागरीय जीवन की समानांतर प्रस्तुति–भारतीय उपन्यास साहित्य में एक अभिनव प्रयोग रहा है। इस पर आलोचकों और पाठकों के मध्य अनेक सार्थक चर्चाएँ हुई हैं। परंतु यह निर्विवाद है कि विषयवस्तु के धरातल पर 'गोदान' आज भी स्वतंत्रता–पूर्व और पश्चात भारत की यथार्थपरक सामाजिक व्याख्या प्रस्तुत करता है।

निष्कर्ष :-

'गोदान' केवल एक किसान की व्यथा–कथा नहीं, बल्कि तत्कालीन भारतीय समाज का बहुआयामी दर्पण है, जिसमें ग्रामीण और शहरी दोनों जीवन के संकट, संघर्ष, परिवर्तन और विडंबनाएँ गहराई से चित्रित हैं। प्रेमचन्द ने न केवल शोषण और सामाजिक असमानताओं को उकेरा है, बल्कि उन्होंने मानव प्रवृत्तियों, राजनीतिक अवसरवाद, धार्मिक पाखंड, स्त्री–जागरण और वर्ग–संघर्ष को भी बड़ी ईमानदारी और यथार्थवादी दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है। आज की सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ यदि देखें, तो 'गोदान' में चित्रित हर पात्र और परिस्थिति आज भी किसी न किसी रूप में हमारे सामने विद्यमान है–चाहे वह दातादीन जैसा ढोंगी नेता हो,

मातादीन जैसा पाखंडी धर्मगुरु, या झुनिया और धनिया जैसी जागरूक स्त्रियाँ। ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी स्त्रियाँ सामाजिक अन्याय के विरुद्ध आवाज उठा रही हैं और नगरीय समाज में पूंजीवाद, मीडिया की विकृति, चुनावी स्वार्थ और नैतिक पतन की समस्याएँ जस की तस बनी हुई हैं।

प्रेमचन्द की दृष्टि केवल सामाजिक वर्णन तक सीमित नहीं रही, उन्होंने अपने साहित्य से उस परिवर्तन की नींव रखी जिसकी गूंज आज भी सुनाई देती है। 'गोदान' का ग्रामीण कथानक उस काल की सामाजिक सच्चाइयों को उजागर करता है, जबकि शहरी कथा स्वतंत्रता के बाद उभरती मध्यवर्गीय और पूंजीवादी मानसिकता पर करारा प्रहार करती है। यह उपन्यास इस बात का प्रमाण है कि यथार्थवादी साहित्य समय की सीमाओं से परे होता है और हर युग में नए अर्थ ग्रहण करता है।

इस प्रकार 'गोदान' आज भी केवल एक ऐतिहासिक उपन्यास नहीं, बल्कि भारतीय समाज के लिए एक चेतनात्मक ग्रंथ है, जो हमें न केवल अतीत की याद दिलाता है, बल्कि वर्तमान को समझने और भविष्य को दिशा देने का आधार भी प्रस्तुत करता है। जहाँ स्वतंत्रता–पूर्व भारत में 'गोदान' की ग्रामीण कथा अत्यंत प्रासंगिक थी, वहीं आज के संदर्भ में इसकी नागरीय कथा कहीं अधिक यथार्थ के निकट जान पड़ती है। चुनावी जोड़–तोड़, संपादकीय हस्तक्षेप, पीत पत्रकारिता, पूंजीवादी शोषण, श्रमिक संगठन की असफलता, यौन शोषण की बढ़ती घटनाएं, धार्मिक पाखंड और दलित प्रतिरोध जैसी समकालीन समस्याएं उपन्यास की नगरीय कथा में यथार्थ रूप से चित्रित हैं। अतः 'गोदान' केवल एक साहित्यिक कृति नहीं, बल्कि भारतीय सामाजिक जीवन का ऐतिहासिक दस्तावेज है, जिसकी प्रासंगिकता समय के साथ और भी बढ़ती गई है।

सम्मान :–

1. पद्मभूषण दिनकर सम्मान 2024 एवं
2. विद्या वाचस्पति सारस्वत सम्मान प्राप्त ग्रीन साइंटिस्ट अवार्ड।

संदर्भ :–

1. गोदान – संस्करण 1995, पृ० 143
2. नवम स्कन्द के चौदहवें अध्याय से अनूदित चन्द्रवंश का।
3. गोदान, पृ० 66
4. वही, पृ० 61
5. वही, पृ० 273
6. वही, पृ० 274
7. वही, पृ० 274

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 7-8
पृष्ठ : 195–202

तुलसी का रामराज्य : भक्ति में राजनीतिक विमर्श

पीयूष कुमार दुबे
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, कॉलेज ऑफ वोकेशनल स्टडीज, दिल्ली विश्वविद्यालय।

शोध सार :–

यह शोध आलेख गोस्वामी तुलसीदास के साहित्य, विशेषतः रामचरितमानस में अभिव्यक्त राजनीतिक चेतना एवं लोकतांत्रिक मूल्यों का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है। तुलसीदास सामान्यतः भक्तिकाव्य के मूर्धन्य कवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं, परंतु यह अध्ययन उन्हें एक सशक्त सामाजिक–राजनीतिक विचारक के रूप में पुनर्परिभाषित करने का प्रयास करता है। आलेख इस विचार को केंद्र में रखता है कि तुलसी के रामराज्य की संकल्पना मात्र धार्मिक आदर्श नहीं, बल्कि एक समावेशी, न्यायसंगत और लोकहितैषी शासन प्रणाली का आदर्श प्रतिमान है, जो आधुनिक लोकतांत्रिक सिद्धांतों से साम्य रखता है।

तुलसीदास के समय की सामाजिक–राजनीतिक परिस्थिति विशेषतः मुगल सामंतवादी व्यवस्था की पृष्ठभूमि, जहाँ जन–कल्याण गौण और शोषण प्रमुख था, में तुलसी का रामराज्य एक वैकल्पिक राजनीतिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। इस आदर्श में जनमत की प्रधानता, सामाजिक समानता, न्याय, उत्तरदायी शासन और मर्यादित स्वतंत्रता जैसे तत्व स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं। यह आलेख तुलसी द्वारा वर्णित रामराज्य को एक प्रकार की राजनीतिक स्थापना के रूप में देखता है, जो तत्कालीन व्यवस्था के विरुद्ध एक वैचारिक प्रतिरोध भी है।

यह आलेख तुलसीदास के काव्य में वर्णित विभिन्न प्रसंगों जैसे – राम के युवराज बनने की प्रक्रिया, निषादराज गुह और शबरी जैसे वंचित पात्रों से उनके संबंध, तथा राजा द्वारा प्रजा की आलोचना के प्रति उत्तरदायित्व आदि का विश्लेषण करता है। इन प्रसंगों के माध्यम से तुलसी की गहरी लोकतांत्रिक संवेदना का उद्घाटन होता है, जिसमें राम एक सर्वप्रिय शासक के रूप में चित्रित होते हैं, जो सत्ता का नहीं, सेवा का प्रतीक हैं।

स्त्री विषयक दृष्टिकोण पर यह लेख तुलसीदास का पुनर्पाठ करता है। इस संदर्भ में, आलेख यह इंगित करता है कि तुलसीदास अपनी युगीन सीमाओं के भीतर रहकर भी स्त्रियों की गरिमा, शक्ति और स्वतंत्र अस्तित्व को अनेक स्थलों पर रेखांकित करते हैं – विशेषतः सीता के चरित्र में। तुलसी द्वारा प्रतिपादित 'एकपत्नीव्रत' का आदर्श स्त्री–पुरुष समानता के पक्ष में एक मौन क्रांति के रूप में देखा जा सकता है।

इसके अतिरिक्त आलेख में तुलसी की कर–नीति, राजधर्म, प्रजा के अधिकार एवं शासक के दायित्व पर भी विशेष चर्चा की गई है। 'बरषत हरषत लोग सब, करसत लखे न कोइ' जैसी पंक्तियाँ एक ऐसी कर प्रणाली की रूपरेखा प्रस्तुत करती हैं जो शोषण नहीं, सहभागिता पर आधारित है। तुलसी का यह दृष्टिकोण आधुनिक लोकतंत्र में 'कल्याणकारी राज्य' (Welfare State) की अवधारणा से मेल खाता है।

अंततः, यह शोध इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि तुलसीदास का काव्य एक ओर जहाँ भक्ति और आध्यात्मिक चेतना का श्रेष्ठ उदाहरण है, वहीं दूसरी ओर यह सामाजिक–सांस्कृतिक एवं राजनीतिक विमर्श का भी समृद्ध माध्यम है। उनका रामराज्य केवल धार्मिक श्रद्धा का विषय नहीं, बल्कि एक विचारधारा है – जिसमें मानवीय गरिमा, समानता, न्याय और जन–हित की स्थापना की आकांक्षा है। तुलसीदास की राजनीतिक दृष्टि आज के संदर्भ में भी उतनी ही प्रासंगिक है, जितनी अपने समय में थीय और इसीलिए उन्हें भक्त कवि से आगे बढ़कर लोकनायक और राजनीतिक चिन्तक के रूप में भी पुनर्मूल्यांकित किया जाना चाहिए।

शोध आलेख :–

आधुनिक विश्व की शासन प्रणालियों में लोकतंत्र को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। यह शासन व्यवस्था ऐसी प्रणाली के रूप में प्रतिष्ठित है, जिसमें राज्यसत्ता का संचालन जनसामान्य द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से जनहित के परिप्रेक्ष्य में किया जाता है। लोकतंत्र की ऐतिहासिक उत्पत्ति का विश्लेषण करने पर प्राचीन यूनान का उल्लेख प्रमुख रूप से उभरता है। पाश्चात्य इतिहास लेखकों द्वारा ग्रीस को विश्व का प्रथम लोकतांत्रिक राष्ट्र निरूपित किया गया है। आधुनिक लोकतंत्र के विकासक्रम में 1688 ईस्वी में इंग्लैंड में संपन्न कथित 'रक्तहीन क्रांति' एक अत्यंत महत्वपूर्ण ऐतिहासिक मोड़ के रूप में मानी जाती है, जिसके परिणामस्वरूप वहाँ राजशाही की निरंकुश सत्ता का ह्रास हुआ और संसदीय प्रणाली की सर्वोच्चता स्थापित हुई। यद्यपि इंग्लैंड ने लोकतंत्र के औपचारिक स्वरूप को अंगीकार किया, तथापि वह आज भी संवैधानिक राजतंत्र की परंपरा को संरक्षित रखे हुए है तथा पूर्ण लोकतांत्रिक रूपांतरण की दिशा में पूर्णतः अग्रसर नहीं हो सका है। ब्रिटेन के पश्चात अमेरिका, फ्रांस तथा रूस में घटित क्रांतियाँ भी लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं की स्थापना की दिशा में निर्णायक सिद्ध हुईं। अमेरिका आज लिखित संविधान से संचालित एक व्यवस्थित लोकतांत्रिक देश के रूप में स्थापित है, तो फरांस में भी लोकतंत्र की स्थिति सुदृढ़ कही जा सकती है। रूस में कहने को तो संविधान आधारित लोकतंत्र है, परंतु उसका स्वरूप पूर्णतः अधिनायकवादी हो चुका है, जहां संविधान संशोधन के माध्यम से पुतिन 2036 तक के लिए राष्ट्रपति पद सुरक्षित कर चुके हैं।[1]

यह सही है कि आधुनिक लोकतांत्रिक शासन प्रणालियों की स्थापना एवं विकास का ऐतिहासिक श्रेय पश्चिमी देशों को जाना चाहिए। विशेषतः यूनान, इंग्लैंड, फ्रांस और अमेरिका की क्रांतियाँ लोकतंत्र की संस्थागत संरचना के निर्माण में महत्त्वपूर्ण मील के पत्थर सिद्ध हुई हैं। परन्तु, यह उल्लेख करना भी अत्यंत आवश्यक है कि जिन मूलभूत सिद्धांतों – जैसे जन–सहमति, समानता, न्याय, उत्तरदायित्व तथा लोकहित – पर आधुनिक लोकतंत्र की आधारशिला टिकी है, उन सिद्धांतों के समकक्ष अवधारणाएँ भारत की प्राचीन ज्ञान–परंपरा, साहित्य और राजनीतिक विमर्श में भी विद्यमान रही हैं। वैशाली का गणतंत्र[2] तो एक उदाहरण है ही, वेदों और महाभारत सहित विभिन्न भारतीय ग्रंथों में भी गणतंत्र से सम्बंधित व्यवस्थाओं, पद्धतियों और मूल्यों का उल्लेख मिलता है।[3] महाभारत के शांतिपर्व में तो स्पष्ट रूप से गणतंत्र राज्य और उसकी नीति का वर्णन आता है।[4] ऐसे में, यह कहना उचित प्रतीत होता है कि भारतीय वांग्मय में उपस्थित यह लोकतांत्रिक चेतना ही 'नानापुराणनिगमागमसम्मत' की आधारशिला पर अपने महाकाव्य का भव्य भवन खड़ा करने वाले गोस्वामी तुलसीदास के काव्य–सृजन में भी जहां–तहां आती रही है। वस्तुतः भारतीय ज्ञान–परंपरा में लोकतंत्र के संदर्भ में जो कुछ श्रेष्ठ उपस्थित है, उन सबका श्रेष्ठतम सारांश तुलसी के काव्य में रामराज्य का रूप लेकर अभिव्यंजित हुआ है।

लोकतंत्र का मूल उद्देश्य जनमत के सम्मान और जनकल्याण की सर्वोच्चता को सुनिश्चित करना होता है। शासन की वह प्रत्येक प्रणाली, जो व्यापक जनहित को साकार करने में समर्थ हो, लोकतांत्रिक व्यवस्था के मूल स्वरूप में सम्मिलित मानी जाती है। शासन के धरातल पर लोकतंत्र उन्हीं मूल्यपरक सिद्धांतों एवं नीतिगत पद्धतियों को आत्मसात करता है, जो जनसामान्य के जीवन को सुगम, समृद्ध और न्यायसंगत बनाने हेतु अभिप्रेरित हों।

गोस्वामी तुलसीदास के युग की राजनीतिक–सामाजिक संरचना इस आदर्श से कोसों दूर थी। तत्कालीन शासन प्रणाली, विशेषतः मुगल राजसत्ता के अधीन विकसित सामंतवादी ढांचे में, जनसामान्य की स्थिति अत्यंत दयनीय थी। शोषण, अन्याय और सामाजिक असमानता की व्यापक उपस्थिति के कारण नागरिक जीवन में धर्म–अधर्म अथवा उचित–अनुचित का बोध विलुप्त प्रायः था। आर्थिक संकट और दैन्यावस्था ने सामान्यजन को विवश कर दिया था कि वे केवल क्षुधापूर्ति को ही जीवन का अंतिम लक्ष्य मानें।

तुलसीदास ने इस विकट सामाजिक–सांस्कृतिक विघटन की छवि को कवितावली में अत्यंत मार्मिकता से चित्रित किया है। प्रस्तुत कवित्त, जिसमें विभिन्न वर्गों के लोगों की आर्थिक विवशता, नैतिक अधःपतन और पेट की अग्नि के समक्ष समस्त जीवनमूल्यों की पराजय का वर्णन हुआ है, वस्तुतः उस युग के यथार्थ का सजीव दस्तावेज है :–

किसबी, किसान-कुल, बनिक, भिखारी, भाट, चाकर, चपल नट, चोर, चार, चेटकी।
पेट को पढ़त, गुन गढ़त, चढ़त गिरी, अटत गहन-गन अहन अखेट की।।
ऊँचे-नीचे करम, धरम-अधरम करि, पेट ही को पचत, बेचत बेटा-बेटकी।
'तुलसी' बुझाइ एक राम घनस्याम ही तें, आगि बड़वागितें बड़ी है आगि पेट की।।[5]

इस सामाजिक विघटन और दमनकारी व्यवस्था के मध्य तुलसीदास ने 'रामराज्य' की परिकल्पना के माध्यम से एक आदर्श शासन–प्रणाली का सृजन किया, जो यद्यपि राजतंत्रात्मक स्वरूप में अभिव्यक्त होता है, तथापि उसमें निरंकुशता, स्वेच्छाचारिता अथवा दमन का कोई स्थान नहीं है। रामराज्य तुलसी के राजनीतिक आदर्श का चरम प्रतिमान है, जिसमें शासन की समस्त शक्तियाँ जनमत, न्याय और लोकमंगल के हित में नियोजित होती हैं।

रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में उल्लिखित रामराज्य केवल एक आदर्श शासन का नैतिक आख्यान नहीं है, बल्कि तुलसीदास की लोकतांत्रिक दृष्टि का साकार रूप भी है। उल्लेखनीय है कि यह लोकतांत्रिक चेतना रामचरितमानस में केवल अंततः नहीं उभरती, अपितु उसके प्रारंभिक प्रसंगों से लेकर सम्पूर्ण कथा–प्रवाह में वह बारंबार मुखर होती रहती है। तुलसीदास द्वारा प्रस्तुत यह शासन दृष्टि उन्हें भक्त कवि के पारंपरिक दायरे से बाहर लाकर एक सजग समाज–चिंतक एवं दूरदर्शी राजनीतिक विचारक के रूप में स्थापित करती है। राम राज्याभिषेक के प्रसंग में तुलसी ने शासन के जिस रूप का संकेत दिया है, उसमें राजा दशरथ सब की सम्मति का संज्ञान होने पर ही अपने पुत्र राम को युवराज बनाने का विचार करते हैं :–

सब कें उर अभिलाषु अस, कहहिं मनाइ महेसु।
आप अछत जुबराज पद, रामहि देउ नरेसु।।[6]

स्पष्ट है कि राजा दशरथ राम का राज्याभिषेक करने का विचार इसलिए कर रहे हैं, क्योंकि राम उनके

सेवक, मंत्री और प्रजाजनों सहित सबको प्रिय हैं। संभव है कि यदि राम सर्वप्रिय नहीं होते और भरत–लक्ष्मण आदि किसी अन्य राजकुमार को यह जन–स्वीकृति प्राप्त होती तो केवल राजा का ज्येष्ठ पुत्र होने से राम को राज्य नहीं मिलता, अपितु सर्वप्रिय राजकुमार के अभिषेक का विचार किया जाता। राम के ही पूर्वज राजा सगर ने अयोग्य होने के कारण अपने ज्येष्ठ पुत्र असमंजस का त्याग कर प्रजा के प्रिय अपने पौत्र अंशुमान को राजा बना दिया[7] था। भारतीय परम्परा में ऐसे और भी उदाहरण मिलते हैं। तुलसीदास ने भी राम राज्याभिषेक के माध्यम से भारतीय परंपरा में उपस्थित जनमत के महत्व की राजनीतिक दृष्टि के प्रति ही समर्थन व्यक्त किया है।

समानता का प्रश्न आने पर अक्सर तुलसीदास आलोचना की धार पर रख दिए जाते हैं। उन्हें वर्ण–व्यवस्था के समर्थक से लेकर स्त्री–विरोधी तक सिद्ध करने की चेष्टाएँ होती रहती हैं। इस तरह की बात करने वाले लोग अक्सर तुलसी के राम की समतामूलक दृष्टि को भूल जाते हैं। जो राम चक्रवर्ती सम्राट दशरथ के पुत्र हैं और वर्ण से क्षत्रिय हैं, वे तत्कालीन समाज में स्वयं से हर प्रकार हीन माने जाने वाली विभिन्न जातियों/जनजातियों के साथ समानता पर आधारित संबंधों की स्थापना करते हैं। निषादराज गुह संग **'तुम्ह मम सखा भरत सम भ्राता'**[8] के द्वारा भ्रातृत्व का सम्बन्ध स्थापित करना हो या भीलनी शबरी के अतिथि बनकर भक्ति के धरातल पर समता का सुंदर आदर्श गढ़ना हो या वानर जाति के राज्य से वंचित नायक सुग्रीव और राक्षस जाति के विभीषण से मित्रता कर जाति–पांति के समस्त भेदभाव से ऊपर मानवीय संबंधों की उद्घोषणा करनी हो, राम के ये समस्त कर्म समतामूलक समाज की ही प्रस्तावना करते हैं। समतामूलक समाज का यह स्वप्न तुलसी के रामराज्य में पूर्णतः साकार होता है, जिसे रेखांकित करते हुए मूर्धन्य आलोचक रामविलास शर्मा लिखते हैं, **'तुलसी का रामराज्य वर्णहीन नहीं है। लेकिन सरयू के राजघाट पर चारों वर्ण एकसाथ स्नान जरूर करते हैं : राजघाट सब विधि सुंदर वर। मज्जहिं तहां बरन चारिउ नर।'**[9]

स्त्री–विषयक प्रसंगों में **'ढोल गंवार शूद्र पशु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी।'** की ढोल पीटते हुए तुलसी की खूब लानत–मलानत की जाती है। लेकिन ऐसा करते हुए यह भुला दिया जाता है कि यह चौपाई रामचरितमानस में समुद्र द्वारा कही गई है, जो कि एक नकारात्मक पात्र है और नकारात्मक पात्रों के मुख से कभी रचनाकार नहीं बोलता। रचनाकार की वाणी तो सकारात्मक पात्रों के कंठ में ही विराजती है। यहाँ यह सिद्ध करने की कोई चेष्टा नहीं की जा रही कि स्त्रियों के प्रति तुलसी की दृष्टि पूर्णतः आधुनिक और प्रगतिशील थी। परंतु, यह अवश्य ध्यान देने योग्य है कि प्रायः अपनी युगीन सीमा में रहते हुए भी तुलसी ने स्त्रियों को लेकर अवसरानुसार कहीं प्रशंसा तो कहीं करुणा का भाव ही व्यक्त किया है। स्त्री–विरोध का भाव उनमें नहीं है। तुलसी की स्त्री–विषयक दृष्टि का उल्लेख करते हुए रामविलास शर्मा लिखते हैं, **"एक तरफ पति-सेवा का उपदेश, तो दूसरी तरफ पराधीन नारी के लिए स्वप्न में भी सुख न मिलने का क्षोभय यह कला तुलसीदास को छोड़कर और कहीं नहीं है।"**[10]

इसके बाद भी तुलसीदास को जहां कहीं अवसर मिला है, वे स्त्री की एक सशक्त छवि प्रस्तुत करने से नहीं चूके हैं। तीनों लोकों को रुलाने वाले, देव–शक्तियों के लिए भी भयकारी राक्षसराज रावण के समक्ष उसके समस्त प्रलोभनों को अस्वीकार करते हुए उसे कठोर बातें कहने वाली सीता के चरित्र में शक्ति स्वरूपा स्त्री की छवि के ही दर्शन होते हैं।

तुलसी द्वारा पतिव्रता नारी के महिमामंडन की चर्चा भी खूब की जाती हैय परंतु, यह बिसरा दिया जाता है कि उनके रामराज्य में पुरुषों के लिए भी एक–पत्नीव्रत का नियम निर्धारित है : **एक नारिब्रतरत सब झारी। ते मन बच क्रम पतिहितकारी।।**[11] ध्यान देने की बात यह भी है कि 'एकपत्नीव्रत' का आदर्श तुलसी उस युग में रख रहे थे, जब स्त्री को भोग की वस्तु मानते हुए बहुपत्नी का चलन लगभग आम था। यह तुलसी की लोक की विसंगतियों का परिष्कार करने वाली दृष्टि ही थी कि ऐसे युग में उन्होंने पति और पत्नी दोनों के लिए समान नियम की घोषणा कर समानता के मूल्य को समर्थन देने का साहस दिखाया। अंततः हमें इस पर भी विचार करना चाहिए कि जो कवि '**सीय राममय सब जग जानी**'[12] के भाव से समस्त जड़–चेतन को सीताराम का अंश मानते हुए हाथ जोड़कर प्रणाम करने की बात कहता हो, वो किसी भी प्रकार के भेदभाव और विषमता का समर्थक कैसे हो सकता है?

तुलसी व्यक्ति–स्वतंत्रता के विरोधी नहीं हैं, परंतु, उनके युग की जो परिस्थितियां थीं उसमें स्वतंत्रता ने मर्यादाहीन होकर स्वच्छंदता का रूप ले लिया था। सामाजिक–राजनीतिक सभी क्षेत्रों में मर्यादाओं का हनन चरम पर था। स्त्री के लिए तो यह समय और भी कठिन था, क्योंकि उसे भोज्या के भाव से देखते हुए पुरुष–वर्ग अपनी मर्यादाओं को भूल जाता था। यही कारण है कि वाल्मीकि रामायण में लक्ष्मण–रेखा का प्रसंग न होने के बावजूद तुलसीदास ने रामचरितमानस के लंकाकाण्ड में इसका उल्लेख कर दिया है।[13] यह सीता के सुरक्षा की रेखा थी, जिसकी आवश्यकता तुलसी के युग की सीताओं यानी स्त्रियों को भी थी, क्योंकि उस समय का शासक समाज ही रावण हो रहा था। ऐसे विकट समय में भी तुलसी ने स्वतंत्रता के मूल्य का निषेध नहीं किया अपितु मर्यादित स्वतंत्रता की प्रस्तावना की।

तुलसी के राम भी स्वतंत्रता के पक्षधर हैं। उनके समक्ष समर्थक ही नहीं, विरोधी भी अपनी बात कह सकते हैं। युद्ध के काल में वे सबसे मंत्रणा करके ही कोई निर्णय लेते हैं और अपने आसपास ऐसा वातावरण रखते हैं, जिसमें हर कोई खुलकर अपनी बात रख सके। यही कारण है कि रावण द्वारा त्यागे जाने के पश्चात् उसका भाई होते हुए भी विभीषण राम के पास आने का साहस जुटा पाते हैं। तीन दिन तक मार्ग मांगने के बाद भी जब समुद्र उनकी नहीं सुनता तो राम क्रोध अवश्य दिखाते हैं, परंतु, जब भयभीत भाव से समुद्र उपस्थति होता है तो उस पर प्रहार नहीं करते अपितु धैर्य और शांति के साथ उसका पक्ष सुनते हैं। रावण के शासन में अभिव्यक्ति की ऐसी स्वतंत्रता नहीं है। उसने अपने आसपास भय का ऐसा वातावरण बना रखा है कि विरोधी तो दूर उसके मित्र और मंत्री तक उसे उचित सलाह देने का साहस नहीं जुटा पाते। उचित सलाह देने पर वह अपने नाना माल्यवान से लेकर भाई विभीषण तक का अपमान कर देता है। स्पष्ट है कि राम लोकतांत्रिक शासक के आदर्श हैं, वहीं रावण अधिनायकवादी राजतंत्र का चरम उदाहरण प्रस्तुत करता है। इस अर्थ में, राम–रावण संघर्ष का परिणाम अधिनायकवादी राजतंत्र पर लोकतंत्र की विजय का आख्यान भी कहा जा सकता है।

सीता–परित्याग का प्रसंग रामराज्य में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के आदर्श का आख्यान ही है। यद्यपि तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में इस प्रसंग का वर्णन नहीं किया है। केवल एक स्थान पर '**सिय निंदक अघ ओघ नसाए**'[14] जैसे अस्पष्ट संकेत करके रह गए हैं। परंतु, रामाज्ञा प्रश्न[15] और गीतावली[16] में उन्होंने इस प्रसंग का स्पष्ट उल्लेख किया है। गीतावली में तो कई पदों में इस प्रसंग का सविस्तार वर्णन मिलता है। वहीं रामज्ञा प्रश्न में दोहा आता है :

सती सिरोमनि सीय तजि, राखि लोग रूचि राम।

सहे दुसह दुःख सगुन गत, प्रिय बियोग परिणाम।

अब प्रजा की इच्छा का सम्मान करते हुए राजा द्वारा अपनी पत्नी का त्याग कर देना, न केवल रामराज्य में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के स्तर को दिखाता है, अपितु प्रजा के प्रति राजा की प्रतिबद्धता का भी द्योतक है। तुलसी के युग का शासक–वर्ग राजधर्म को भूल चुका था। प्रजा पीड़ा में थी, परंतु, शासकों और उनके सामंतों को अपने भोग–विलास से ही अवकाश नहीं था। शासकों के लिए नागरिकों की उपयोगिता केवल भारी–भरकम कर वसूलने के लिए थी। कर लेने के पश्चात् नागरिक–हितों का कोई ध्यान नहीं रखा जाता था। परिणामतः शासक–वर्ग सम्पन्न होकर विलासिता में डूबा था, तो वहीं साधारण जन अन्न के लिए भी मुहताज होते जा रहे थे। देश में विदेशी आक्रांताओं के आने के बाद जो राजतंत्र स्थापित हुआ था उसमें ऐसा होना कोई बहुत विचित्र बात नहीं थी, परंतु, तुलसी को भारतीय ज्ञान–परंपरा से राजतंत्र के जिस धर्माधारित स्वरूप का बोध प्राप्त हुआ था, उसके परिणामस्वरूप उन्होंने रामराज्य के रूप में राजतंत्र का वो उत्कृष्ट रूप प्रस्तुत किया जिसे गांधीजी ने भी लोकतंत्र का सच्चा आदर्श माना।[17]

तुलसी के यहाँ राजधर्म में प्रजा और प्रजा का हित सर्वोपरि है। जिस प्रकार से भी प्रजा का कल्याण हो, वह सब राजा का कर्तव्य है। प्रजा–हित का ध्यान न रखने वाले राजा के लिए तुलसी ने लिखा है :

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।

सो नृप अवसि नरक अधिकारी।।[18]

तुलसी के युग की कर–प्रणाली जनता के शोषण पर आधारित थी। शासक–वर्ग मनमाने कर लगाकर लोगों से धन उगाही करता था और उस धन का व्यय प्रजा–हित में नहीं, शासकों के भोग–विलास में ही होता था। तुलसी कर लेने के विरोधी नहीं हैं, परंतु, उनकी कर नीति साधारण जनों के शोषण पर नहीं, सर्व समाज के पोषण पर आधारित थी। तुलसी ने जिस कर प्रणाली की अवगाहना की है, वह आज के समय में भी आदर्श मानी जा सकती है :

बरषत हरषत लोग सब, करसत लखे न कोई।

तुलसी प्रजा सुभाग ते, भूप भानु सम होई।।[19]

तुलसी न्यायपूर्ण शासन की बात करते हैं। ऐसी शासन–नीति पर उनका बल है, जिससे सबका समान रूप से कल्याण सुनिश्चित हो। समानता पर आधारित न्याय का शासन तुलसी के राजधर्म की प्रमुख विशेषता है। इसका निर्देशन करते हुए स्वयं राम के मुख से वे कहलवाते हैं :

मुखिया मुख सो चाहिए, खान-पान कहुं एक

पालइ पोषइ सकल अंग, तुलसी सहित विवेक।[20]

इन सभी उदाहरणों से स्पष्ट है कि आज से पांच शताब्दी पूर्व तुलसीदास ने राजधर्म के जिन मूल्यों का प्रतिपादन किया था, वह वर्तमान लोकतंत्र के लिए भी न केवल प्रासंगिक अपितु आवश्यक हैं। तुलसी का राजधर्म उनके मानस में उपस्थित लोकतांत्रिक चेतना का ही तद्युगीन प्रस्फुटन है।

निष्कर्ष :-

विचार करें तो तुलसी को जितनी ख्याति और प्रतिष्ठा भक्त कवि के रूप में मिली है, उसकी तुलना में

उनके अन्य आयामों पर कम ही चर्चा हो पाई है। वे भक्त कवि तो निस्संदेह हैं, परंतु, इसका यह अर्थ नहीं कि भक्ति रस में डूबे वे अपने समय और समाज के प्रति पूर्णतः उदासीन थे। कबीर की ही तरह तुलसी में भी गहरा युगबोध उपस्थित था। जैसा कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है, "**तुलसीदास कवि थे, भक्त थे, पंडित-सुधारक थे, लोकनायक थे और भविष्य के स्रष्टा थे। इन रूपों में उनका कोई भी रूप किसी से घटकर नहीं था।**"[21]

वस्तुतः तुलसी की भक्ति लोक के कल्याण का उपक्रम है। आदर्श मानव के सब गुणों को धारण करने वाले और मानव–कल्याण में समर्थ राम उनके आराध्य हैं। मानवता का कल्याण तुलसी के महाकाव्य की भावभूमि है। रामविलास शर्मा के शब्दों में : "तुलसी ने प्राचीन महाकाव्यों की मानववादी परंपरा को आगे बढ़ाया है। 'न मानुषात श्रेष्ठतरम हि किंचित' पर रामचरितमानस मानो सजीव भाष्य है। अनेक बार तुलसी ने भक्त को भगवान् से बड़ा बतलाया है, इससे अधिक वह मानव–प्रेम का प्रमाण क्या दे सकते थे?"[22]

तुलसी का साहित्य, जीवन का साहित्य है जिसमें मानव–जीवन की विविध छटाएँ उपस्थित हैं। अतः उसे समग्र रूप में समझने के लिए आवश्यक है कि तुलसी को भक्त कवि के साथ–साथ अपने काव्य के माध्यम से लोक–कल्याण की प्रस्तावना करने वाले लोकनायक के रूप में भी समझा जाए।

संदर्भ :-

1. https://www.theguardian.com/world/2021/apr/05/vladimir&putin&passes&law&that&may&keep&him&in&office&until&2036
2. बिहार : एक सांस्कृतिक वैभव, शंकर दयाल सिंह, पृष्ठ 38, डायमंड पॉकेट बुक्स, संस्करण 1999
3. भारतीय राजनीति और संसद : विपक्ष की भूमिका, सुभाष काश्यप, पृष्ठ–9–12, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 1998
4. भारतीय राजनीति और संसद : विपक्ष की भूमिका, सुभाष काश्यप, पृष्ठ–9–12, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 1998
5. कवितावली, उत्तरकाण्ड, पृष्ठ 115, गीताप्रेस, संस्करण 2017
6. रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, दोहा 1, गीताप्रेस।
7. श्रीमद्भागवत महापुराण, नवम स्कंध, अध्याय 8, गीताप्रेस।
8. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड 19.3
9. परम्परा का मूल्यांकन, रामविलास शर्मा, पृष्ठ 86, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2018
10. पूर्वोक्त, पृष्ठ संख्या 88
11. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, 21.8
12. रामचरितमानस, बालकाण्ड, 7.2
13. रामचरितमानस, लंकाकाण्ड, 35.2
14. पूर्वोक्त, 15.3
15. रामाज्ञा प्रश्न, षष्ठ सर्ग, सप्तक 6, दोहा 4–5, गीताप्रेस।
16. गीतावली, उत्तरकाण्ड, पद 25–30, गीताप्रेस।

17. यंग इंडिया, 19 सितंबर 1929
18. रामचरितमानस, बालकाण्ड 70,6।
19. दोहावली, दोहा – 508, गीताप्रेस।
20. रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, दोहा – 315
21. हिंदी साहित्य की भूमिका, हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ 101, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2021
22. परम्परा का मूल्यांकन, रामविलास शर्मा, पृष्ठ 92, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2018

Piyush Dwivedi
08750960603
sardarpiyush24@gmail.com

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
द्वारा भिवानी (हरियाणा), काठमाण्डू (नेपाल) से प्रकाशित

ISSN : 2395-7115
Impact Factor 8.642

बोहल शोध मंजूषा
Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY, MULTIPLE LANGUAGES
PEER REVIEWED, REFREED RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Website :
www.bohalshodhmanjusha.com
Email : grsbohal@gmail.com

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
HOD Hindi, Tantia University
M. : 8708822674, 9466532152

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, (राजस्थान), पटियाला (पंजाब) व नेपाल से प्रकाशित

ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834

Gina Shodh
SANGAM

A Peer Reviewed & Refereed International Research Journal
Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Website : www.ginajournal.com
Email : grngobwn@gmail.com
Office : 8708822674

Editor :
Dr. Rekha Soni, Vice Principal
Education, Tantia University
M. 9828531975

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor 6.521

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Executive Editor : Dr. Varsha Rani M. 9671904323
Managing Editor : Dr. Mukesh Verma M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गीना शोध संस्थान भिवानी के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज भिवानी से छपवाकर कार्यालय 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा) से वितरित की।

ISSN 2321:8037